सिरि भगवंत भूदबलि भडारय पणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्त-शास्त्र]

तदियो अणुभागबंधाहियारो

[तृतीय अनुभागबन्धाधिकार]

पुस्तक ५

भारतीय ज्ञानपीठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : प्राकृत ग्रन्थांक ७

सिरिभगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्त-शास्त्र]

तदियो अणुभागबंधाहियारो

[तृतीय अनुभागबन्धाधिकार]

हिन्दी भाषानुवाद सहित

पुस्तक ५

सम्पादन-अनुवाद

पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ

द्वितीय संस्करण : १९९९ □ मूल्य : १४०.०० रुपये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि. सं. २४७०, विक्रम सं. २०००, १८ फरवरी, १९४४)

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में
स्व० साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं
उनकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक (प्रथम संस्करण)

डॉ. हीरालाल जैन एवं डॉ. आ. ने. उपाध्ये

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११० ००३

मुद्रक : आर.के. ऑफसेट, दिल्ली-११० ०३२

© भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Moortidevi Jain Granthamala : Prakrit Grantha No. 7

MAHĀBANDHO

[Third Part : Anubhāga-bandhādhikāra]

of

Bhagavān Bhūtabalī

Vol. V

Editor and Translated by

Pt. Phoolchandra Siddhantashastri

BHARATIYA JNANPITH

Second Edition : 1999 □ Price : Rs. 140.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

BHARATIYA JNANPITH

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira N. Sam. 2470 □ Vikrama Sam. 2000 □ 18th Feb. 1944

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

Founded by
Late Sahu Shanti Prasad Jain
In memory of his late Mother Smt. Moortidevi
and
promoted by his benevolent wife
late Smt. Rama Jain

In this Granthamala Critically edited Jain agamic, philosophical, puranic, literary, historical and other original texts available in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil etc., are being published in the respective languages with their translations in modern languages.
Also
being published are
catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies, art and architecture by competent scholars, and also popular Jain literature.

•

General Editors (First Edition)

Dr. Hiralal Jain & Dr. A.N. Upadhye

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

Printed at : R.K. Offset, Delhi-110032

© All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्ति

जितचेतोजातनुर्वीश्वरमकुटतटोद्घृष्टपादारविन्द-
द्वितयं वाक्कामिनीपीवरकुचकलशालङ्कृतोदारहार-।
प्रतिमं दुर्द्धौरसंसृत्यतुलविपिनदावानलं माघनन्दि-
व्रतिनाथं शारदाभ्रोज्ज्वलविशदयशो राजिताशान्तकान्तम् ॥१॥

भावभवविजयिवरवाग्देवीमुखदर्पणनान-
मूनावनिपालकनेसेदनिलाविश्नुतकित्ते माघनन्दिमुनीन्द्रम् ॥२॥

वरराद्धान्ताम्भोनिधितरलतरङ्गोत्करक्षालितान्तः-
करणं श्रीमेघचन्द्रव्रतिपतिपदपङ्केरुहासक्तषट्-।
चरणं तीव्रप्रतापोधृतविततबलोपेतपुष्पेषु भृत्तं-
हरणं सैद्धान्तिकाग्रेसरनेने नेकळ्दं माघनन्दिव्रतीन्द्रम् ॥३॥

महनीयगुणनिधानं सहजोन्नतबुद्धिविनयनिधियेने नेगळ्दम्।
महिविनुतकिन्त्ते कित्तितमहिमानं मानिताभिमानं सेनम् ॥४॥

विनयद शीलदोळ् गुणदगाळिय पेंपिनपुह्विजमनो-
जनरति रूपिनोळ्पनिळिसिर्द-मनोहरमप्पुदोन्दु रू-।
पिन मने दानदागरमेनिप्प वधूत्तमेयप्प सन्दसे-
नन सति मल्लिकव्वेगे धरित्रियोळार् दोरे सद्गुणङ्गळिम् ॥५॥

सकलधरित्रीविनुतप्रकटितधीयसे मल्लिकव्वे बरेसि सत्पु-
ण्याकरमहाबन्धद पुस्तकं श्रीमाघनन्दिमुनिगळिगित्तळ ॥६॥

—जिन्होंने मन्मथ को जीत लिया है, जिनके दोनों पादकमलों को राजाओं के मुकुट के अग्रभाग चूमते हैं, जो सरस्वती के पीवर स्तनकलशों से अलंकृत मनोहर हार के समान हैं, जो दुर्निवार संसाररूपी विपुल कानन के लिए दावानलस्वरूप हैं, ऐसे माघनन्दिव्रतिपति शरत्कालीन मेघ के समान दिगन्तव्याप्त उज्ज्वल यश से विराजमान हैं ॥१॥

मन्मथविजयी, सरस्वती-मुख के लिए दर्पणरूप और पृथ्वीविश्रुतिकीर्ति माघनन्दि मुनीन्द्र पृथ्वीपालक हैं ॥२॥

जो श्रेष्ठ सिद्धान्तरूपी समुद्र की तरल तरंगों से प्रक्षालित अन्तःकरणवाला है, जो श्री मेघचन्द्र व्रतिपति के पादकमलों में आसक्त भ्रमर के समान है, जो तीव्र प्रतापी है, जिसने अपने विपुलबल से मन्मथ को जीत लिया है ऐसा माघनन्दि व्रतीन्द्र सैद्धान्तिकाग्रेसर के नाम से प्रख्यात था ॥३॥

जो महनीय गुणों का आकर है, जो सहज और उन्नत बुद्धि तथा विनय का निधिस्वरूप है, पृथिवी में जिसकी कीर्ति वन्दनीय है, जिसकी महिमा विख्यात है और जिसका मान-सम्मान है वह सेन प्रसिद्ध है ॥४॥

पृथ्वी में सद्गुणों में विनययुक्त, शीलवती, रति के समान मनोहर रूपवती और दानशूर ऐसी सन्दसेन की भार्या मल्लिकव्वे के समान कौन है ॥५॥

सकल पृथ्वीमण्डल द्वारा विनुत तथा प्रख्यातबुद्धि और यशवाली मल्लिकव्वे ने पुण्याकर महाबन्ध पुस्तक लिखवाकर माघनन्दि मुनीन्द्र को भेंट की ॥६॥

यह प्रशस्ति अनुभागबन्ध के अन्त में उपलब्ध होती है। स्थितिबन्ध के अन्त में भी एक प्रशस्ति आयी है। गुणभद्रसूरि के उल्लेख को छोड़कर इस प्रशस्ति में वही बात कही गयी है जिसका निर्देश स्थितिबन्ध के अन्त में पाई जानेवाली प्रशस्ति में किया गया है। मात्र इसमें मेघचन्द्र व्रतपति का विशेष रूप से उल्लेख किया है और माघनन्दि व्रतपति को इनके पादकमलों में आसक्त बतलाया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

सन्निकर्षप्ररूपणा	**१**	**१२**
सन्निकर्ष के दो भेद		१
स्वस्थान सन्निकर्ष	१	६८
उत्कृष्ट सन्निकर्ष	१	२७
जघन्य सन्निकर्ष	२७	६८
परस्थान सन्निकर्ष	६८	१२६
उत्कृष्ट सन्निकर्ष	६८	९३
जघन्य सन्निकर्ष	९३	१२६
भंगविचयप्ररूपणा	**१२६**	**१२९**
उत्कृष्ट	१२६	१२७
जघन्य	१२८	१२९
भागाभागप्ररूपणा	**१२९**	**१३१**
उत्कृष्ट	१२९	१३०
जघन्य	१३०	१३१
परिमाणप्ररूपणा	**१३१**	**१४२**
उत्कृष्ट	१३१	१३७
जघन्य	१३७	१४२
क्षेत्रप्ररूपणा	**१४२**	**१५१**
उत्कृष्ट	१४२	१४६
जघन्य	१४६	१५१
स्पर्शनप्ररूपणा	**१५१**	**२११**
उत्कृष्ट	१५१	१८२
जघन्य	१८२	२११
कालप्ररूपणा	**२११**	**२१६**
उत्कृष्ट	२११	२१४
जघन्य	२१४	२१६
अन्तरप्ररूपणा	**२१६**	**२१९**
उत्कृष्ट	२१६	२१७
जघन्य	२१८	२१९
भावप्ररूपणा		**२२०**
अल्पबहुत्वप्ररूपणा	**२२०**	**२३९**
अल्पबहुत्व के दो भेद		२२०
स्वस्थान अल्पबहुत्व	२२०	२२८
उत्कृष्ट	२२०	२२४
जघन्य	२२४	२२८
परस्थान अल्पबहुत्व	२२८	२३९
उत्कृष्ट	२२८	२३३
जघन्य	२३३	२३९

भुजगारबन्ध	**२३९**	**३२५**
अर्थपद	२३९	२४०
समुत्कीर्तना	२४०	२४१
स्वामित्व	२४१	२४४
काल		२४४
अन्तर	२४५	२७६
भंगविचय	२७६	२७८
भागाभाग	२७८	७९
परिमाण	२७९	२८३
क्षेत्र	२८३	२८५
स्पर्शन	२८६	३०९
काल	३०९	३१२
अन्तर	३१२	३१७
भाव	३१७	३१८
अल्पबहुत्व	३१८	३२५
पदनिक्षेप	**३२५**	**३५९**
समुत्कीर्तना		३२५
दो भेद		३२५
उत्कृष्ट		३२५
जघन्य		३२५
स्वामित्व	३२५	३५५
दो भेद		३२५
उत्कृष्ट	३२५	३४०
जघन्य	३४०	३५५
अल्पबहुत्व	३५६	३५९
दो भेद		३२६
उत्कृष्ट	३५७	३५९
जघन्य	३५७	३७२
वृद्धि	**३५९**	**३७२**
समुत्कीर्तना	३५९	३६१
स्वामित्व		२६१
काल		३६१
अन्तर		३६२
भंगविचय		३६३
भागाभाग	३६३	३६४
परिमाण		३६४
क्षेत्र		३६५
स्पर्शन	३६५	३६६
काल	३६७	३६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर	३६९	३७०
भाव		३७१
अल्पबहुत्व	३७१	३७२
अध्यवसानसमुदाहार	**३७२**	**४१३**
तीन भेद		३७२
प्रकृतिसमुदाहार	**३७३**	**३८६**
दो भेद		३७३
प्रमाणानुगम		३७३
अल्पबहुत्व	३७३	३८६
दो भेद		३७३
स्वस्थान अल्पबहुत्व	३७३	३७७
परस्थान अल्पबहुत्व	३७७	३८३
स्थितिसमुदाहार	**३८७**	**३९२**
दो भेद		३८७
प्रमाणानुगम	३८७	
श्रेणिप्ररूपणा	३८७	३८९
दो भेद		३८७
अनन्तरोपनिधा	३८७	३८८
परम्परोपनिधा	३८८	३८९
अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान	**३८९**	**३९२**
दो भेद		३९०
अनन्तरोपनिधा	३९०	३९१
परम्परोपनिधा	३९१	३९२
तीव्रमन्दता	**३९२**	**४१३**
अनुकृष्टि	३९२	३९८
तीव्रमन्द	३९९	४१३
जीवसमुदाहार	**४१३**	**४१५**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरिभगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

तदियो अणुभागबंधाहियारो

१५ सण्णियासपरूवणा

१. सण्णियासं दुविहं- सत्थाणं परत्थाणं च। सत्थाणं दुवि०--जह० उक्क०। उक्कस्सए पगदं। दुवि०--ओघे आदे०। ओघे० आभिणिबोधियणाणावरणस्स उक्कस्सयं अणुभागं बंधंतो चदु[1]णाणावरणीयं णियमा बंधगो तं तु उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाणपदिदं बंधदि अणंतभागहीणं वा ५। एवमण्णमण्णाणं। णिद्दाणिद्दाए उक्क० बं० अट्ठदंस० णियमा बं०। तं तु छट्ठाणपदिदं बंधदि। एवमण्णमण्णाणं। साद० उ० बं० असाद० अबंधगो। असाद० उ० बं० साद० अबंध०। एवं आउ-गोदं पि।

१५ सन्निकर्षप्ररूपणा

१. सन्निकर्ष दो प्रकारका है—स्वस्थान सन्निकर्ष और परस्थान सन्निकर्ष। स्वस्थान सन्निकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आभिनिबोधिकज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह उनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। या तो अनन्तभागहीन अनुभागका बन्ध करता है या असंख्यात भागहीन या संख्यात-भागहीन या संख्यातगुणहीन या असंख्यातगुणहीन या अनन्तगुणहीन अनुभागका बन्ध करता है। पाँचों ज्ञानावरणोंका इसी प्रकार परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। निद्रानिद्राके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव आठ दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है, किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह उनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। सब दर्शनावरणोंका परस्पर इसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिए। सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव असातावेदनीयका बन्ध नहीं करता है। असातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सातावेदनीयका बन्ध नहीं करता है। इसी प्रकार आयु और गोत्र कर्मके विषयमें भी जानना चाहिए।

---

१. ता० प्रतौ अणुभागा (गं) चदु- इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. मिच्छ० उ० बं० सोलसक०-णवुंस-अरदि-सोग-भय०-दु० णिय० बं०। तं तु छट्ठाण०। एवं सोलसक०-पंचणोक०। इत्थि० उ० बं० मिच्छ०-सोलसक०-अरदि-सोग०-भय०-दु० णि० बं० अणंतगुणहीणं बं०। एवं पुरिस०। हस्स० उक्क० बं० मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु० णियमा बं० अणंतगुणहीणं बं०। इत्थि०-णवुंस० सिया बं० सिया अबं०। यदि बं० णि० अणु० अणंतगुणहीणं। रदि० णिय० तं तु०। एवं रदीए०।

३. णिरयगदि० उ० बं० पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णि० बं० अणंतगुणहीणं बं०[1]। हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णि० बं०। तं तु० छट्ठाणपदिदं। एवं णिरयाणु०।

---

२. मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह उनके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धकी अपेक्षा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार सोलह कषाय और पाँच नोकषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कषाय, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् नहीं बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो नियमसे इनके अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। रतिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उसके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह उसके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धकी अपेक्षा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३. नरकगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु तीन, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

---

१. ता०-आ०प्रत्योः 'रदि० णिय०' इत आरभ्य 'णिमि० णि० बं० अणंतगुणहीणं बं०' इति यावत् पाठस्य पुनरावृत्तिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. तिरिक्खगदि० उ० बं० एइंदि०-अप्पसत्थवि[1]०-थावर-दुस्सर सिया तं तु० छट्ठाणपदिदं बं० । पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-असंपत्त-आदाउज्जो०-तस० सिया अणंत-गुणहीणं बं० । ओरालिय०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं । हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच णिय० तं तु० छट्ठाणपदिदं० । एवं तिरिक्खाणु० ।

५. मणुसग० उ० बं० पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थवण्ण ४-अगु०४-पसत्थ०-तस०-४-थिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिस०-मणुसाणु० णिय० बं० तं तु० छट्ठाणपदिदं० । तित्थ[2]० सिया० अणंतगुण० बं० । एवं ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु० ।

६. देवगदि० उ० बं० पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्विय-

४. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह उनके अपने उत्कृष्ट बन्धकी अपेक्षा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् नहीं बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह इनके अपने उत्कृष्ट बन्धकी अपेक्षा अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु तीन, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो उनके अपने उत्कृष्ट बन्धकी अपेक्षा अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो उसका वह छह स्थान पतित हानिको लिए हुए बन्ध करता है। इसी प्रकार तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५. मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए बन्ध करता है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभ-नाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो उसका वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए बन्ध करता है। तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् मनुष्यगतिके समान औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

६. देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर,

१. ता० आ० प्रत्योः एइंदि० अप्पसत्थ० अप्पसत्थवि० इति पाठः। २. आ०प्रतौ पदिदं०। आहारदुगं तित्थ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगो[1]०-पसत्थ०४—देवाणु०-अगु०३—पसत्थ०-तस०४—थिरादिपंच०-णिमि० णिय० बं० । तं तु० छट्ठाणपदिदं । आहारदुग-तित्थ० सिया० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । अप्पसत्थ०४—उप०-जस० णिय० अणंतगुणहीणं० । एवमेदाओ पसत्थाओ एक्कमेक्कस्स । तं तु० ।

७. एइंदि० उ० बं० तिरिक्खग०-हुंड०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०-थावर-अथिरादिपंच णिय० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०३—बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं० । एवं थावर० । बीइंदि० उ० बं० तिरिक्खग०-ओरालि०—तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि०अंगो०—पसत्थापसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-अगु०—उप०-तस०-बादर-

---

तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो उसका वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए बन्ध करता है। आहारक द्विक और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो उसका वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए बन्ध करता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात और यशःकीर्तिका नियमसे अनन्तगुणी हानिको लिये हुए अनुत्कृष्ट बन्ध करता है। इसी प्रकार इन प्रशस्त प्रकृतियोंका एक दूसरेकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनका परस्पर अनुभाग बन्ध उत्कृष्ट भी करता है और अनुत्कृष्ट भी। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है तो उनका वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए अनुभाग बन्ध करता है।

७. एकेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो उसका वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए बन्ध करता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् नहीं बन्ध करता। यदि बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। द्वीन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। असम्प्राप्तासृपाटिका संहननका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है या अनुत्कृष्ट अनुभागका

---

१. ता०—आ०प्रत्योः समचदु० अप्पसत्थवि० अंगो० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपज्ज०-पत्ते०-अथिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। [असंप० णि० तं तु०]। एवं तेइंदि०-चदुरिंदि०।

८. णग्गोद० उ० बं० तिरिक्खग०-मणुसग०-चदुसंघ०-दोआणु०-उज्जो० सिया अणंतगुणहीणं बं०। पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-[अ-] पसत्थ०-तस०४-अथिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। एवं सादि०। णवरि तिण्णिसंघ०।

९. खुज्ज० उ० अणु० बं० तिरिक्ख० पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-[अ-] पसत्थ०-तस०४-अथिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं०। दोसंघ०-उज्जो० सिया० अणंतगु०। एवं वामणसंठा०। णवरि एयसंघ०[1]-उज्जो० सिया अणंतगु०।

१०. हुंड० उ० बं० णिरय-तिरिक्खग०-एइंदि०-असंप०-दोआणु०-अप्पसत्थ-विहा०-[थावर०]-दुस्सर० सिया०। तं तु० छट्ठाणपदिदं०। पंचिंदि०-ओरालि०-वेउव्वि०-दोअंगो०-आदाव०-तस०[2] सिया० अणंतगु०। तेजा०-क०-पसत्थव०४-अगु०३-

---

भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

८. न्यग्रोध संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, चार संहनन, दो आनुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे अनन्तगुणाहीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार स्वाति संस्थानकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके तीन संहनन कहने चाहिए।

९. कुब्जक संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क अस्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। दो संहनन और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। जो अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार वामन संस्थानकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वह एक संहनन और उद्योतका कदाचित् अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है।

१०. हुण्ड संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह इनका छह स्थान पतित हानिको लिये हुए बन्ध करता है। पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, आतप और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा

---

१. ता०-आ० प्रत्योः असंप० इति पाठः। २. ता०-आ० प्रत्योः आदावुज्जो० तस० इति पाठः।

बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुण० । उज्जोवं सिया अणंतगुणहीणं० । अप्पसत्थ०४-उप०-अथिरादिपंच० णिय०[1] । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । एवं हुंड०भंगो अप्पसत्थवण्ण०४--उप०-अथिरादिपंच । यथा संठाणं तथा चदुसंघ० ।

११. असंप० उ० अणु० बं० तिरिक्ख०--हुंड०--अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पस०-अथिरादिछ० णि० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं[2] ।

१२. आदाव० उ० बं० तिरिक्खग०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-दूभ०-अणादे०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं । थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० अणंतगुणहीणं० । उज्जो० उ० बं०[3] तिरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-

---

हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात और अस्थिर आदि पाँच का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार हुण्डक संस्थानके समान अप्रशस्तवर्ण चतुष्क, उपघात और अस्थिर आदि पाँचकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। जिस प्रकार चार संस्थानोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहा है, उसी प्रकार चार संहननोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

११. असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि वह इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो इनका छह स्थान पतित हानिको लिये हुए बन्ध करता है। पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रस चतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणेहीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणेहीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है।

१२. आतपके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, दुर्भग, अनादेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्धको लिये हुए होता है। स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने-

---

१. ता०-आ०प्रत्योः पंच णिमि० णिय० इति पाठः। २. ता० आ०प्रत्योः 'अणंतगुणहीणं' अतोऽग्रे 'यथा गदि तथा आणुपुव्वि०' इत्यधिकः पाठोऽस्ति। ३. ता० आ०प्रत्योः उज्जो० उप० तिरिक्ख० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतगु० ।

१३. अप्पसत्थ० उ० बं० णिरय०-तिरिक्ख०-असंप०-दोआणु० सिया० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-तस४-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । ओरालि०-वेउव्वि०-दोअंगो०-उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं० । हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अथिरादिछ० णिय० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । एवं दुस्सर० ।

१४. सुहुम० उ० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर-अथिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । अपज्ज०-साधार० णिय० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । एवं अपज्जत्त-साधारण० । पंचंतराइयाणं णाणावरणभंगो ।

१५. णिरएसु सत्तण्णं कम्माणं ओघं । तिरिक्ख० उ० बं० पंचिंदि०-

वाला जीव तिर्यञ्चगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभ नाराच संहनन, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है ।

१३. अप्रशस्त विहायोगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, तिर्यञ्चगति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु त्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार दुःस्वर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१४. सूक्ष्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। अपर्याप्त और साधारणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अपर्याप्त और साधारणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पाँच अन्तरायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्षका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है।

१५. नारकियोंमें सात कर्मोंका भंग ओघके समान है। तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ओरालि०- तेजा०- क०- पसत्थ०४—अगु०३—तस०४--णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय०। तं तु० छट्ठाणपदिदं०। उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं०। एवं तिरिक्खगदिभंगो हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०।

१६. मणुसगदि० उ० बं० पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०-अंगो०--वज्जरि०--पसत्थ०४— मणुसाणु०--अगु०३— तस०४—पसत्थवि०—थिरादिछ०—णिमि० णिय०। तं तु० छट्ठाणपदिदं। अप्पसत्थ०४—उप० णिय० अणंतगुणहीणं बं०। तित्थ० सिया०। तं तु० छट्ठाणपदिदं[1]। एवं पसत्थाओ ऍक्कमेॅक्केण सह। तं तु० तित्थयरेण सह कादव्वं। चदुसंठा०-चदुसंघ०-उज्जो० ओघं। एवं छसु पुढवीसु। णवरि उज्जोवं उ० बं० तिरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४—

बन्धक जीव पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। हुण्ड संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान हुण्ड संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहकी मुख्यता से सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१६. मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे एक दूसरेके साथ सन्निकर्ष कहना चाहिए। किन्तु वह तीर्थङ्कर प्रकृतिके साथ कहना चाहिए। चार संस्थान, चार संहनन, और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। अर्थात् इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान कहना चाहिए। इसी प्रकार प्रथमादि छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध कनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

---

१ आ० प्रतौ सिया०। छट्ठाणपदिदं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०[1] णिय० अणंतगुणहीणं० । छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-छयुगल० सिया अणंतगुणहीणं । सत्तमाए णिरयोघं । णवरि दोसंठा०-दोसंघ० उ० बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० णिय० अणंतगुणहीणं० ।

१७. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं ओघं । णिरयगदि० उ० बं० पचिंदि०-वेउव्वि०-वेउव्वि०-अंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्पस०-अथिरादिछ० णिय० । तं तु० छट्ठाणपदिदं । एवं णिरयगदिभंगो अप्पसत्थाणं ।

१८. तिरिक्खग० उ० बं० एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ णिय० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-अथिरादिपंच०--णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । एवं तिरिक्खगदिभंगो एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ ।

१९. मणुसग० उ० बं० पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थं०४[2]-

अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। सातवीं पृथिवीमें सामान्य नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि दो संस्थान और दो संहननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है।

१७. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। नरकगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार नरकगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान अप्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१८. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान एकेन्द्रिय जाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१९. मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस शरीर,

२ आ० प्रतौ अगु० ४ तस० णिमि इति पाठः। २ आ० प्रतौ तेजाक० पसत्थापसत्थ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगु०४–पसत्थ०-तस०४–सुभग-सुस्सर–आदे०–णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं०। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु० णि०। तं तु० छट्ठाणपदिदं। तिण्णियुग० सिया० अणंतगुणहीणं०। एवं मणुसगदिभंगो ओरालि०-ओरालि०-अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०।

२०. देवगदि० उ० बं० पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०-अंगो०-पसत्थ०४–देवाणु०-अगु०३–पसत्थ०-तस०४–थिरादिछ०-णिमि० णिय०। तं तु० छट्ठाणपदिदं०। अप्पसत्थ०४–उप० णि० अणंतगुणहीणं०। एवं पसत्थाणं देवगदीए सह एँक्कमेँक्कस्स। तं तु०।

२१. बीइंदि० उ० बं० तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि० अंगो०-पसत्थापसत्थ०४–तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-तस०-बादर-अपज्ज०-पत्ते०-अथिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं०। असंप० णि०। तं तु० छट्ठाण-पदिदं०। एवं असंप०। तीइंदि०-चदुरिंदि० ओघं। चदुसंठा०-चदुसंघ०-

---

कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार मनुष्यगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२०. देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु त्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माण का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियोंका देवगति के साथ विवक्षित प्रकृतिकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष कहना चाहिए। किन्तु विवक्षित प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो उसी प्रकार बन्ध करता है, जिस प्रकर देवगतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहा है।

२१. द्वीन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। असम्प्राप्तासृपाटिका संहननका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है या अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिए हुए होता है। इसी प्रकार असम्प्राप्तासृ-पाटिका संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजातिकी

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

आदाव० ओघं । उज्जोवं पढमपुढविभंगो । एवं पंचिंदियतिरिक्ख०३ ।

२२. तस्सेव अपज्जत्तेसु छण्णं कम्माणं ओघं । मिच्छत्तं ओघं । एवं सोलसक०-पंचणोक० । इत्थि० उ० बं० मिच्छत्त-सोलसक०-भय०-दु० णिय० अणंतगुणहीणं । हस्स-रदि-अरदि-सोग० सिया अणंतगुणहीणं० । एवं पुरिस० । हस्स० उ० बं० मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु[1]० णिय० अणु० अणंतगुणहीणं० । रदि० णिय० तं तु० छट्ठाणपदिदं० । एवं रदीए ।

२३. तिरिक्ख० उ० बं० एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि०४-अथिरादि०पंच[2]० णि० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । एवं तिरिक्खगदिभंगो एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि०४-अथिरादिपंच० ।

२४. मणुसगदि० उ० बं० पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०-अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ० ४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-

---

मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है। चार संस्थान, चार संहनन और आतपकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है। उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष पहली पृथिवीके समान है। इसी प्रकार अर्थात् सामान्य तिर्यञ्चोंके समान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिए।

२२. तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छह कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। मिथ्यात्वका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार सोलह कषाय और पाँच नोकषायोंकी मुख्यतासे जानना चाहिए। स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। हास्य, रति, अरति और शोकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। रतिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात् हास्यके समान रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३ तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान एकेन्द्रिय जाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि पाँचकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२४. मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन

---

१. आ० प्रतौ सोलसक० भयदु० इति पाठः। २ आ० प्रतौ० अथिरादिछ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिमि० णि० । तं० तु० छट्ठाणपदिदं । अप्पसत्थ०४—उप० णि० अणंतगुणहीणं० । एवं पसत्थाणं सव्वाणं मणुसगदीए सह ऍक्कमेॅक्कस्स । तं तु० छट्ठाणपदिदं । बीइंदियजादि० जोणिणिभंगो । तीइंदि०-चदुरिंदि० ओघं ।

२५. णग्गोद० उ० बं० पंचिंदि०—ओरालि०—तेजा०—क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४—अप्पसत्थवि०-तस०४—दूभग-दुस्सर-अणादेॅ०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं० । तिरिक्ख०-मणुस०-चदुसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस-अजस० सिया अणंतगुणहीणं० । एवं सादि० । णवरि तिण्णिसंघ० सिया० अणंतगुणहीणं । एवं खुज्जसंठा० । णवरि दोसंघ० सिया० अणंतगुणहीणं । एवं वामण० । णवरि असंपत्तसे० णिय० अणंतगुणहीणं । यथा संठाणं तथा संघडणं । असंप० बीइंदियभंगो । आदाउज्जो० पंचिंदियतिरिक्खभंगो ।

प्रशस्त वर्ण चतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार सब प्रशस्त प्रकृतियोंका मनुष्यगतिके साथ परस्पर सन्निकर्ष कहना चाहिए। किन्तु उनका परस्पर उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी होता है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। द्वीन्द्रियजाति की मुख्यतासे सन्निकर्ष जिस प्रकार तिर्यञ्चयोनिनीके कह आये हैं,उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है।

२५. न्यग्रोधसंस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक-शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, चार संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात् न्यग्रोधसंस्थानके समान स्वातिसंस्थानकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह तीन संहननोंका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार कुब्जक संस्थानकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह दो संहननोंका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार वामन संस्थानकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह असम्प्राप्तासृपाटिका संहननका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। यहाँ संस्थानोंकी मुख्यतासे जिस प्रकार सन्निकर्ष कहा है, उसी प्रकार संहननोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। मात्र असम्प्राप्तासृपाटिका संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष द्वीन्द्रिय जातिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। आतप और उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जिस प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके कह आये हैं,उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. अप्पसत्थ० उ० बं० तिरिक्ख०-बीइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०-दूभ०-अणादें०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं। उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० अणंतगुणहीणं०। दुस्सर० णि०। तं तु छट्ठाणपदिदं०। एवं दुस्सर०। एवं अपज्जत्ताणं सव्वविगलिंदि०-पुढवि०-आउ०-वणप्फदि-बादरपत्ते०-णियोद०।

२७. मणुसेसु खविगाणं ओघं। सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो।

२८. देवेसु सत्तण्णं कम्माणं ओघं। तिरिक्ख० उ० बं० एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थ०-थावर०-दुस्सर० सिया०। तं तु छट्ठाणप०। पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणहीणं। ओरालि०-तेजा०-क० पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं०। हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच० णिय० तं तु छट्ठाणपदिदं। एवं तिरिक्खगदिभंगो

---

२६. अप्रशस्त विहायोगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, द्वीन्द्रिय-जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, त्रस चतुष्क, दुर्भग, अनादेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। दुःस्वरका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात् अप्रशस्त विहायोगतिके समान दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान सब अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक बादर प्रत्येक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए।

२७. मनुष्योंमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है और शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पंचेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है।

२८. देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर आदि पाँचकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए; किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव इन्हींमेंसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०अथिरादिपंच० । मणुसगदिसंजुत्ताओ पसत्थाओ णिरयभंगो । एइंदि०-आदाव-थावरं ओघं । चदुसंठा०-चदुसंघ० ओघं ।

२६. असंप उ० बं० तिरिक्ख०-हुंडस०-अप्पस०४-तिरिक्खाणु०--उप०-अप्पस०-अथिरादिछ० णि० । तं तु० । पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि-अंगो०-पसत्थ०४—अगु०३—तस०४-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं । उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं । एवं अप्पसत्थविहायगदी । दुस्सर०-उज्जोव० पढमपुढविभंगो ।

३०. भवणवासिय-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मीसाणं सत्तं ओघं[1] । तिरिक्ख गदि० उ० बं० एइंदि०-हुंड०--अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०—अथिरादिपंच णियमा । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०३--बादर—पज्जत्त-पत्तेग०-णिमि० णि० अणंतगु० । आदाउ० सिया० अणंतगुणहीणं० ।

३१. असंप० उ० बं० तिरिक्ख०-पंचिं०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि०-

---

शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है या अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है । मनुष्यगति संयुक्त प्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग जिस प्रकार नरकगतिमें कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए । एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है । चार संस्थान और चार संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है ।

२६. असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुंडसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है । पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है । उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है । इसी प्रकार अप्रशस्त विहायोगतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । दुःस्वर और उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष प्रथम पृथिवीके समान जानना चाहिए ।

३०. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म-ऐशान तकके देवोंमें सात कर्मोंका भंग ओघके समान है । तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है । औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माण का नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है । आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणेहीन अनुभागको लिये हुए होता है ।

३१. असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक

---

१. ता० प्रतौ सोधम्मी० तस्स ओघं, आ० प्रतौ सोधम्मीसाणंतस्स ओघं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण०४-[तिरिक्खाणु०-] अगु०४-तस०४-अथिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं। अप्पसत्थ०-दुस्सर० णिय०। तं तु०। एवं अप्पसत्थवि०-दुस्सर०। सेसं देवोघं।

३२. सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति विदियपुढविभंगो। आणद याव णवगेवज्जा त्ति सो चेव भंगो। णवरि तिरिक्खगदिदुगं उज्जोवं वज्ज। अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति छण्णं कम्माणं ओघं। अप्पचक्खाणकोध० उ० बं० एक्कारसकसाय-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दु० णिय०। तं तु छट्ठाणपदिदं०। एवमण्णमण्णाणं। तं तु०।

३३. हस्स० उ० बं० बारसक०-पुरिसवे०-भय-दु० णिय० अणंतगुणहीणं०। रदि० णि०। तं तु०। एवं रदीए०। मणुसगदि० देवोघं। एवं पसत्थाओ सव्वाओ।

आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात् असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके समान अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। शेष भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

३२. सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें वही भङ्ग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिद्विक और उद्योतको छोड़कर सन्निकर्ष जानना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छह कर्मोंका भंग ओघके समान है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव ग्यारह कषाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष होता है जो उत्कृष्ट अनुभाग बन्धरूप भी होता है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धरूप भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धरूप होता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है।

३३. हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। रतिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात् हास्यके समान रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सामान्य देवोंमें जिस प्रकार कह आये हैं,उस प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात् मनुष्यगतिके समान सब प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. अप्पसत्थवण्ण० उ०[1] बं० मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० बं० अणंतगुणहीणं० । अप्पसत्थगंध०३-उप०-अथिर-असुभ-अजस० णि० । तं तु छट्ठाणपदिदं० । एवमण्णमण्णस्स । तं तु० । तित्थ० सिया० अणंतगुणहीणं० ।

३५. एइंदिएसु सत्तण्णं कम्माणं पंचिंदि०तिरि०अपज्ज०भंगो । पंचिंदि० उ० बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० सिया अणंतगुणहीणं० । मणुसग०-मणुसाणु०-उज्जो० सिया० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०-वज्जरि०-पसत्थ०४-अगु० ३-पसत्थ०-तस० ४-थिरादिछ०-णिमि० णि० तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप० णिय० अणंतगुणहीणं० । एवं पंचिंदियभंगो पसत्थाणं सव्वाणं । मणुस०-मणुसाणु०वज्जरि०सेसाणं पंचिंदि०तिरिक्खअपज्जत्तभंगो । एवं सव्वएइंदियाणं० ।

---

३४. अप्रशस्त वर्णके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। अप्रशस्त गन्ध आदि तीन, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन अशुभ प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करनेवाला जीव उन्हींमेंसे शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिए हुए होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिए हुए होता है।

३५. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जातिके समान सब प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यापूर्वी और वज्रर्षभनाराचसंहनन तथा शेष प्रकृतियोंकी मुख्यतासे

---

१ आ० प्रतौ-वण्ण० ४ उ० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेउ०-वाउका० एइंदियभंगो०। णवरि तिरिक्खगदि०-तिरिक्खाणु० धुवभंगो। पसत्थाणं उज्जो० सिया०। तं तु०।

३६. पंचिंदि०-तस०२ ओघभंगो। एवं पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-कोधादि४—अचक्खु०-भवसि०-सण्णि-आहारग त्ति। ओरालि० मणुसभंगो।

३७. ओरालियमि० सत्तण्णं कम्माणं अपज्जत्तभंगो। तिरिक्ख०-चदुजा०—पंचसंठा०—पंचसंघ०—अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०—उप०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४—अथिरादिछं० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। मणुसगदिपंचगं पंचि०-तिरिक्खभंगो। देवगदि उ० बं० पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि० अंगो०-पसत्थ०४—देवाणु०-अगु०३—पसत्थ०-तस०४—थिरादिछ०—णिमि० णिय०। तं तु०। अप्पसत्थ०४--उप० णि० अणंतगुणहीणं०। तित्थ० सिया०। तं तु०। एवमेदाओ ऍक्कमेंक्कस्स तं तु०।

३८. वेउव्वियका०-वेउव्वियमि० देवोघं। णवरि उज्जो० मूलोघं। आहार०-

---

सन्निकर्ष पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रियोंके जानना चाहिए। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ध्रुवभङ्गके समान है। प्रशस्त प्रकृतियों और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है, किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थानपतित हानिको लिए हुए होता है।

३६. पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। औदारिककाययोगी जीवोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है।

३७. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भंग अपर्याप्तकोंके समान है। तिर्यञ्चगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि छहका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है,तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है,तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३८. वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान

---

१. आ० प्रतौ थिरादिछ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारमि० छण्णं कम्माणं सव्वट्ठ०भंगो। कोधसंज० उ० बं० तिण्णिसंज०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय०-दु० णिय०। तं तु०। एवमेक्कमेक्कस्स। तं तु०।

३९. हस्स० उ० बं० चदुसंज०-पुरिस०-भय०-दु० णि० अणंतगुणहीणं०। रदि० णि०। तं तु०। एवं रदीए।

४०. देवगदि० उ० बं० पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०-अंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णि०। तं तु०। अप्पसत्थवण्ण०४-उप० णिय० अणंतगुणहीणं०। तित्थ० सिया०। तं तु०। एवं पसत्थाओ एक्कमेक्कस्स। तं तु०।

४१. अप्पसत्थवण्णं०[1] उ० बं० देवगदि०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-

---

भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग मूलोघके समान है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें छह कर्मोंका भङ्ग सर्वार्थसिद्धिके समान है। क्रोध संज्वलनके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलन, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है।

३९. हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। रतिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४०. देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव इन्हींमेंसे शेषका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है।

४१. अप्रशस्त वर्णके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगति, पंचेन्द्रिय जाति,

---

१. आ० प्रतौ अप्पसत्थवण्ण० ४ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे[1]०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं०। अप्पसत्थगंध०३-उप०-अथिर-असुभ-अजस० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया० अणंतगुणहीणं०। एवं अप्पसत्थगंध०३-[उप०-] अथिर-असुभ-अजस०।

४२. कम्मइ० सत्तण्णं कम्माणं ओघं। तिरिक्ख० उ० बं० एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थवि०-थावर-सुहुम-अपज्ज०-साधार०-दुस्सर० सिया०। तं तु०। पंचिं०-ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तस०४ सिया० अणंतगुणहीणं०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० णिय० अणंतगु०। हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच० णि०। तं तु०। एवं तिरिक्खगदिभंगो हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच०। मणुसग० उ० बं० णिरयोघं। एवं ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०। देवगदि०४ ओरालियमिस्स०भंगो।

वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। अप्रशस्त गन्ध तीन, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात् अप्रशस्त वर्णके समान अप्रशस्त गन्ध आदि तीन, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४२. कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और त्रसचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभाग रूप होता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभाग रूप होता है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान हुण्डक संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर आदि पाँचकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सामान्य नारकियोंके जिसप्रकार कह आये हैं, उस प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार औदारिकशरीर, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी

---

१ आ० प्रतौ अगु० ३ तस० इति पाठः। २ ता० प्रतौ अणादे० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. पंचिंदि० उ० बं० मणुसग०-देवग०-दोसरी०-दोअंगो०-वज्जरि०-दो-आणु०-तित्थय० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ-०णिमि० णि० । तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप० णिय० अणंतगु० । एवं पंचिंदियभंगो पसत्थाणं ।

४४. एइंदि० उ० बं० तिरिक्खग०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर-अथिरादिपंच० णि० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० णि० अणंतगु० । पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-बादर-पज्जत्त०-पत्ते० सिया० अणंत-गुणहीणं० । सुहुम०-अपज्ज०-साधार० सिया० । तं तु० । एवं थावर० ।

४५. सुहुम० उ० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर-अपज्ज०-साधार०-अथिरादिपंच० णि० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-

---

मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगति चतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जिसप्रकार कह आये हैं, उसप्रकार जानना चाहिए।

४३. पञ्चेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति, देवगति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग का भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जातिके समान प्रशस्त प्रकृतियों की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४४. एकेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्त-गुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात् एकेन्द्रिय जातिके समान स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४५. सूक्ष्म प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अपर्याप्त, साधारण और

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पसत्थ०४-अगु०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं । एवं अपज्ज०-साधार० । सेसं ओघं । तिरिक्ख०-मणुस० एइंदि० सुहुम०-अपज्जत्त०-साधारणसंजुत्तसंकिलेस्स णेरइय० पंचिंदियसंजुत्तसंकिलेस्स त्ति ।

४६. इत्थिवेदेसु सत्तण्णं कम्माणं ओघं । णिरयग० उ० बं०[1] पंचिंदियादि-पसत्थाओ ओघं । हुंड०-अप्पसत्थ०४--णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०--अथिरादिछ० णिय० । तं तु० । एवं णिरयाणु०-अप्पसत्थवि०-दुस्सर० ।

४७. तिरिक्ख० उ० बं० एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४–तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिपंच० णिय० । तं तु० । ओरालियादिपगदीओ देवोघं । एवं एइंदि०-[हुंड०-अप्पसत्थ०४-]तिरिक्खाणु०-[उप०-]थावर०-[अथिरादिपंच०] । तिण्णि जादि० पंचिं०तिरिक्खजोणिणिभंगो ।

४८. सेसाणं पगदीणं ओघं । णवरि असंप० उ० बं० तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-

---

अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है । औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है । इसी प्रकार अर्थात् सूक्ष्म प्रकृतिके समान अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । शेष ओघके समान है । तिर्यञ्च और मनुष्य जीव सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण संयुक्त संक्लेश परिणामोंसे एकेन्द्रिय जातिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं और पञ्चेन्द्रिय जाति संयुक्त संक्लेश परिणामोंसे नरकगतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं ।

४६. स्त्रीवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । नरकगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान हैं । वह हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है । इसी प्रकार अर्थात् नरकगतिके समान नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४७. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है । औदारिक शरीर आदि प्रकृतियोंका सन्निकर्ष जिस प्रकार सामान्य देवोंमें कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ कहना चाहिए । इसी प्रकार एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर और अस्थिर आदि ५ की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । तीन जातिकी मुख्यता से सन्निकर्ष पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनीके जिस प्रकार कह आये हैं, उस प्रकार है ।

४८. शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि असम्प्राप्तासृपाटिका संह-

---

१. ता० प्रतौ ओघं । उ० बं० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क०-हुंड०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-तस०४—अथिरादिपंच-णिमि० णिय० अणंतगु०। बे० सिया० तं तु०। पंचिं०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पस०-पज्जत्तापज्ज०-दुस्सर० सिया० अणंतगुण०। तिरिक्ख-मणुसिणीओ बेइंदिय-संजुत्तं संकिलेस्सं ति। आदाउज्जो० देवोघं।

४९. चदुसंठा०-चदुसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० ओघं। सुहुम० उ० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर-अथिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। अपज्जत्त-साधार० णिय०। तं तु०। एवं अपज्जत्त-साधार०।

५०. पुरिसेसु ओघं।

५१. णवुंसगे सत्तण्णं कम्माणं ओघं। णिरयगदि० उ० बं० पंचिंदियादिपगदीओ सव्वाओ ओघं। हुंड-अप्पसत्थवण्ण०४-णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय०। तं तु०। एवं णिरयाणुपु०।

ननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुंड संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। द्वीन्द्रिय जातिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुबन्ध करता है, तो वह नियमसे छह स्थानपतित हानिरूप होता है। पञ्चेन्द्रिय-जाति, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, पर्याप्त, अपर्याप्त और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। तिर्यञ्चयोनिनी और मनुष्यनी संक्लेश परिणामयुक्त द्वीन्द्रिय जातिका बन्ध करती है। आतप और उद्योतका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

४९. चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका भङ्ग ओघके समान है। सूक्ष्म प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। अपर्याप्त और साधारण का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अपर्याप्त और साधारणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५०. पुरुषवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

५१. नपुंसकवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। नरकगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके पञ्चेन्द्रिय जाति आदि सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। वह हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२. तिरिक्खगदि० उ० बं० पंचिंदियादिपसत्थाओ अणंतगुणहीणं० । हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय० । तं तु छट्ठाणपदिदं० । एवं असंप०-तिरिक्खाणु० ।

५३. एइंदि० उ० बं० थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार० णिय० । तं तु० । सेसं णिय० अणंतगुणहीणं । एवं एइंदियभंगो थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार० । सेसं ओघं ।

५४. अवगदवेदे० आभिणि० उ० बं० चदुणा० णि० बं० णि० उक्कस्सं । एवं चदुणाणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-पंचंतरा० । कोधादि०४ ओघं ।

५५. मदि०-सुद०-विभंग०-मिच्छादि० ओरालि० उ० बं० तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु० सिया० अणंतगुणहीणं० । मणुसगदिदुग-उज्जो० सिया० । तं तु० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४—पसत्थ०—तस०४—थिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतगु० । ओरालि०अंगो०-वज्जरि० णिय० । तं तु० । एवं ओरालि०अंगो०-

---

५२. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करता है। हुण्ड संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५३. एकेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय जातिके समान स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। शेष भङ्ग ओघके समान है।

५४. अपगतवेदी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

५५. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें औदारिक शरीरके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। मनुष्यगतिद्विक और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी होता है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है,तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्जरि० । सेसाणं ओघं आहारदुगं तित्थयरं च वज्ज । णवरि देवगदि० उ० बं० जस० णिय० । तं तु० । एवं सव्वाणं पसत्थाणं[1] ।

५६. आभिणि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० उक्कस्स० अणुदिसभंगो[2] । अप्पसत्थवण्ण० उ० बं० मणुसग०-देवग०-ओरालि०-वेउव्वि०-[ओरालि०अंगो०-वेउव्वि०-अंगो०-] वज्जरि०-दोआणु०-तित्थय० सिया० अणंतगु० । पंचिंदियादिपसत्थाओ णिय० अणंतगु० । अप्पसत्थगंध०३–उप०-अथिर-असुभ-अजस० णिय० । तं तु० । एवं एदाओ एक्कमेक्कस्स । तं तु० । सेसं ओघं । एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामिच्छादि० ।

५७. मणपज्जव० खइयाणं ओघं । सेसाणं आहारका०भंगो । एवं संजद-सामाइ०-छेदोव० । परिहारे आहारकायजोगिभंगो । णवरि आहारदुगं देवगदिभंगो । णवरि

होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। किन्तु आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़ कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव यशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु उसका उत्कृष्ट बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट बन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार सब प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५६. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका सन्निकर्ष अनुदिशके समान है। अप्रशस्त वर्णके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति, देवगति, औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। अप्रशस्त गन्ध आदि तीन, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव इन्हींमेंसे शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। शेष कथन ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

५७. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें क्षायिक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग आहारकाययोगी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिए। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें आहारकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विकका भङ्ग देवगतिके समान है। इतनी और विशेषता है कि

---

१. ता० प्रतौ पसत्थाणं पसत्थाणं ? इति पाठः। २. आ० प्रतौ उक्कस्स अणुक्कस्सभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजदेसु अप्पसत्थाणं तित्थयरं ण बंधदि । एवं सव्वाणं । सुहुमसंप० अवगतवेदभंगो । संजदासंजद० परिहारभंगो। णवरि अप्पणो पगदीओ णादव्वाओ । असंजदे मदि०भंगो। णवरि तित्थयरं० उ० बं० देवगदि०४ णि० बं०। तं तु० । चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो ।

५८. किण्णाए सत्तण्णं कम्माणं ओघं । णिरयगदिदंडओ तिरिक्खगदिदंडओ एइंदियदंडओ[1] णवुंसगदंडगभंगो । मणुसगदिदंडओ णिरयोघं । देवगदि० उ० बं० वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० णिय० । तं तु० । तित्थ० सिया० । तं तु० । सेसाणं पसत्थाणं अप्पसत्थाणं च णिय० अणंतगु० । एवं देवगदि०४–तित्थ० । सेसं ओघं ।

५९. णील-काऊणं सत्तण्णं क० ओघं । णिरय० उ० बं० णिरयाणु० णिय० । तं तु० । सेसाओ पगदीओ णिय० अणंतगु० । एवं णिरयाणु० । तिरिक्खग० उ० बं० हुंडसंठाणादि० णिरयोघं । सेसाणं किण्णभंगो । काऊए तित्थ० मणुसगदिभंगो ।

संयत जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंके साथ तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार सबके जानना चाहिए। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। संयतासंयत जीवोंमें परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। असंयत जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगतिचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो नियमसे छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भंग है।

५८. कृष्णलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। नरकगतिदण्डक, तिर्यञ्चगतिदण्डक और एकेन्द्रिय जाति दण्डकका भङ्ग नपुंसकवेददण्डकके समान है। मनुष्यगतिदण्डकका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। शेष प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार देवगति चार और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। शेष भङ्ग ओघके समान है।

५९. नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। नरकगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके हुण्डसंस्थान आदिका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग कृष्ण लेश्याके समान है। कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है।

---

१. ता० प्रतौ णिरयगदिदंडओ:एइंदियदंडओ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०. तेऊए सत्तण्णं कम्माणं ओघं। तिरिक्ख० उ० बं० एइंदि०-हुंडसं०-सोधम्मपढमदंडओ मणुसगदिपंचगस्स ओघं। देवगदिदंडओ परिहार०भंगो। असंप० उ० बं० तिरिक्ख०-पंचिंदियादि-सोधम्मदंडओ अप्पसत्थ०-दुस्सर० णि०। तं तु०। चदुसंठा०-चदुसंघ० सोधम्मभंगो। एवं पम्माए वि। णवरि अप्पसत्थाणं सहस्सार-भंगो। सुक्काए सत्तण्णं कम्माणं मणुसगदिपंचगस्स खविगाणं च ओघं। हुंडगादीणं अप्पसत्थाणं णवगेवज्जभंगो।

६१. अब्भवसि० सत्तण्णं क० ओघं। दुगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थवण्ण०४-दोआणु०-उप०-आदाउज्जोव०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४ अथिरादि-छ० ओघं। मणुसगदिपंचग०-देवगदि०४ तिरिक्खोघं। पंचिंदि० उ० बं० दुगदि-दोसरी०-दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-उज्जो० सिया०। तं तु०। सेसाओ पगदीओ पसत्थाओ णिय०। तं तु०। अप्पसत्थ०४-उप०-अप्पसत्थाणं णिय० अणंतगुणही०।

६२. सासणे छण्णं कम्माणं ओघं। अणंताणुबं० कोध० उ० बं० पण्णारसक०

६० पीत लेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, सौधर्मकल्पसम्बन्धी प्रथम दण्डक और मनुष्यगतिपञ्चकका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिदण्डकका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके उत्कृष्ट अनुभागको बाँधनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति आदि सौधर्मदण्डक, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। इसी प्रकार पद्म लेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है। शुक्ललेश्यामें सात कर्म, मनुष्यगतिपञ्चक और क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। हुण्डक संस्थान आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग नौग्रैवेयकके समान है।

६१. अभव्योंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। दो गति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि छहका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चक और देवगतिचतुष्कका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। शेष प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्ण चार, उपघात और अप्रशस्त विहायोगतिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है।

६२. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें छह कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। अनन्तानुबन्धी

१. आ० प्रतौ-पंचग० देवगदिभंगो। देवगदि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्थि०-अरदि-सोग-भय-दु० णिय० । तं तु० । एवमेदाओ ऍक्कमेंक्कस्स । तं तु० । पुरिस०-हस्स-रदि ओघं । तिरिक्खग० उ० बं० वामण०-खीलि०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णि० । तं तु० । पंचिंदियादि० णिय० अणंतगु० । उज्जोवं सिया० अणंतगु० । सेसं ओघं । असण्णी० तिरिक्खोघं । णवरि मोह० मणुसअपज्जत्तभंगो । अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं उक्कस्सओ सण्णियासो समत्तो ।

६३. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० आभिणिबोधियणाणावरणस्स जहण्णयं अणुभागं बंधंतो चदुणाणाव० णिय० बं० । णिय० जह० । एवमण्णमण्णस्स जहण्णा । एवं पंचण्णं अंतराइयाणं । णिद्दाणिद्दा० जह० अणु० बं० पचलापचला-थीणगि० णिय० बं० । तं तु० छट्ठाणप० । अणंतभाग०भहि०५ । छदंसणा०

क्रोधके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पन्द्रह कषाय, स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है । इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए । किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है । पुरुषवेद, हास्य और रतिका भङ्ग ओघके समान है । तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव वामन संस्थान, कीलक संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है । पञ्चेन्द्रिय जाति आदिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है । उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है । शेष भङ्ग ओघके समान है । असंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि मोहनीय कर्मका भङ्ग मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है । अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

६३. जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य अनुभागको लिये हुए होता है । इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्धके साथ सन्निकर्ष जानना चाहिए । इसी प्रकार पाँच अन्तरायका सन्निकर्ष जानना चाहिए । निद्रानिद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिका नियमसे बन्ध करता है जो जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है। यदि अजघन्य होता है तो छह स्थान पतित वृद्धिको लिये हुए होता है । या तो अनन्तभागवृद्धिरूप होता है या असंख्यातभागवृद्धि आदि पाँच वृद्धिरूप होता है । छह दर्शनावरणका नियमसे बन्ध

१. ता० प्रतौ जह० दुवि० इति पाठः ।

णिय० अणंतगुणब्भहि० । एवं पचलापचला-थीणगिद्धि० । णिद्दाए जह० बं० पचला० णिय० । तं तु० छट्ठाण० । चदुदंसणा० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं[1] पचला० । चक्खुदं० ज० बं० तिण्णिदंस० णि० बं० । णि० जहण्णा । एवं तिण्णिदंस० । सादा० जह० बं० असादस्स अबं० । एवं असाद० । एवं चदुआउ०-दोगो० ।

६४. मिच्छ० जह० बं० अणंताणु०४ णि० । तं तु० । बारसक०--पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं अणंताणु०४ । अपचक्खाणकोध० ज० बं० तिण्णिकसा० णिय० । तं तु० । अट्ठक०-पंचणोक० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं तिण्णिक० । पच्चक्खाणकोध० ज० बं० तिण्णिक० णिय० । तं तु० । चदुसंज०--पंचणोक० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं तिण्णं क० । कोधसंज० ज० बं० तिण्णिसंज० णि० अणंतगु० । माणसंजे०[2] ज० बं० दोण्णं संज० णिय० अणंतगुणब्भ० ।

करता है जो अनन्तगुणवृद्धिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। निद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव प्रचलाका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है। यदि अजघन्य होता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रचलाकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। चक्षुदर्शनावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य होता है। इसी प्रकार तीन दर्शनावरणकी मुख्यतासे जानना चाहिए। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव असातावेदनीयका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार असातावेदनीयकी अपेक्षा जानना चाहिए। इसी प्रकार चार आयु और दो गोत्रके सम्बन्धमें जानना चाहिए।

६४. मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव अनन्तानुबन्धी चारका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणी वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चारकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन कषायोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। आठ कषाय और पाँच नोकषायका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यान मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। प्रत्याख्यानावरण क्रोधके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेष तीन कषायोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागबन्ध भी करता है और अजघन्य अनुभागबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य अनुभागबन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। चार संज्वलन और पाँच नोकषायका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शेष तीन प्रत्याख्यानावरण कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। क्रोधसंज्वलनके जघन्य अनुभाग का बन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलनोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता

---

१. ता० आ० प्रत्योः छट्ठाण० । चदुसंज० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः तिण्णिसंज० णि० अणंतगु० । माणसंज० ज० बं० तिण्णिसंज० णिय० अणंतगु० । माणसंज० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मायसंज० ज० बं० लोभसंज० णिय० अणंतगुणब्भ० । लोभसंज० ज० बं० सेसाणं अबंध० । इत्थि० ज० बं० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं० णिय० अणंतगुणब्भ० । हस्स-रदि०-अरदि-सोग० सिया अणंतगुणब्भ० । एवं णवुंस० । पुरिस० ज० बं० चदुसंज० णिय० अणंतगुणब्भ० । हस्स० ज० बं० चदुसंज०-पुरिस० णिय० अणंतगुणब्भ० । रदि-भय-दुगुं० णिय० । तं तु० । एवं रदि-भय-दुगुं० । अरदि० ज० बं० चदुसंज०--पुरिस०--भय-दु० णिय० अणंतगुणब्भ० । सोग० णिय० । तं तु० । एवं सोग० ।

६५. णिरयगदि ज० बं० पंचिंदि०--वेउव्वि०--तेजा०--क०--वेउव्वि०अंगो०--पसत्थापसत्थवण्ण०४--अगु०४--तस०४--णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । हुंड०--णिरयाणुपु०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय० । तं तु० । एवं णिरयाणु० । तिरिक्ख० ज० बं० पंचिंदि०-ओरालि०--तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्था-

---

है । मानसंज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनवाला जीव दो संज्वलनोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है । मायासंज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है । लोभसंज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेष संज्वलनोंका अबन्धक होता है । स्त्रीवेदके जघन्य अनुभाग का बन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है । हास्य, रति, अरति और शोकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । पुरुषवेदसे जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है । हास्यके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार संज्वलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है । रति, भय और जुगुप्सा का नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागबन्ध भी करता है और अजघन्य अनुभागबन्ध भी करता है । यदि अजघन्य अनुभागबन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार रति, भय और जुगुप्साकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है । शोकका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागबन्ध भी करता है और अजघन्य अनुभागबन्ध भी करता है । यदि अजघन्य अनुभागबन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

६५. नरकगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है । हुण्डसंस्थान, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागबन्ध भी करता है और अजघन्य अनुभागबन्ध भी करता है । यदि अजघन्य अनुभागबन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । तिर्यञ्चगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, सम-

---

१. आ० प्रतौ एवं रदीए भयदु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थ०४–अगु०४–पसत्थ०–तस०४–थिरादिछ०–णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । तिरिक्खाणु० णि० । तं तु० । उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं तिरिक्खाणु० । मणुसगदि० ज० बं० पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४ अगु०-उप०-तस०-बादर०-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-अपज्ज०-थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । मणुसाणु० णि० । तं तु० । पर०-उस्सा०-पज्ज० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं मणुसाणु० । देवगदि०-ज० बं० पंचिंदि०–वेउव्वि०–तेजा०–क०–वेउव्वि०अंगो०–पसत्थापसत्थ०४–अगु०४–तस०४–णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । समचदु०–देवाणु०–पसत्थ०–सुभग-सुस्सर-आदें० णिय० । तं तु० । थिराथिर–सुभासुभ–जस०–अजस० सिया० । तं तु० । एवं देवाणु० ।

चतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागबन्ध भी करता है और अजघन्य अनुभागबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य अनुभागबन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियम से बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, अपर्याप्त और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। परघात, उच्छ्वास और पर्याप्तका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यता से सन्निकर्ष जानना चाहिए।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

६६. एइंदि० ज० बं० तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क०--पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भहियं० । हुंड०-थावर-दूभग-अणादें० णि० । तं तु० । पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-बादर-पज्जत्त-पत्ते० सिया० अणंतगुणब्भ० । सुहुम-अपज्ज०--साधार०-थिराथिर--सुभासुभ-जस०--अजस० सिया० । तं तु० । एवं थावरं । बीइंदि० ज० बं० तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०--पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०--तस०--बादर०--पत्ते०--णिमि० णिय० अणंतगुणब्भहियं० । हुंड०-असंप०-दूभग०-अणादें० णि० । तं तु० । पर०-उस्सा०-उज्जो०-पज्ज० सिया० अणंतगुण० । अप्पसत्थ०-अपज्ज०-थिराथिर०--सुभासुभ-दुस्सर-जस०-अजस० सिया० । तं तु० । एवं तीइंदि०--चदुरिं० । पंचिंदि० ज० बं० णिरय०--तिरिक्खग०-असंपत्त०-दोआणु० सिया० अणंतगुणब्भ० । ओरालि०-वेउव्वि०-दोअंगो०-उज्जो० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०--पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णि० ।

६६. एकेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्डसंस्थान, स्थावर, दुर्भग और अनादेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। द्वीन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, दुर्भग और अनादेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। परघात, उच्छ्वास, उद्योत और पर्याप्तका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुःस्वर, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, तिर्यञ्चगति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं तु० । हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०--अप्पसत्थ०--अथिरादिछ० णि० अणंतगुणब्भ० । एवं तस० ।

६७. ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अथिरादिपंच० णिय० अणंतगुणब्भहियं० । एइंदि०-असंपत्त०-अप्पस०-थावर०-दुस्सर० सिया० अणंतगुणब्भहि० । पंचि०--ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०--णिमि० णि० । तं तु० । एवं उज्जो० । वेउव्वि० ज० बं० णिरय०--हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०--उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णियं० अणंतगुणब्भहियं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०-अंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णि० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । एवं वेउव्वि०अंगो० । आहार० ज० बं० देवगदि०--पंचिंदि०--वेउव्वि०-तेजा०--क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-देवाणु०-अगु० ४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-

पतित वृद्धिरूप होता है । तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है, जो तं तु-रूप होता है । हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है । इसी प्रकार त्रसप्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

६७. औदारिक शरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है । एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है । पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।जो तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है, वह जघन्य व अजघन्य अनुभाग बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। वैक्रियिक शरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है । पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । आहारकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त

१. ता० प्रतौ अथिरादिछ० णिमि० णिय० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । आहार०अंगो० णि० बं० । तं तु० । तित्थय० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं आहारअंगो[1]० । तेजा० जह० बंधं० णिरय०-तिरिक्ख०-एइंदि०-असंप०-दोआणु०-अप्पसत्थ०-थावर-दुस्सर० सिया० अणंतगु० । पंचिंदि०-दोसरी०-दोअंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० । तं तु० । कम्मइ०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० । तं तु० । हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप[3]०-अथिरादिपंच० णि० बं० अणंतगुणब्भहियं० । एवं कम्मइ०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० ।

६८. समचदु० ज० बं० तिरिक्ख०-दोसरीर०-दोअंगो०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-सिया० अणंतगु० । मणुसग०--देवग०--छस्संघ०--दोआणु०--दोविहा०--थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं समचदुर०भंगो पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० । णग्गोद०

विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। आहारक आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार आहारक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तैजसशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चार, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माण का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार कार्मणशरीर, प्रशस्त, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

६८. समचतुरस्रसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगति, देवगति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार समचतुरस्रसंस्थानके समान प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और

---

१. ता० प्रतौ आहारभं० (अं) गो०, आ० प्रतौ आहारभंगो० इति पाठः। २. आ० प्रतौ तेजाक० बंध० इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः असंपत्तवण्ण० ४ उप० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ०। मणुस०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया०। तं तु०। पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। एवं तिण्णिसंठाणं पंचसंघ०। हुंडसं० ज० बं० णिरय०-मणुस०-चदुजादि०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावरादि४-थिरादिछयुग० सिया०। तं तु०। तिरिक्ख०-पंचिंदि०-दोसरीर-दोअंगो०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तस०४ सिया० अणंतगुणब्भ०। तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ०। एवं दूभग-अणादे०।

६६. ओरालि०अंगो० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पस०-अथिरादिछ० णिय० अणंतगुणब्भ०। पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णिय०। तं तु०। उज्जोवं सिया०। तं तु०।

आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगति, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तीन संस्थान और पाँच संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। हुण्डसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, मनुष्यगति, चार जाति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि वह बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, और त्रसचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार दुर्भग और अनादेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

६६. औदारिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७०. असंप० ज० बं० तिरिक्ख०-पंचिंदि०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-पज्ज० सिया० अणंतगुणब्भ०। मणुसगदि-तिण्णिजादि-छसंठा०-मणुसाणु०-दोविहा०-अपज्ज०-थिरादिछयुग० सिया०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०-उप०-तस०-बादर-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ०।

७१. अप्पसत्थवण्ण० ज० बं० देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४—देवाणु०-अगु०३—पसत्थ०-तस०४—थिरादिछ०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। आहारदुगं तित्थय० सिया० अणंतगुणब्भ०। अप्पसत्थ-गंध-रस-फस्स०-उप० णि०। तं तु०। एवं अप्पसत्थगंध-रस-फस्स०-उप०। यथा गदी तथा आणुपुव्वी।

७२. आदाव० ज० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४—तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिपंच० णिय० अणंतगुणब्भ०। ओरालि०-तेजा०-क०-

---

तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

७०. असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत और पर्याप्तका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगति, तीन जाति, छह संस्थान, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, अपर्याप्त और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

७१. अप्रशस्त वर्णके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। आहारकद्विक और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्ध, अप्रशस्त रस, अप्रशस्त वर्ण और उपघातका नियमसे बन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार अप्रशस्त गन्ध, रस व स्पर्श और उपघातकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। गतियोंकी मुख्यतासे जिस प्रकार सन्निकर्ष कह आये हैं उसी प्रकार आनुपूर्वियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

७२. आतपके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर,

---

१. आ० प्रतौ छसंघ० इति पाठः। २. ता० प्रतौ अप्पसत्थगंधरस पस० उप० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थ०४–अगु०३–बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० । तं तु० । उज्जोवं ओरालिय-भंगो० ।

७३. अप्पसत्थवि० ज० बं० णिरय०-मणुस०-३जादि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दो-आणु०-थिरादिछयु० सिया० । तं तु० । तिरिक्ख०-पंचिंदि०-दोसरी०-दोअंगो०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४–अगु०४–तस०४–णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं दुस्सर० ।

७४. सुहुम० ज० बं० तिरिक्ख०–ओरालि०–तेजा०–क०-पसत्थापसत्थ०४–तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । एइंदि०-हुंड०-थावर०-दूभ०-अणादे०-अजस० णिय० । तं तु० । पर०-उस्सा०-पज्जत्त०-पत्ते० सिया० अणंतगुणब्भ० । अपज्ज०-साधा०-थिराथिर०-सुभासुभ० सिया० । तं तु० । एवं साधार० ।

७५. अपज्ज० ज० बं० तिरिक्ख[1]०-पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-तिरिक्ख०-तस०-

---

कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका भङ्ग औदारिकशरीरके समान है।

७३. अप्रशस्त विहायोगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, मनुष्यगति, तीन जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

७४. सूक्ष्मप्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त और प्रत्येकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अपर्याप्त, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार साधारण प्रकृतिकी मुख्यतासे जानना चाहिए।

७५. अपर्याप्त प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय-

---

१. आ० प्रतौ सुभासुभ० सिया० तं तु० तिरिक्ख० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादर-पत्ते० सिया० अणंतगुणब्भ०। मणुस०-चदुजादि०-असंप०-मणुसाणु०-थावर०-सुहुम०-साधार० सिया०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ०। हुंड०-अथिरादिपंच णि०। तं तु०।

७६. थिर०ज० बं० तिरिक्ख०-पंचिंदि०-दोसरी०-दोअंगो०-तिरिक्खाणु०-आदा-उज्जो०-तस०४-तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ०। मणुसग०-देवग०-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर०-सुहुम०-साधार०-सुभादिपंचयुग०सिया०। तं तु०। तेजा०-कम्म०-पसत्थापसत्थ०४-पज्ज०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भं०। बादर-पत्तेय० सिया० अणंतगुणब्भ०। एवं सुभ०-जसगि०। णवरि जस०-सुहुम-साधारणं वज्जं।

७७. अथिर० ज० बं० णिरय-देवगदि-मणुसगदि-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-दोविहा०-थावरादि४-सुभादिपंचयुग० सिया०। तं तु०। तिरिक्ख०-

---

जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर और प्रत्येकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगति, चार जाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म और साधारणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्डसंस्थान, और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

७६. स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगति, देवगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और शुभादि पाँच युगलोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, पर्याप्त और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। बादर और प्रत्येकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार शुभ और यशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिके भङ्गमें स्थावर, सूक्ष्म और साधारणको छोड़ देना चाहिए।

७७. अस्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, देवगति, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार और शुभादि पाँच युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय-

---

१. ता० प्रतौ णिमि० अणंतगुण० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदि०-दोसरीर-दोअंगो०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-आदावुज्जो०-तस०४-तित्थं० सिया० अणंतगुणब्भ०। तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ०। एवं असुभ-अजस०।

७८. तित्थय० ज० बं० देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-अजस०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भहियं बंधदि।

७९. णिरएसु आभिणिबोधि० ज० अणु० बं० चदुणाणा० णिय०। तं तु०। एवमण्णमण्णस्स। एवं पंचंतराइ०। णिद्दाणिद्दाए ज० बं० पचलापचला-थीणगि० णि०। तं तु०। छदंसणा० णि० अणंतगुणब्भ०। एवं पचलापचला-थीणगि०[2]। णिद्दा० ज० बं० पंचदंस० णि०। तं तु०। एवमण्णमण्णस्स। तं तु०। वेदणीय-आउग-गोद० ओघं।

जाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, त्रस चतुष्क और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अशुभ और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

७८. तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका नियमसे बन्ध होता है जो अनन्तगुणा अधिक बाँधता है।

७९. नारकियोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार पाँच अन्तरायका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। निद्रानिद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि वह अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। छह दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। निद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सबका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे बन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। वेदनीय, आयु

---

१. आ० प्रतौ आदावुज्जो० तित्थ० इति पाठः। २. आ० प्रतौ थिणगि०३ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८०. मिच्छ० ज० बं० अणंताणु०४ णि० बं० । तं० तु० । बारसक०-पंच-णोक० णि० अणंतगुणब्भहियं० । एवं अणंताणु०४ । अपच्चक्खा०कोध० ज० बं० ऍक्कारसक०-पंचणोक० णि० । तं तु० । एवमण्णमण्णस्स । तं तु० । इत्थि० ज० बं० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु० णिय० अणंतगुणब्भहि० । हस्स-रदि-अरदि-सोग० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं णवुंस० । अरदि० ज० बं० बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-णिय० अणंतगुणब्भ० । सोग० णि० । तं तु० । एवं सोग० ।

८१. तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० ओघं । मणुसग०-मणुसाणु० ओघं । णवरि अपज्जत्तं वज्ज । पंचिंदि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ० णिय० अणंतगुणब्भ० । ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०--पसत्थ०४—अगु०३—तस०४—णिमि० णिय० । तं तु० । उज्जो०

और गोत्र कर्मका भङ्ग ओघके समान है।

८०. मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव अनन्तानुबन्धी चारका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। बारह कषाय और पाँच नोकषायका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चारकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव ग्यारह कषाय और पाँच नोकषायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे बन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। हास्य, रति, अरति और शोकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

८१. तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका भङ्ग ओघके समान है। तथा मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अपर्याप्तको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु-त्रिक, त्रसचतुष्क, और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी

१. ता० आ० प्रत्योः अणंताणु०४ णिमि० णि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिया० । तं तु० । एवं एदाओ ऍक्कमेॅक्कस्स । तं तु० । छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-छयुगल०--तित्थय० ओघं । अप्पसत्थवण्ण० ज० बं० मणुस०-पंचिदि०-तिण्णिसरीर-समचदु०--ओरालि०अंगो०---वज्जरि०---पसत्थव०४--मणुसाणु०--अगु०३---पसत्थ०--तस०४--थिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । अप्पसत्थगंध०३-उप० णिय० । तं तु० । एवं[1] एदाओ ऍक्कमेॅक्कस्स । तं तु० । छसु उवरिमासु तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० मणुसगदिभंगो । सेसं णिरयोघं ।

८२. सत्तमाए तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० ओघं । मणुसग० ज० बं० पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४--अगु०४--पसत्थ०--तस०४--अथिर-असुभ-सुभग--सुस्सर--आदें०--अजस०--णिमि० णि० अणंत-गुणब्भ० । मणुसाणु० णि० । तं तु० । एवं मणुसाणु० । पंचिंदियदंडओ णिरयोघं ।

बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभाग का बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिका बन्ध करनेवाला जीव शेषके जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, छह युगल और तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। अप्रशस्त वर्णके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्धत्रिक और उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमें से किसी एकका बन्ध करनेवाला जीव शेषका उसी प्रकार बन्ध करता है, जिस प्रकार अप्रशस्त वर्णकी मुख्यतासे कह आये हैं। ऊपरकी छह पृथिवियोंमें तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका भङ्ग मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए। शेष भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है।

८२. सातवीं पृथिवीमें तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, समुचतुरस्र संस्थान. औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियजाति दण्डकका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है।

१ ता० आ० प्रत्योः तं तु० सिया० अणंतगु० एवं इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

८३. समचदु० ज० बं० तिरिक्ख०-पंचिं०-ओरालि०-तेजा०-क०--ओरालि०-अंगो०---पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्खाणु०---अगु०४--तस०४--णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । छस्संघ०--दोविहा०--थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं पंचसंठा०-छस्संघ०-दोविहा०-मज्झिल्लाणि युगलाणि । थिर० ज० बं० तिरिक्ख०--मणुस०--दोआणु०--उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । पंचिंदियदंडओ णिय० अणंतगुणब्भ० । छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-सुभगादिपंचयुग० सिया० । तं तु० । एवं अथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० । सेसाणं णिरयोघं ।

८४. तिरिक्खेसु छण्णं कम्माणं णिरयोघभंगो । मोहणीयं ओघो । णवरि पच्चक्खाण०कोध० ज० बं० सत्तक०-पंचणोक० णिय० । तं तु० । एवमण्णमण्णस्स । तं तु० । अरदि० ज० बं० अट्ठक०-पुरिस०-भय०-दु० णिय० अणंतगुणब्भ० । सोग० णि० । तं तु० । एवं सोग० ।

---

८३. समचतुरस्रसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है । छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है । किन्तु यह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है । इसीप्रकार पाँच संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और मध्यके तीन युगलोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, दो आनुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है । पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है । छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और सुभग आदि पाँच युगलका कदाचित् बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है ।

८४. तिर्यञ्चोंमें छह कर्मोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है । मोहनीय कर्मका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि प्रत्याख्यानावरण क्रोधके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सात कषाय और पाँच नोकषायका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए । किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है । जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव आठ कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनंतगुणा अधिक होता है । शोकका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८५. चदुग०-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-चदुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग० ओघं। पंचिंदि० ज० बं० णिरय०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय० अणंतगुणब्भ०। वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि० अंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णि०। तं तु०। एवमेदाओ ऍक्कमॅक्कस्स। तं तु०।

८६. ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावरादि०४-अथिरादिपंच-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ०। ओरालि०अंगो० ज० बं० तिरिक्ख०-बेइंदि०-ओरालि०-तेजा०-हुंड०-असंप०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-तस०-बादर-अपज्ज०-पत्ते०-अथिरादिपंच-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ०।

८७. आदाव० ज० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्था-पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-अथिरादिपंच-णिमि० णि० अणंतगु०। एवं उज्जो०। अप्पसत्थ०४-उप० ओघं। एवं पंचिंदियतिरिक्ख०३।

भागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

८५. चार गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार और स्थिर आदि छह युगलका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इनका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु यह उसी प्रकार जानना चाहिए, जिस प्रकार पञ्चेन्द्रिय जातिकी मुख्यतासे कहा है।

८६. औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, द्वीन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

८७. आतपके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार उद्योतकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि [तिरिक्ख०-] तिरिक्खाणु० परियत्तमाणियासु कादव्वं ।

८८. पंचिंदि०तिरिक्ख०अपज्ज० पंचण्णं कम्माणं णिरयभंगो । णिद्दाणिद्दाए ज० बं० अट्ठदं० णि० । तं तु० । एवमण्णमण्णस्स । तं तु० ।

८९. मिच्छ० ज० बं० सोलसक०-पंचणोक० णिय० । तं तु० । एवमेदाओ ऍक्कमेंक्कस्स । तं तु० । सेसं णिरयभंगो ।

९०. तिरिक्ख० ज० बं० पंचजादि-छस्संठाण-छस्संघ०--दोविहा०-तस०-थावरादिदसयुग० सिया० । तं तु० । ओरालि०--तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०--उप०-णिमि० अणंतगुणब्भ० । ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । तिरिक्खाणु० णिय० । तं तु० । एवं तिरिक्खाणु० ।

मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात् सामान्य तिर्यञ्चके समान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-त्रिकके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी परिगणना परिवर्तमान प्रकृतियोंमें करनी चाहिए।

८८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। निद्रानिद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव आठ दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सबका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए जो उसी प्रकार होता है, जैसा निद्रानिद्राकी मुख्यतासे कहा है।

८९. मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सोलह कषाय और पाँच नोकषायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे बन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है।

९०. तिर्यञ्चगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रस और स्थावर आदि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बंध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. मणुस० ज० बं० पंचिंदि०-मणुसाणु०-तस-बादर-पत्ते० णिय० । तं तु० । सेसं तिरिक्खगदिभंगो । एवं मणुसाणु० ।

६२. एइंदि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०--तिरिक्खाणु०--थावर-दूभ०-अणादें० णियमा० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । बादर-सुहुम-पज्जत्त०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिरादितिण्णियुग० सिया० । तं तु० । एवं थावर० ।

६३. बेइंदि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-तिरिक्खाणु०-तस-बादर-पत्ते०-दूभ०-अणादें० णिय० । तं तु० । ओरालि०--तेजा०--क०--ओरालि०अंगो०--पसत्था-पसत्थ०४--अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । पर०-उस्सा०-उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । अप्पस०-पज्जत्तापज्ज०-थिराथिर०-सुभासुभ०-दूभग०-दुस्सर०-जस०-अजस० सिया० । तं तु० । एवं तीइंदि०-चदुरिंदि० ।

---

६१. मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर और प्रत्येकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

६२. एकेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग और अनादेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

६३. द्वीन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, प्रत्येक, दुर्भग और अनादेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। परघात, उच्छ्वास और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त विहायोगति, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६४. पंचिंदि० ज० बं० तिरिक्ख०--मणुसग०--छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-पज्जत्तापज्ज०-थिरादिछ० सिया० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० अंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण०४—अगु०--उप०--णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० ।

६५. ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०४—थावरादि०४--अथिरादिपंच० णियं० अणंतगुणब्भ० । तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि० णि० । तं तु० । एवमेदाओ एक्कमेक्कस्स । तं तु० ।

६६. समचदु० ज० बं० तिरिक्ख०--मणुस०--छस्संघ०--दोआणु०--दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । पंचिंदि०-तस०४ णियमा० । तं तु० । ओरालि०-

करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

६४. पञ्चेन्द्रियजातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, पर्याप्त, अपर्याप्त और स्थिर आदि छहका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर. तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

६५. औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्ड संस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन तैजसशरीर आदि सब प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे बन्ध करता है जो जघन्य अनुभाग का भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

६६. समचतुरस्रसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजस-

१. ता० आ० प्रत्योः–पंच० णिमि० णिय० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ०। एवं समचदुरभंगो-चदुसंठा०-पंचसंघ०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०।

६७. हुंड० ज० बं० तिरिक्ख०-मणुस०-पंचजादि-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तस०-थावरादिदसयुगल० सिया०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ०। एवं हुंड०भंगो अथिरादिपंच०। ओरालि०अंगो० तिरिक्खोघं।

६८. असंपत्त० ज० बं० दोगदि-चदुजादि-छस्संठाण-दोआणु०-दोविहा०-पज्जत्तापज्जत्त०-थिरादिछयुग० सिया०। तं तु०। सेसं हुंड०भंगो। अप्पसत्थ०४-उप० णिरयभंगो०।

६९. पर० ज० बं० एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर०-सुहुम०-पज्जत्त०-साधार-दूभग०-अणादें०-अजस०-

---

शरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु-चतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार समचतुरस्रसंस्थानके समान चार संस्थान, पाँच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

६७. हुण्डकसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पाँच जाति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति और त्रस-स्थावर आदि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छहस्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार हुण्डसंस्थानके समान अस्थिर आदि पाँचकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। औदारिक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है।

६८. असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, चार जाति, छह संस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, पर्याप्त, अपर्याप्त और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग हुण्ड संस्थानके समान है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क और उपघातका भङ्ग नारकियोंके समान है।

६९. परघातके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, साधारण, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । उस्सा० णि० । तं तु० । थिराथिर-सुभासुभ० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं उस्सासं० ।

१००. आदाव० ज० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०--ओरालि०--तेजा०-क०-हुंडसं०-पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--अगु०४--थावर०--बादर०--पज्जत्त०--पत्ते०--दूभग-अणादें०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० अणंतगु० । एवं उज्जो० ।

१०१. पसत्थवि० ज० बं० दोगदि०--चदुजादि०-छस्संठा० छस्संघ०-दोआणु[1]०-थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । ओरालि०--तेजा०--क०--ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४--अगु०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । तस०४ सिया० । तं तु० । एवं दुस्सर० । एवं चेव तस० । णवरि पज्जत्तापज्जत्त० सिया० । तं तु० ।

निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। उच्छ्वासका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार उच्छ्वासकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

१००. आतपके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, दुर्भग, अनादेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१०१. प्रशस्त विहायोगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। त्रसचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार दुःस्वर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार त्रस प्रकृतिकी मुख्यतासे भी सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यह पर्याप्त और अपर्याप्तका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है।

१. आ० प्रतौ छस्संठा० दोआणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०२. बादर० ज० बं० दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तस-थावर-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं पज्जत्त-पत्ते० । णवरि पडिपक्खा ण बंधदि[1] ।

१०३. सुहुम० ज० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-दूभग-अणादें०-अजस० णिय० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अजह० अणंतगुणब्भ० । पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ० सिया० । तं तु० । एवं साधार० ।

१०४. अपज्ज० ज० बं० दोगदि-पंचजादि-असंप०-दोआणु०-तस०-थावर-बादर-सुहुम-पत्तेय-साधार० सिया० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-

१०२. बादर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार पर्याप्त और प्रत्येककी मुख्यतासे भी सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करता।

१०३. सूक्ष्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार साधारणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१०४. अपर्याप्तके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, पाँच जाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, प्रत्येक और साधारणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क,

१. आ० प्रतौ णं बंधदि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगु०--उप०--णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। हुंड०--अथिरादिपंच णिय०। तं तु०। ओरालि०अंगो० सिया० अणंतगुणब्भ०।

१०५. थिर० ज० बं० दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तस-थावर-बादर-सुहुम-पत्तेय-साधारण-सुभगादिपंचयुग० सिया०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४--अगु०४--णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ०। पज्जत्त० णि०। तं तु०। एवं सुभ-जस०। णवरि जस० सुहुम--साधारणं वज्ज। एवं सव्वअपज्जत्तयाणं सव्वविगलिंदि०--पुढ०-आउ०--वणप्फदिपत्तेय--वणप्फदि--णियोदाणं च। तेउ-वाऊणं पि तं चेव। णवरि तिरिक्खं०-तिरिक्खाणु०--णीचा० धुवं कादव्वं। मणुस०--मणुसाणु०--उच्चा० वज्ज। णवरि अप्पसत्थ०४--उप० णिय०। तं तु०। सव्वएइंदियाणं पि तं चेव। णवरि तिरिक्खगदि०३ तेउ०भंगो। अप्पसत्थवण्ण० ज० बं० तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०

अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्ड संस्थान और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

१०५. स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, प्रत्येक, साधारण और शुभ आदि पाँच युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पर्याप्तका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शुभ और यशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका सूक्ष्म और साधारणको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात् तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान सब अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए। तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवोंके भी यही सन्निकर्ष है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रको ध्रुव करना चाहिए। तथा मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। इतनी और विशेषता है कि अप्रशस्त वर्ण चतुष्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सब एकेन्द्रियोंके भी यही सन्निकर्ष है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग अग्निकायिक जीवोंके समान है। तथा अप्रशस्त वर्णके जघन्य अनुभागका बन्ध

१. ता० प्रतौ तिरिक्ख०२ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिया० । तं तु० । मणुस०-मणुसाणु०-उज्जोव० सिया० अणंतगुणब्भ० । पंचिंदियादि-धुवियाओ णिय० अणंतगुणब्भ० । अप्पसत्थगंध०३-उप० णिय० । तं तु० ।

१०६. मणुस०३ खवियाणं आहारदुगं तित्थय० ओघं । सेसं पंचिंदियतिरिक्खभंगो ।

१०७. देवेसु सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो । तिरिक्ख० ज० बं० एइंदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थावर०-थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणब्भ० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । तिरिक्खाणु० णि० । तं तु० । एवं तिरिक्खाणु० । मणुसगदि० तिरिक्खभंगो । णवरि एइंदियं आदाउज्जोवं थावरं च वज्ज । एवं मणुसाणु० ।

१०८. एइंदि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर-दूभग-अणादें० णिय० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त०-

---

करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि ध्रुव प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्ध आदि तीन और उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

१०६. मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियाँ, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है।

१०७. देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। तिर्यञ्चगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगतिका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय जाति, आतप, उद्योत और स्थावरको छोड़कर यह सन्निकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१०८. एकेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग और अनादेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । थिराथिर-सुभा-सुभ-जस०-अजस० सिया० । तं तु० । एवं थावर० ।

१०९. पंचिंदि० ज० बं० तिरिक्ख०--हुंड०--असंप०--अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--उप०--अप्पसत्थ०--अथिरादिछ० णिय० अणंतगुणब्भ० । ओरालि०--तेजा०-क०--ओरालि०अंगो०--पसत्थ०४--अगु०३--तस०४--णिमि० णि० । तं तु० । उज्जोव० सिया० । तं तु० । एवं ओरालि०अंगो०-तस० ।

११०. ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४--तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच णि० अणंतगुणब्भ० । एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थ०-थावर०-दुस्सर० सिया० अणंतगुणब्भ० । ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०-पसत्थ०४--अगु०-पर०-उस्सा०-बादर-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० णि० । तं तु० । एवं

वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, अप्रशस्तवर्ण चतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१०९. पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रस चतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रस प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

११०. औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायागति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजा०-क०-पसत्थ०४–अगु०३–उज्जो०-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमिणं त्ति। आदावं एवं चेव। णवरि एइंदि०-थावर० णिय० अणंतगुणब्भ०। चदुसंठा०-चदुसंघ०-दोविहा०-सुभग-दोसर०-अणादें० पढमपुढविभंगो।

१११. हुंड० ज० बं० दोगदि-एइंदि०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर-थिरादिछयुग० सिया०। तं तु०। पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणब्भ०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगु०। एवं हुंडभंगो दूभग-अणादें०। अप्पसत्थ०४–उप० णिरयभंगो।

११२. थिर० ज० बं० दोगदि-एइंदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर०-सुभादिपंचयुग० सिया०। तं तु०। पंचिं०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस०-तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-बादर०-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। एवं अथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०। तित्थ० णिरयभंगो।

का भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। आतपकी मुख्यतासे भी सन्निकर्ष इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियजाति और स्थावरका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। चार संस्थान, चार संहनन, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर और अनादेयका भङ्ग पहली पृथिवीके समान है।

१११. हुण्डसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, एकेन्द्रिय जाति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार हुण्ड संस्थानके समान दुर्भग, अनादेय की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातकी मुख्यतासे सन्निकर्ष नारकियोंके समान है।

११२. स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, एकेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर और शुभादि पाँच युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत, त्रस और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तीर्थङ्कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११३. भवण०--वाणवेंतर--जोदिसि०-सोधम्मीसाणं सत्तण्णं कम्माणं देवोघं। तिरिक्खग० ज० बं० दोजादि--छस्संठाण--छस्संघ०--दोविहा०--तस-थावर--थिरादिछयुग० सिया०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४--बादर--पज्जत्त-पत्ते०--णिमि० णि० अणंतगु०। ओरालि०अंगो०---आदाउज्जो० सिया० अणंतगु०। तिरिक्खाणु० णिय०। तं तु०। एवं तिरिक्खाणु०।

११४. मणुसग० ज० बं० तिरिक्खगदिभंगो। णवरि पंचि०--मणुसाणु०-तस० णि०। तं तु०। एवं मणुसाणु०। एइंदि०-थावर० देवोघं।

११५. पंचिंदि० ज० बं० दोगदि--छस्संठा०--छस्संघ०--दोआणु०--दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया०। तं तु०। ओरालि०--तेजा०--क०--ओरालि०अंगो०--पसत्था-पसत्थ०४--अगु०४--बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। उज्जो० सिया०

प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है।

११३. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म ऐशान कल्पके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। तिर्यञ्चगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

११४. मनुष्यगति के जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय जाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और त्रसका नियमसे बन्ध होता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यता सन्निकर्ष जानना चाहिए। एकेन्द्रिय जाति और स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सामान्य देवों के समान है।

११५. पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक

१. ता० आ० प्रत्योः थावरादि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंतगुणब्भ० । तस० णि० । तं तु० । एवं पंचिंदिय०भंगो चदुसंठा०--चदुसंघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदें० ।

११६. हुंड० ज० बं० दोगदि-दोजादि-छस्संघ०-दोआणु०दोविहा०-तस-थावर-थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । सेसं तिरिक्खगदिभंगो । एवं हुंड०भंगो दूभग-अणादें० । एवं चेव थिराथिर--सुभासुभ--जस०-अजस० । णवरि तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० ।

११७. ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-उप०-थावर--अथिरादिपंच० णि० अणंतगुणब्भ० । तेजा०--क०-पसत्थ०४--अगु०३--बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० । तं तु० । आदाउज्जो० सिया० । तं तु० । एवं एदाओ एक्कमेक्कस्स । तं तु० ।

११८. ओरालि०अंगो० ज० बं० तिरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंडसंठा०--असंप०--पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--अगु०४--अप्पसत्थ०---तस०४--

---

होता है । त्रसका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जातिके समान चार संस्थान, चार संहनन, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

११६. हुण्ड संस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, दो जाति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। इस प्रकार हुण्ड संस्थानके समान दुर्भग और अनादेय की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है ।

११७. औदारिक शरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय-जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभाग का भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभाग का बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियों का परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए,किन्तु वह उसी प्रकारका होता है ।

११८. औदारिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, अप्रशस्त विहायो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० ।

११९. सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति पढमपुढविभंगो । आणद याव णवगेवज्जा त्ति सत्तण्णं कम्माणं देवोघं । मणुस० ज० बं० पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०--पसत्थ०४—मणुसाणु०--अगु०३—तस४—णिमि० णि० । तं तु० । हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४—उप०अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ० णि० अणंतगुणब्भ० । एवं मणुसगदिभंगो पंचिंदियादि तं तु० पदिदाणं सव्वाणं ।

१२०. समचदु० ज० बं० मणुस०--पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि० अणंतगुणब्भ० । छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । एवं पंचसंठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग० । णवरि तिण्णियुग०-तित्थय० सिया० अणंतगुणब्भ० । अप्पसत्थ०४--उप०-तित्थयरं च देवोघं ।

१२१. अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति सत्तण्णं कम्माणं आणदभंगो । णवरि थीणगिद्धि३—मिच्छ०-अणंताणु०४--इत्थि०-णवुंस०-णीचा० वज्ज । मणुस० ज० बं०

गति, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

११९. सानत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें प्रथम पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार मनुष्यगतिके समान पञ्चेन्द्रिय जाति आदि 'तं तु०' पतित सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए।

१२०. समचतुरस्र संस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, त्रस चतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार पाँच संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि तीन युगल और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्तवर्ण चतुष्क, उपघात और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सामान्य देवोंके इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे जैसा कह आये हैं, वैसा है।

१२१. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग आनत कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आणदभंगो। णवरि अप्पसत्थ०४–उप०--अथिर०--असुभ०--अजस० णिय० अणंतगुणब्भ०। समचदु०-वज्जरि०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर०-आदें० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया०। तं तु०। एवं तं तु० पदिदाओ एँकमेँकस्स। तं तु०। अप्पसत्थ०४–उप० देवोघं।

१२२. थिर० ज० बं० सुभासुभ-जस०-अजस० सिया०। तं तु०। तित्थय० सिया० अणंतगुणब्भ०। एवं तिण्णियुग०।

१२३. पंचिंदि०--तस०२–पंचमण०--पंचवचि०–कायजोगि०–ओरालियका०-कोधादि०४–चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०--मिच्छादि०-मदि०-सुद०-विभंग०-असंजद०-सण्णि-असण्णि-आहारग त्ति ओघभंगो। णवरि किंचि विसेसो णादव्वो। ओरालियका० मणुसोघं। णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० तिरिक्खोघं[1]। कोधे कोधसंज० ज० बं० तिण्णं संज० णि० जहण्णा। माणे माणसंज० ज० बं०[2] दोसंज० णि० जहण्णा।

और नीचगोत्रको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले देवका भङ्ग आनत कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। समचतुरस्र संस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार 'तं तु०' पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका यथासम्भव बन्ध करता है। जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क और उपघात प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जैसा इनकी मुख्यतासे सामान्य देवोंके कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए।

१२२. स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तीन युगलोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१२३. पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, संज्ञी, असंज्ञी और आहारक जीवोंके ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि कुछ विशेषता जाननी चाहिए। औदारिककाययोगी जीवोंमें सामान्य मनुष्योंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि यहाँ तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे कहा है, उस प्रकार जानना चाहिए। क्रोधकषायमें क्रोध संज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलनोंका

१. ता० प्रतौ तिरिक्ख० तिरिक्खोधं इति पाठः। २. ता० प्रतौ माणसंज० बं० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मायाए मायसंज० ज० बं० लोभसंज० णि० जहण्णा। सेसाणं मोहविसेसो णादव्वो।

१२४. ओरालियमिस्से सत्तण्णं कम्माणं देवोघं। तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु० ओघं। मणुस०-पंचजादि-छस्संठाण-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तस-थावरादि०४-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदें०-अणादे० पंचिंदि०तिरि०अपज्ज०भंगो। देवग० ज० बं० पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-अजस०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ०। वेउव्वि०-वेउव्वि० अंगो०--देवाणु० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया०। तं तु०। एवं चदुपगदीओ०। ओरालिय-तेजइगादीओ ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० पंचिंदि०तिरि०-अपज्जत्तभंगो।

१२५. अप्पसत्थवण्ण० जं० बं० देवगदि-पसत्थपगदीणं णिय० अणंतगुणब्भ०। अप्पसत्थगंध०३-उप० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ०। थिरादि-

---

नियमसे जघन्य अनुभागबन्ध करता है। मानकषायमें मानसंज्वलनका जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला जीव दो संज्वलनोंका नियमसे जघन्य अनुभागबन्ध करता है। मायाकषायमें माया संज्वलनका जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला जीव लोभ संज्वलनका नियमसे जघन्य अनुभागबन्ध करता है। शेष प्रकृतियोंका मोहके समान विशेष जानना चाहिए।

१२४. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि चार युगल, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय और अनादेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जिस प्रकार इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके कह आये हैं, उस प्रकार जानना चाहिए। देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर आदि चार प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। औदारिकशरीर और तैजसशरीर आदि तथा औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

१२५. अप्रशस्त वर्णके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्ध आदि तीन और उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णियुग० पंचिंदि०तिरि०अपज्जत्तभंगो । णवरि तिरिक्ख०-देवगदि-वेउव्वि०-ओरालि०-वेउव्वि०अंगो०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० ।

१२६. वेउव्वियकायजोगीसु सत्तण्णं कम्माणं देवभंगो। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० णिरयोघं । मणुस०-मणुसाणु० देवोघभंगो । एइंदि०-थावर० देवोघभंगो । णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० णिय० अणंतगुणब्भ० । पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-तस० णिरयोघं । ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच० णि० अणंतगुणब्भ० । एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थ०-थावर-दुस्सर० सिया० अणंतगुणब्भ० । पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० । तं तु० । तेजा-क०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० । तं तु० । एवं तेजइगादीणं एक्कमेक्कस्स । तं तु० । सेसाणं देवोघं । एवं वेउव्वियमि० ।

१२७. आहार०-आहारमि० सत्तण्णं कम्माणं अणुदिसभंगो । णवरि अट्ठक०

होता है। स्थिर आदि तीन युगलोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तिर्यञ्चगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

१२६. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। औदारिक शरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तैजसशरीर आदि प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए।

१२७. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग अनुदिशाके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्ज। देवगदि० जं० बं० पंचिं०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि०। तं तु०। अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर- असुभ-अजस० णिय० अणंतगुणब्भ०। तित्थ० सिया०। तं तु०। एवं देवगदिआदीओ तप्पाओग्गाओ तित्थयरं च ऍक्कमेॅक्कस्स। तं तु०। अप्पसत्थ०४-उप० ओघं।

१२८. थिर० ज० बं० देवगदिसंजुत्ताणं पसत्थापसत्थाणं पगदीणं णिय० अणंतगुणब्भ०। सुभासुभ-जस०-अजस० सिया०। तं तु०। तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ०। एवं अथिर-सुभ-असुभ-जस०-अजस०।

१२६. कम्मइ० सत्तण्णं कम्माणं देवोघभंगो। तिरिक्ख०-मणुसग०-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावरादि४-थिरादिछयुग० ओघं। देवगदि४ ओरालियमिस्स०भंगो। पंचिंदि० ज० बं० तिरि०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-

समान है। इतनी विशेषता है कि आठ कषायोंको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तत्प्रायोग्य देवगति आदि और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका यथासम्भव बन्ध करता है। वह जघन्य अनुभागबन्ध भी करता है और अजघन्य अनुबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका भङ्ग ओघके समान है।

१२८. स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगति संयुक्त प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१२६. कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार और स्थिर आदि छह युगलका भङ्ग ओघके समान है। देवगति चतुष्कका भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । ओरालियादि० णि० । तं तु० । उज्जो० सिया० । तं तु० । एवं ओरालि०अंगो[1]-तस० ।

१३०. ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०--अथिरादिपंच० णिय० अणंतगुणब्भ० । एइंदि०--अप्पसत्थ०--थावर[2]--दुस्सर० सिया० अणंतगुणब्भ० । पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस०४ सिया० । तं तु० । तेजा०--क०--पसत्थ०४--अगु०३--णिमि० णि० । तं तु० । एवमेदाओ एँक्कमेँक्कस्स । तं तु० ।

१३१. तित्थ० ज० बं० मणुसगदिपंच० सिया० अणंतगुणब्भ० । देवगदि०४ सिया० । तं तु० । पंचिंदियादि० णि० अणंतगुणब्भ० ।

तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक शरीर आदिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रस प्रकृतिकी मुख्यता से सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१३०. औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। एकेन्द्रियजाति, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रस चतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इन्हींमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

१३१. तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति पञ्चकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। देवगतिचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

---

१. आ० प्रतौ ओरालि०भंगो० इति पाठः । २. ता० प्रतौ अप्पसत्थ०अप्पसत्थ० (१) थावर इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३२. इत्थिवे० सत्तण्णं कम्माणं ओघं। णवरि कोधसंज० ज० बं० तिण्णि-संज०-पुरिस० णिय० बं० णियमा जहण्णा[1]। चदुगदि-चदुजादि-छस्संठाण--छस्संघं०-चदुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग० पंचिंदि०तिरि०भंगो।

१३३. पंचि० ज० बं० णिरयगदि-हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्प-सत्थवि०-अथिरादिछ० णि० अणंतगुणब्भ०। वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थ०४-अगु०३--तस०४-णिमि० णि०। तं तु०। एवं [वेउव्वि०-] वेउव्वि०-अंगो०-तस०[2]। ओरालि०-आदाउज्जो० सोधम्मभंगो।

१३४. ओरालि०अंगो० ज० बं० तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-असंप०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु० -अगु०-उप० -तस० -बादर० -पत्ते० - अथिरादिपंच०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। बेइंदि०--पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-उज्जो०--अप्पसत्थ०-पज्जत्तापज्ज०-दुस्सर० सिया० अणंतगुणब्भ०।

१३५. तेजा०-कम्मइ० ओघं। णवरि [ओरालियअंगो०-] असंपत्तं वज्ज।

१३२. स्त्रीवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रोध संज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य होता है। चार गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार और स्थिर आदि छह युगलका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है।

१३३. पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग और त्रसकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। औदारिकशरीर, आतप और उद्योतका भंग सौधर्म-कल्पके समान है।

१३४. औदारिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, प्रशस्त-वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। द्वीन्द्रिय जाति, पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, पर्याप्त, अपर्याप्त और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

१३५. तैजसशरीर और कार्मणशरीरका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि औदारिकआङ्गोपांग और असम्प्राप्तासृपाटिका संहननको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए।

---

१. ता० प्रतौ कोधसंज० पुरिस० णिय० बंध० णियमो० (मा०) जहण्णा इति पाठः। २ ता० आ० प्रत्योः -जादि चदुसंठाणं ओरालि० अंगो० छस्संव० इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः तस० ४ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदि०-ओरालि०-वेउव्वि-०वेउव्वि०अंगो०-आदाउज्जो०-[तस०] सिया०। तं तु०। एइंदि०-थावर० सिया० अणंतगुणब्भ०। कम्मइगादि० णिमि० णि०। तं तु०। एवं तेजइगादि० अण्णमण्णस्स। तं तु०। आहारदुग-अप्पसत्थ०४-उप०-तित्थय० ओघभंगो०।

१३६. पुरिसेसु सत्तण्णं कम्माणं इत्थिभंगो। सेसं ओघं। णवरि तिरिक्खगदिदु० परियत्तमाणिगा कादव्वा।

१३७. णवुंसगे सत्तण्णं कम्माणं इत्थिवेदभंगो। चदुगदि-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-चदुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग० ओघं। पंचिंदि० ज० बं० दोगदि-असंप०-दोआणु० सिया० अणंतगुणब्भ०। दोसरीर-दोअंगो०-उज्जो० सिया०। तं तु०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४ [-णिमि०] णि०। तं तु०।

पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। कार्मणशरीर आदि और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तैजसशरीर आदिका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे बन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

१३६. पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भंग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। शेष भंग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिद्विककी परिवर्तमान प्रकृतियोंमें परिगणना करनी चाहिए।

१३७. नपुंसकवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। चार गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार और स्थिर आदि छह युगलका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रस चतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

१. ता० आ० प्रत्योः सिया० तं तु० अणंतगुणब्भ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[हुंड०-] अप्पसत्थवण्ण०४–उप० [-अप्पसत्थ०-] अथिरादिछ० णि० अणंतगुणब्भ० । एवं तेजइगादि० । एवं ओरालिगादीणं पि सिया० । तं तु० । ओरालि० ओरालि०अंगो० सिया० । सेसं मणुसभंगो । [णवरि आदवं तिरिक्खोघं] ।

१३८. अवगदवे० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंतरा० णि० बं० णि० जहण्णा । चदुसंज० ओघं ।

१३९. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं कम्माणं ओघं । मणुसग० ज० बं० पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०--ओरालि०अंगो०-वज्जरि०--पसत्थ०४–मणुसाणु०-अगु०३–पसत्थ०-तस०४–सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० । तं तु० । अप्पसत्थ०४–उप०-अथिर-असुभ-अजस० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं मणुसगदिचदुक० ।

१४०. देवगदि ज० बं० मणुसभंगो । णवरि तित्थ० सिया० । तं तु० । एवं देवगदिचदुक्कस्स वि ।

हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है । इसी प्रकार नियमसे तं तु॰पतित तैजसशरीर आदिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । तथा इसी प्रकार सिया तं तु॰पतित औदारिकशरीर आदिकी मुख्यतासे भी सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इन्हींमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका कदाचित् बन्ध करता है। जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव औदारिकआङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है। किन्तु आतपका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है ।

१३८. अपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य होता है। तात्पर्य यह है कि इन चौदह प्रकृतियोंमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे जघन्य अनुभागबन्ध करता है । चार संज्वलनका भङ्ग ओघके समान है ।

१३९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वी आदि चारकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

१४०. देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग मनुष्यके समान है । इतनी विशेषता है कि तीर्थंङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है,तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार देवगत्यानु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४१. पंचिंदि० ज० बं० दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थ० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० । तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस० णि० अणंतगुणब्भ० । एवं पंचिंदिय०भंगो तेजइगादीणं पसत्थाणं[1] ।

१४२. तित्थ० ज० बं० देवगदि० णि० । तं तु० । आहारदुगं[2]-अप्पसत्थ०४-उप० ओघं ।

१४३. थिर० ज० बं० दोगदि-दोसरीर० सिया० अणंतगुणब्भ० । पंचिंदियादि० णि० अणंतगुणब्भ० । दोयुग० सिया० । तं तु० । तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं तिण्णियुग० । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइगस० । णवरि खइगे मणुसगदिपंचग० जह० तित्थ० सिया० । तं तु० ।

पूर्वी चतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१४१. पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियजातिके समान तैजसशरीर आदि प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१४२. तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगतिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका भंग ओघके समान है।

१४३. स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति और दो शरीरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति आदिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। दो युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तीन युगलोंका भङ्ग है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंके समान अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मनुष्यगति पञ्चकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और

---

१. ता० प्रतौ तेजइगादीणं पसं (स) त्थाणं। तित्थ०, आ० प्रतौ तेजइगादीणं तित्थ० इति पाठः।
२. ता० प्रतौ णि०। तित्थ आहारदुगुं० (गं), आ० प्रतौ णि० तं तु० आहारदुगं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४४. मणपज्जवे सत्तण्णं कम्माणं ओधिभंगो० । णवरि अट्ठकसायं वज्ज। णाम० ओधिभंगो। णवरि मणुसगदिपंचगं वज्ज। तित्थ० ओघं । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद० । सुहुमसंप० अवगदवेदभंगो ।

१४५. किण्णाए सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो । सेसं णवुंसगभंगो । णील-काऊणं सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो । णिरयगदि० ज० ओघं० । पंचिंदि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड० णि० अणंतगु० । ओरालि० णि० । तं तु० [सेसं] णिरयदंडओ भाणिदव्वओ[1] । वेउव्वि० जं० बं० णिरयगदिअट्ठावीसं अणंतगुणब्भ० । वेउव्वि०-अंगो० णि० । तं तु० । एवं वेउव्विय०अंगो० । सेसं किण्णभंगो० । काऊ० तित्थ० णिरयभंगो ।

१४६. तेऊए सत्तण्णं कम्माणं देवगदिभंगो । णवरि कोधसंज० ज० बं० तिण्णि-संज०-पंचणोक० णि० । तं तु० । दोगदि-दोजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-

अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है ।

१४४. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि आठ कषायोंको छोड़कर यह सन्निकर्ष कहना चाहिए। नामकर्मका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिपञ्चकको छोड़कर यह सन्निकर्ष कहना चाहिए। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है ।

१४५. कृष्ण लेश्यामें सात कर्मोंका भंग नारकियोंके समान है। शेष भङ्ग नपुंसकोंके समान है। नील और कापोत लेश्यामें सात कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। नरकगतिके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति और हुण्डसंस्थानका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिकशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेष प्रकृतियोंका भंग नरकदण्डकके समान कहना चाहिए। वैक्रियिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंका बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गका भी भङ्ग जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। कापोतलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है ।

१४६. पीत लेश्यामें सात कर्मोंका भंग देवगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रोध संज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलन और पाँच नोकषायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। दो गति, दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति,

१. आ० प्रतौ भाणिदव्वाओ इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[दोविहा०-] तस-थावर-तिण्णियुग० सोधम्मभंगो। देवगदि० ज० बं० पंचिंदियादि णि० अणंतगुणब्भ०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० णि०। तं तु०। एवं वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-[आदाउज्जो-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-] णिमि०-[तित्थ०] सोधम्मभंगो[1]। थिरादितिण्णियुगलाणं [ज० बं०] दोगदि० सिया०। तं तु०। देवगदि०४ सिया० अणंतगुणब्भ०। सेसं सोधम्मभंगो। [आहारदु०-अप्पसत्थवण्ण४-उप० मणुसभंगो।] एवं पम्माए वि। णवरि पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-तस० सव्वाणं संकिलेस्सपगदीणं सहस्सार-भंगो। तित्थय० देवभंगो।

१४७. सुक्काए सत्तण्णं क० ओघं। देवगदि०४-आहारदुगं पम्माए भंगो। सेसाणमाणदभंगो। अप्पसत्थ०४-उप० ओघं। अब्भव० मदि०भंगो। णवरि अप्पसत्थ-वण्ण० ज० बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० सिया०। तं तु०। दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-

त्रस, स्थावर और तीन युगलका भंग सौधर्मकल्पके समान है। देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति आदिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका भङ्ग जानना चाहिए। औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, बादर, पर्याप्त प्रत्येक, निर्माण और तीर्थङ्करका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। देवगति चतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसका शेष भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका भङ्ग मनुष्योंके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, त्रस और सर्व संक्लिष्ट परिणामोंसे बँधनेवाली सब प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है। तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग देवोंके समान है।

१४७. शुक्ललेश्यामें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। देवगति चार और आहारक द्विकका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग आनतकल्पके समान है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क और उपघातका भङ्ग ओघके समान है। अभव्योंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अप्रशस्त वर्णके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। दो गति, दो शरीर, दो

१. ता० आ० प्रत्योः णिमि० णि० तं तु० सोधम्मभंगो इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः ओघं। णामगदि देवगदि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्जरि०-दोआणु०- उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थव०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । अप्पसत्थगंध३-उप० णि० । तं तु० ।

१४८. वेदग०-उवसम० ओधिदंसणिभंगो। अप्पसत्थ०४-उप० ओघं। सासा० मदि०भंगो । मिच्छत्तं[1] वज्ज । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० ओघं । दोगदि-पंचसंठा०-पंच-संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थिरादिछयुग० ओघं। णवरि पज्जत्तसंजुत्तं कादव्वं। पंचिंदि० ज० बं० तिरिक्खगदिआदि[2]० णि० अणंतगुणब्भ० । ओरालिगादिसव्वसंकिलिट्ठाणं णि० । तं तु० । उज्जो० सिया० । तं तु० । एवं मणुस०-मणुसाणु० । तं तु० । वेउव्विय० ज० बं० पंचिंदियादि० णि० अणंतगुणब्भ० । तिण्णियुगल० सिया० । तं तु० ।

आंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्ध आदि तीन और उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

१४८. वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवधिदर्शनी जीवोंके समान भङ्ग है। मात्र अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका भङ्ग ओघके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका भंग ओघके समान है। दो गति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका भंग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि पर्याप्त प्रकृतिको संयुक्त करके कहना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति आदिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आदि सर्व संक्लिष्ट परिणामोंसे बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका भंग है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। वैक्रियिक शरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति आदिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

---

१. ता० आ० प्रत्योः ओघं अब्भव० मदिभंगो । मिच्छत्तं इति पाठः । २. ता० प्रतौ आदि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किंचि० विसेसो जाणिदव्वो। एवं वेउव्वि०अंगो०। [सम्मामि० वेदग०भंगो। विसेसो जाणिदव्वो।] मिच्छादिट्ठी० मदि०भंगो। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं जहण्णसण्णियासो समत्तो।

एवं सत्थाणसण्णियासो समत्तो।

१४६. परत्थाणसण्णियासे दुवि०—जह० उक्क०। उक्कस्सए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० आभि० उक्क० अणुभागं[1] बंधंतो चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४—उप०-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० णिय० बंध०। तं तु० छट्ठाणपदिदं बंधदि। अणंतभागहीणं वा०५। णिरय०-तिरिक्ख०-एइंदि०-असंप०-दोआणु०-अप्पसत्थ०-थावर-दुस्सर० सिया०। तं तु०। पंचिंदि०-दोसरीर-दोअंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणहीणं०। तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-पर०-उस्सा०—बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं०। एवं आभिणि०भंगो चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४—उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंतरा०।

जो कुछ विशेषता है वह जान लेनी चाहिए। इसी प्रकार वैक्रियिक आंगोपांग की मुख्यतासे सन्निकर्ष है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान भङ्ग है। किन्तु कुछ विशेषता जाननी चाहिए। मिथ्यादृष्टि जीवोंका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। अनाहारक जीवोंका भंग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है। इस प्रकार जघन्य सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

इस प्रकार स्वस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

१४६. परस्थान सन्निकर्षकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानि रूप बाँधता है। अर्थात् या अनन्तभागहीन बाँधता है, या असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन या अनन्तगुणहीन बाँधता है। नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानावरणके समान चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्ड

---

१. ता० प्रतौ अणंतभागं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५०. सादावेदणीयं उक्क० अणुभागं बंधंतो पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं बं० । जसगि०-उच्चा० णि० उक्कस्स० । एवं जस०-उच्चा० ।

१५१. इत्थिवे० उक्क० बं० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-अरदि-सोग-भय-दु०- तिरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४ – तिरिक्खाणु० - अगु०४–अप्पसत्थ० - तस०४–अथिरादिछ० - णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० अणंतगुणही० । तिण्णिसंठा०-तिण्णिसंघ०-उज्जो० सिया० अणंतगुणही० । एवं पुरिस० । णवरि दोगदि--पंचसंठा०--पंचसंघ०--दोआणु०-उज्जो० सिया० अणंत०हीणं० ।

१५२. हस्स० उक्क० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-अथिरादिपंच०-णिमि० णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगु०हीणं० । इत्थि०-णवुंस०-दोगदि-पंचजादि-पंचसंठा०-ओरालि० अंगो०--पंचसंघ--दोआणु०-पर०--उस्सा०--आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०--तस--थावर-बादर-सुहुम--पज्जत्तापज्ज०-पत्ते०--साधार०-दुस्सर० सिया० अणंतगु०ही० । रदि० णि० ।

संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका भङ्ग जानना चाहिए ।

१५०. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१५१. स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आंगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। तीन संस्थान, तीन संहनन और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि दो गति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है।

१५२. हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, पाँच जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आंगोपांग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। रतिका नियमसे बन्ध करता है जो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं तु० । एवं रदीए० ।

१५३. णिरयायु० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरयगदिअट्ठावीस०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंत०हीणं० ।

१५४. तिरिक्खायु० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०--सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--अगु०४-पसत्थवि०-तस४-सुभग--सुस्सर--आदें०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंत०ही० । सादासाद०-इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० अणंतगुणही० । एवं मणुसायु[1]० । णवरि उच्चा० णि० अणंतगु० ।

१५५. देवायु० उ० बं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु०-देवगदिसत्तट्ठावीसं--उच्चा०--पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं० । आहारदु०-तित्थय० सिया० अणंतगुणहीणं० ।

१५६. णिरयगदि उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-

वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१५३. नरकायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है।

१५४. तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार मनुष्यायुकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है।

१५५. देवायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति आदि सत्ताईस या अट्ठाईस प्रकृतियाँ, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। आहारकद्विक और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है।

१५६. नरकगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-

---

१. ता० आ० प्रत्योः मणुसाणु० इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । णामपसत्थाणं णिय० अणंतगुणहीणं । णामअप्पसत्थाणं णाणावरणभंगो । एवं णिरयाणु० । एवं तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० । णाम० सत्थाणभंगो ।

१५७. मणुस०-मणुसाणु० उ० बं० पंचणा०--छदंसणा०-सादावे०--बारसक०-पंचणोक०--उच्चा०--पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं० । णाम० सत्थाणभंगो० । एवं मणुसगदिपंचगस्स ।

१५८. देवगदि० उ० बं० पंचणा०-चदुदंसणा०--सादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं देवगदिसंजुत्ताणं पसत्थाणं णामाणं ।

१५९. बेइं०-तेइंदि०-चदुरिं० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत०[1] णिय० अणंत०ही० । णाम० सत्थाणभंगो । णग्गोद० उ० बं० पंचणा०--णवदंसणा०- असादा०--मिच्छ०--सोलसक०--चदुणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंत०ही० । इत्थि०-णवुंस० सिया० अणंत०ही० । णाम०

वरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। नामकर्मकी प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मकी अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु यहाँ नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

१५७. मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार मनुष्यगतिपञ्चककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१५८. देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार देवगतिसंयुक्त प्रशस्त नामकर्मकी प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१५९. द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। न्यग्रोधसंस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, चार नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट

१. आ० प्रतौ० णि० पंचंत० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्थाणभंगो । एवं सादि० । एवं खुज्ज०-वामण० । णवरि णवुंस० णियमा अणंत०ही० । चदुसंघ० चदुसंठाणभंगो । असंप० णाणावरणभंगो हेट्ठा उवरि । णाम० सत्थाणभंगो । एवं एइंदि०-थावर० ।

१६०. आदाव० उ० बं०[1] पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणही० । सादासाद०-चदुणोक० सिया० अणंत०-ही० । णाम० सत्थाणभंगो ।

१६१. उज्जो० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-सादावे०-मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णिय० अणंत०ही० । णाम० सत्थाणभंगो ।

१६२. अप्पसत्थवि०-दुस्सर० उ० बं० हेट्ठा उवरि णिरयगदिभंगो । णाम० सत्थाणभंगो ।

१६३. सुहुम०-अपज्जत्त-साधार० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-

अनन्तगुणा हीन होता है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार स्वाति-संस्थानकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार कुब्जक और वामन संस्थानकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह नपुंसकवेदका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। चार संहननका भंग चार संस्थानके समान है। असम्प्राप्तासृपाटिका संहननका भंग नामकर्मसे पहलेकी और आगेकी प्रकृतियोंकी अपेक्षा ज्ञानावरणके समान है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार अर्थात् असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके समान एकेन्द्रिय जाति और स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१६०. आतप प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

१६१. उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

१६२. अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और आगेकी प्रकृतियोंका भङ्ग नरकगतिके समान है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

१६३. सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला, जीव पाँच

१. आ० प्रतौ एइंदि० आदाव थावर उ० बं० इति पाठः। २. ता० प्रतौ पंचणा० असादा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छ०--सोलसक०--पंचणोक०--णीचा०--पंचंत० णिय० अणंत०ही० । णाम० सत्थाणभंगो ।

१६४. णिरएसु आभिणिबो० उ० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०--हुंड०-असंप०--अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-उपघा०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थ०४--अगु०३--तस०४--णिमि० णि० अणंत०ही० । उज्जो० सिया० अणंत०ही० । एवं णाणावरणादि० तं तु० पदिदाओ ताओ अण्णमण्णस्स । तं तु० ।

१६५. सादा० उ० बं० पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४--उप०-पंचंत० णि० अणंत०ही० । मणुस०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-समचदु०--ओरालि०-अंगो० - वज्जरि० - पसत्थ०४--मणुसाणु० - अगु०३--पसत्थवि० - तस०४--थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० णि० । तं तु० । तित्थ० सिया० । तं तु० । एवं सादभंगो तं तु० पदिदाणं० ।

ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है ।

१६४. नारकियोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आंगोपांग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । इसी प्रकार तं तु-पतित ज्ञानावरणादि जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए । किन्तु आभिनिबोधिक ज्ञानावरण को मुख्य करके जिस प्रकार सन्निकर्ष कहा है,उसी प्रकार तं तु-पतित शेष सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे कहना चाहिए ।

१६५. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आंगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६६. सेसं ओघं। णवरि तिरिक्खायु० उ० बं० मिच्छ० णि० अणंतगु०ही०। एवं धुवियाणं०। सादासाद० सिया० अणंत०ही०। एवं परियत्तमाणियाओ सव्वाओ सादभंगो। मणुसाउ० उ० बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो[1]०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंत०ही०। सादासाद०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियुग०-तित्थ० सिया[2]० अणंत०-ही०। चदुसंठा०-चदुसंघ०-उज्जो० ओघं०। एवं छसु पुढवीसु। णवरि उज्जो० तिरि-क्खायुभंगो। सत्तमाए पुरिस०-हस्स-रदि-[चदु-] संठा०-पंचसंघ० उ० बं० तिरिक्ख-गदी धुवं कादव्वं। सेसं णिरयोघं।

१६७. तिरिक्खेसु आभिणिबोधि० उ० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरयग०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्प-सत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि०। तं तु०। पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-वेउव्वि०-

---

अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार तं तु० पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं,उनका सातावेदनीयके समान भंग जानना चाहिए।

१६६. शेष प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्वका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार ध्रुव बन्धवाली प्रकृतियों का जानना चाहिए। सातावेदनीय और असातावेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। परिवर्तमान जितनी प्रकृतियाँ हैं,उनका इसी प्रकार सातावेदनीयके समान भंग है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभाग का बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आंगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर आदि तीन युगल और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। चार संस्थान, चार संहनन और उद्योतका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग तिर्यञ्चायुके समान है। सातवीं पृथिवीमें पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और पाँच संहननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगतिका ध्रुव बन्ध करता है अर्थात् नियमसे बन्ध करता है। शेष सब प्ररूपणा सामान्य नारकियोंके समान है।

१६७. तिर्यञ्चोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनु-

---

१. आ० प्रतौ तेजाक० ओरालि० अंगो० इति पाठः। २. ता० प्रतौ तिण्णियुग० सिया० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगो०-पसत्थ०४–अगु०३–तस४–णिमि० णि० अणंत०ही० । एत्थ एदाओ तं तु० पदिदाओ अण्णमण्णस्स आभिणि०भंगो ।

१६८. साद० उ० बं० पंचणा०-छदंसणा०-अट्ठक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४–उप०--पंचंत० णि० अणंतगुणही० । देवगदिसत्तावीस–उच्चा० णि० । तं तु० । एदाओ सादभंगो । चदुणोक०-चदुआयु० ओघं ।

१६९. तिरिक्खग० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०–मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत णि० अणंत०ही० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं चदुजादि–असंप०-तिरिक्खाणु०-थावरादि४० ।

१७०. मणुसग० उ० बं० पंचणा०–णवदंसणा०–मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचत० णि० अणंतगु०ही० । सादासाद०-चदुणोक० सिया० अणंत०-ही० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं मणुसगदिपंच० । चदुसंठा०--चदुसंघ०--आदाव० ओघं[1] । उज्जो० पढमपुढविभंगो । अथवा बादर-तेउ०-वाउ० उक्कस्सयं करेदि । सव्व-

---

भागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, तीन शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। यहाँ ये तं तु०पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनका परस्पर आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके समान भङ्ग है।

१६८. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। देवगति आदि सत्ताईस प्रकृतियाँ और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। यहाँ देवगति आदि प्रकृतियोंका भंग सातावेदनीयके समान है। चार नोकषाय और चार आयुका भंग ओघके समान है।

१६९. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार चार जाति, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१७०. मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार मनुष्यगति पञ्चककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। चार संस्थान, चार संहनन और आतपका भंग ओघके समान है। उद्योतका भंग पहली पृथिवीके समान है। अथवा बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव उत्कृष्ट करते हैं।

---

१. ता० प्रतौ आदावु० ओघं, आ० प्रतौ आदाउज्जो० ओघं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसुद्धो मूलोघो। एवं पंचिंदियतिरिक्ख०३।

१७१. पंचिं०तिरि०अपज्जत्तगेसु आभिणिबो० उ० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि४—अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० णि०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि० णि० अणंत०ही०। एवमेदाओ अण्णोण्णस्स तं तु०।

१७२. सादा० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४—उप०-पंचंत० णि० अणंतगुणही०। मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४—मणुसाणु०-अगु०३—पसत्थवि०-तस०४—थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० णि०। तं तु०। एवमेदाओ एक्कमेक्कस्स। तं तु०।

१७३. इत्थि० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४—अप्पसत्थ०-

---

यदि सर्व विशुद्ध तिर्यञ्च करते हैं, तो मूलोघके समान भंग है। इसी प्रकार अर्थात् सामान्य तिर्यञ्चोंके समान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके जानना चाहिए।

१७१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीच गोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। यहाँ तं तु-पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं,उनकी अपेक्षा परस्पर इसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१७२. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। यहाँ तं तु-पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं,उनकी अपेक्षा परस्पर जैसा सातावेदनीयकी अपेक्षा सन्निकर्ष कहा है,उसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१७३. स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस०४--दूभग--दुस्सर--अणादे०--णिमि०--णीचा०--पंचंत० णिय० अणंतगुणहीणं०। सादासाद०--चदुणोक०-दोगदि--तिण्णिसंठा०--तिण्णिसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-थिरादि-तिण्णियुग० सिया० अणंतगुणहीणं०। एवं पुरिस०। णवरि पंचसंठा०-पंचसंघ०।

१७४. हस्स० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु'०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावरादि०४-थिरादिपंच०--णिमि०--णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं०। रदी णि०। तं तु०। एवं रदीए०। दोआउं० णिरयभंगो।

१७५. बेइं०-तेइं०-चदुरिं० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणही०। सादासाद०-चदुणोक० सिया० अणंतगुणहीणं०। णाम० सत्थाणभंगो।

१७६. चदुसंठा० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छं०-सोलसक०-भय-दु०-णीचा०--पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं०। दोवेद०-चदुणोक० सिया० अणंत-

त्रसचतुष्क, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, दो गति, तीन संस्थान, तीन संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ तीन संस्थान और तीन संहननके स्थानमें पाँच संस्थान और पाँच संहनन कहने चाहिए।

१७४. हास्य प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक वेद, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि पाँच, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। रतिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार रति की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। दो आयुओंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष नारकियोंके समान है।

१७५. द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

१७६. चार संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दो वेद और

१. आ० प्रतौ सोलसक० भयदु० इति पाठः। २. आ० प्रतौ दोआणु० इति पाठः।
३. ता० प्रतौ णवदंसणा० मिच्छ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणहीणं० । णाम० सत्थाणभंगो । णवरि णग्गोद०-सादि० उक्कस्सं बंधंतो दोवेद० सिया० अणंतगुणहीणं० । खुज्ज०-वामण० णवुंस० णि० अणंतगुणहीणं० । एवं चदुसंघ० । असंपत्त० बेइंदियभंगो[1] ।

१७७. अप्पसत्थ०-दुस्सर० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु[2]०-णीचा०--पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं० । सादासाद०-चदुणोक० सिया० अणंतगुणहीणं० । णाम० सत्थाणभंगो । आदाउज्जो० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । एवं सव्वअपज्जत्त-सव्वविगलिंदियाणं पुढ०-आउ०--वणप्फदिपत्तेय--णियोदाणं च । तेउ०-वाऊणं पि तं चेव । णवरि मणुसायु०-मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० वज्ज० ।

१७८. मणुसेसु खविगाणं ओघं । सेसं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ।

१७९. देवेसु आभिणिबो० उ० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०--तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--उप०-अथिरादि-

---

चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान और स्वाति संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो वेदका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तथा कुब्जक संस्थान और वामन संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नपुंसकवेदका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार चार संहननोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष द्वीन्द्रियजातिके समान है।

१७७. अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। आतप और उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार अर्थात् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान सब अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पति प्रत्येक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके भी यही सन्निकर्ष है। इतनी विशेषता है कि इनके मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए।

१७८. मनुष्योंमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। शेष भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंके जानना चाहिए।

१७९. देवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र

---

१. आ० प्रतौ चदुसंघ० अप्पसत्थ० बेइंदियभंगो इति पाठः। २. आ० प्रतौ सोलसक० भयदु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंच-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थवि०-थावर०-दुस्सर० सिया०। तं तु०। पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणहीणं०। ओरालि०-तेजा०-क०--पसत्थ०४-अगु०३-बादर--पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं। एवं तं तु० पदिदाणं। साददंडओ इत्थि०-पुरिस० णिरयोघभंगो।

१८०. हस्स० उ० ओघं। णवरि दोगदि-दोजादि-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-पंचसंघ०-दोआणु०-आदाउज्जो०-अप्पत्थवि०-तस०-थावर०-दुस्सर०सिया० अणंतगुणहीणं०। इत्थि०-णवुंस० सिया० अणंतगुणहीणं०। रदि० णि०। तं तु०। एवं रदीए०। एइंदि०-थावर० ओघं। चदुसंठा०-चदुसंघ० ओघं।

१८१. असंप० उ० बं० हेट्ठा उवरि तिरिक्खभंगो। णाम० सत्थाणभंगो। सेसं णिरयभंगो।

१८२. भवण०-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मी० आभिणिबोधि० उ० बं० चदुणा०-

और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। एकेन्द्रियजाति, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभाग का भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार तं तु०पतित प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। सातावेदनीय दण्डक, स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सामान्य नारकियोंके समान है।

१८०. हास्य प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि दो गति, दो जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। रतिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। एकेन्द्रियजाति और स्थावरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है। चार संस्थान और चार संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है।

१८१. असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चोंके समान है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। शेष भङ्ग नारकियोंके समान है।

१८२. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०--सोलसक०-पंचणोक०--तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु० - उप०-थावर० - अथिरादिपंच० - णीचा० - पंचंत० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४--अगु०३--बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंत०-हीणं० । आदाउज्जो० सिया० अणंत०हीणं० । एवमेदाओ तं तु० पदिदाओ ऍक्कमेक्कस्स । तं तु० ।

१८३. असंप० उ० बं० हेट्ठा उवरिं तिरिक्खगदिभंगो। णवरि णि० अणंतगुणहीणं० । [णाम० सत्थाणभंगो । णवरि] अप्पस०-दुस्सर० णिय० । तं तु० । सेसं देवोघं ।

१८४. सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति पढमपुढविभंगो । आणद याव णवगेवज्जा त्ति आभिणिबो० उ० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-उप०अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । मणुस०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-ओरालिअंगो०-पसत्थ०४--मणुसाणु०-अगु०३--पसत्थवि०-तस०४--णिमि० णि० अणंतगुणही० । एवमेदाओ ऍक्कमेक्कस्स तं तु० ।

असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । इसी प्रकार यहाँ जितनी तं तु०पतित प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे परस्पर उसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिए,जिस प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे कहा है।

१८३. असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और आगेकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन बन्ध करता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है, किन्तु इतनी विशेषता है कि अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान हैं।

१८४. सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, तीन शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

सेसं सहस्सारभंगो। णवरि मणुसगदि [२] धुवं कादव्वं।

१८५. अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति आभिणिबो० उ० बं० चदुणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत णि०। तं तु०। मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-सुभग०-सुस्सर०-आदें०-णिमि०-उच्चो० णि० अणंतगुणही०। तित्थ० सिया० अणंतगुणही०। एवं आभिणि०भंगो अप्पसत्थाणं सव्वाणं। सादादीणं आणदभंगो।

१८६. एइंदिएसु साद० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत णि० अणंत०हीणं०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंत०हीणं०। मणुस०-मणुसाणु०-उज्जो०-उच्चा० सिया०। तं तु०। पंचिंदियादिवंधगा णिय० बं०। तं तु०। एवं तं तु० पदिदाणं सव्वाणं। सेसाणं

अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार यहाँ तं तु० पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष आभिनिबोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे जैसा कहा है, वैसा जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सहस्रार कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति द्विकको ध्रुव करना चाहिए।

१८५. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असाता वेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार सब अप्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष आभिनिबोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। तथा सातादिककी मुख्यतासे सन्निकर्ष, आनत कल्पमें इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे जिस प्रकार सन्निकर्ष कहा है, उस प्रकारका है।

१८६. एकेन्द्रियोंमें सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उद्योत और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति आदिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,

---

१. ता० आ० प्रत्योः णिमि० णि० उच्चा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पज्जत्तभंगो ।

१८७. पंचिंदि० -तस०२-पंचमण० -पंचवचि० - काययोगी० ओघो । ओरालियका० मणुसभंगो । ओरालियमि०आभिणि०दंडओ[1] पंचिं०तिरि०अपज्ज० पढमदंडओ । सादढंडओ तिरिक्खोघो[2] । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-दोआउ०-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-चदुसंघ०-आदाउज्जो०-पसत्थवि०-दुस्सर० अपज्जत्तभंगो । मणुसग० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०--मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु०ही० । दोवेदणी०-चदुणोक० सिया० अणंतगु०ही० । णाम० सत्थाणभंगो ।

१८८. वेउव्वियका०-वेउव्वियमि० देवोघं । उज्जोवं ओघं । आहार०-आहारमि० आभिणिबो० उ० बं० चदुणा०--छदंसणा०--असादावे०--चदुसंज०--पंचणोक०--अप्पसत्थ०४--उप०--अथिर--असुभ०--अजस०--पंचंत० णि० । तं तु० । पसत्थाणं धुविगाणं णि० अणंतगुणही० ।

तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार तं तु० पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उन सबकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जैसा सातावेदनीयकी मुख्यतासे कहा है, वैसा जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष अपर्याप्तक जीवोंके समान है। अर्थात् पहले जिस प्रकार अपर्याप्तक जीवोंके सन्निकर्ष कह आये हैं, उस प्रकार यहाँ शेष प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१८७. पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी और काययोगी जीवोंका भङ्ग ओघके समान है। औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरण आदि प्रथम दण्डककी मुख्यतासे सन्निकर्ष पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके प्रथम दण्डकके समान है। सातावेदनीयदण्डककी मुख्यतासे सन्निकर्ष सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, दो आयु, तीन जाति, चार संस्थान, चार संहनन, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष अपर्याप्तकोंके समान है। मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

१८८. वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सामान्य देवोंके समान है। उद्योत प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। प्रशस्त ध्रुव प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है।

---

१. ता० आ० प्रत्योः ओरालियमि० आभिणिबो० उ० बं०, एवं आभिणिदंडओ इति पाठः ।
२. आ० प्रतौ -दंडओ तिरिक्खोघो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८९. सादा० उ० बं० अप्पसत्थाणं णि० अणंतगु० । देवगदिपसत्थट्ठावीसं उच्चा० णि० । तं तु० । तित्थकरं सिया० । तं तु० । एवं पसत्थाणं एक्कमेक्कस्स तं तु० ।

१९०. हस्स० उ० बं० धुवियाणं अप्पसत्थाणं असाद०-अथिर-असुभ-अजस० णि० अणंतगु०ही० । सेसाणं पि णि० अणंतगुणहीं० । रदि० णि० । तं तु० । एवं रदीए० ।

१९१. कम्मइगका० आभिणिबो० उ० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ० - सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख० - हुंड०-अप्पसत्थ०४–तिरिक्खाणु० - उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थवि०-थावरादि०४–दुस्सर० सिया० । तं तु० । पंचिं०-ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-आदा-उज्जो०-तस०४ सिया० अणंतगु०ही० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४–अगु०-

---

१८९. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव अप्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । देवगति आदि प्रशस्त अट्ठाईस प्रकृतियाँ और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है, तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष कहना चाहिए जो सातावेदनीयकी मुख्यतासे जैसा कहा है, उसी प्रकारका है ।

१९०. हास्य प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव अप्रशस्त ध्रुव प्रकृतियाँ, असातावेदनीय, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । शेष प्रकृतियोंका भी नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । रतिका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । इसी प्रकार अर्थात् हास्यके समान रतिकी मुख्यतासे भी सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

१९१. कार्मणकाययोगी जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है, तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और त्रसचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । औदारिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिमि० णि० अणंतगु०हीं० । एवं तं तु० पदिदाओ सव्वाओ ।

१६२. साद० उ० बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंत०ही० । दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थय० सिया० तं तु० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० णि० । तं तु० । एवं तं तु० पदिदाओ सव्वाओ । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-चदुसंघ० ओघो ।

१६३. इत्थिवेदेसु आभिणिबो० उ० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । णिरयग०-तिरिक्ख०-एइंदि०-दोआणु०-अप्पसत्थवि०-थावर-दुस्सर० सिया० तं तु० । पंचिं[2]०-दोसरीर-वेउव्वि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगु०-

---

शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार तं तु० पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष आभिनिबोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए।

१६२. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार तं तु पतित सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तीन जाति, चार संस्थान और चार संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है।

१६३. स्त्रीवेदी जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चार, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह

---

१. ता० आ० प्रत्योः दोआणु० दुवि० अप्पसत्थवि० इति पाठः। २. आ० प्रतौ सिया० पंचि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही० । तेजा०-क०-पसत्थ०४–अगु०३–बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंत०ही० । एवं तं तु० पदिदाणं अण्णमण्णस्स । तं तु० । इत्थि०--पुरिस०-हस्स-रदि--चदुआउ०-मणुसगदिपंच०–सादादिखविगाणं तिण्णिजादि--चदुसंठा०-चदुसंघ०-सुहुम०--अपज्ज०-साहा० ओघं ।

१६४. णिरय० उक्क० बं० ओघं । एवं णिरयाणु०--अप्पसत्थवि०-दुस्सर० । तिरिक्ख० उ० बं० हेट्ठा उवरिं एइंदियसंजुत्ताओ सोधम्मपढमदंडओ ।

१६५. असंप० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०३-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-तस०-बादर-पत्ते०--अथिरादिपंच०--णिमि० णीचा० पंचंत० णि० अणंत-गुणही० । पंचि०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पसत्थवि०-पज्जत्तापज्ज० सिया० अणंतगु०-ही० । बेइं० सिया० । तं तु० ।

छह स्थान पतित हानिरूप होता है । पञ्चेन्द्रिय जाति, दो शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चार, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । इसी प्रकार तं तु० पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष जिस प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे कहा है, उस प्रकार जानना चाहिए । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार आयु, मनुष्यगति पञ्चक, सातावेदनीय आदि क्षपक प्रकृतियाँ, तीन जाति, चार संस्थान, चार संहनन, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है ।

१६४. नरकगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष ओघके समान है । इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी एकेन्द्रियजाति संयुक्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सौधर्मकल्पके प्रथम दण्डकके समान है ।

१६५. असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति-त्रिक, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, अस्थिर आदि पाँच, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, पर्याप्त और अपर्याप्तका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । द्वीन्द्रियजातिका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है ।

---

१. आ० प्रतौ० णिमि० णि० पंचंत० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९६. पुरिसेसु ओघो। णवरि उज्जोवं देवोघं।

१९७. णवुंस० आभिणिबो० उ० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक-०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि०। तं तु०। दोगदि-असंप०-दोआणु० सिया०। तं तु०। पंचिं०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णियमा अणंतगु०। दोसरीर--दोअंगो०--उज्जो० सिया० अणंत०ही०। णिरयग० ओघं।

१९८. तिरिक्ख० उ० बं० असंपत्त०-तिरिक्खाणु०-अप्पसत्थवि०-दुस्सर० णि०। तं तु०। पंचिं०-ओरालि०अंगो०-तस०४ णि० अणंत०ही०।

१९९. एइंदि० उ० बं० थावरादि०४ णि०। तं तु०। एवं थावरादि०४। सेसं ओघं।

२००. अवगदवे० आभिणिबो० उ० बं० चदुणा०--चदुदंसणा०--चदुसंजं०-

---

१९६. पुरुषवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सामान्य देवोंके समान है।

१९७. नपुंसकवेदी जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। दो गति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नरकगतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है।

१९८. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणाहीन होता है।

१९९. एकेन्द्रियजातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव स्थावर आदि चारका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर आदि चारकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। शेष भङ्ग ओघके समान है।

२००. अपगतवेदी जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला

---

१. आ० प्रतौ चदुणा० चदुसंज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचंत० णि० उक्क० । साद०-जस०-उच्चा० णि० अणंतगु०ही० । एवं अप्पसत्थाणं । साद०-जस०-उच्चा० ओघो । एवं सुहुमसंप० । कोधादि०४ ओघो । णवरि साद०-जस०-उच्चा० उ० बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-पंचंत० णि० अणंतगु० । माणे तिण्णिसंजल० णि० अणंतगु०ही० । मायाए दोसंज० णि० अणंतगु०ही० । लोभे ओघं ।

२०१. मदि०-सुद० आभिणि०दंडओ ओघो । साददंडओ ओघो । णवरि पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंतगु० । देवगदिसंजुत्ताओ याव जस०-उच्चा०गोद त्ति णि० । तं तु० । सेसं ओघं । एवं विभंगे ।

२०२. आभिणि०-सुद०-ओधि० आभिणि० उ० बं० चदुणा०-छदंसणा-० [असाद०-बारसक०-पुरिसवे०-अरदि०-सोग-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-] उप०-अथिर[1]-असुभ-अजस०-पंचंत० णि० । तं तु० । दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-वज्जरि०-

---

जीव चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका नियमसे उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है । सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । इसी प्रकार अप्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंके जानना चाहिए । क्रोध आदि चार कषायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, यशः कीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । मानमें तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । मायामें दो संज्वलनका नियमसे बन्ध होता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । लोभमें ओघके समान भङ्ग है ।

२०१. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरण दण्डकका भङ्ग ओघके समान है । सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि यह पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । देवगतिसंयुक्त प्रकृतियोंसे लेकर यशःकीर्ति और उच्चगोत्र तककी प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । शेष भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार अर्थात् मत्यज्ञानी जीवोंके समान विभङ्गज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए ।

२०२. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभ-

---

१. ता० प्रतौ एवं विभंगे आभिणि० उ० बं० चदुणा० छदंस० उप० .... अथि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोआणु०--तित्थ० सिया० अणंतगु०ही० । पंचिं०-तेजा०-क०--समचदु०--पसत्थ०४--अगु०३--पसत्थवि०-तस०४--सुभगं-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा० णि० अणंतगु०ही० । एवं अप्पसत्थाणं उक्कस्ससंकिलिट्ठाणं ।

२०३. हस्स० उक० बं० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिंदि०--तेजा०--क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४--अगु०४-पसत्थवि०--तस०४--अथिर-असुभ--सुभग-सुस्सर-आदें०-अजस०--णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु० । रदि० णि० । तं तु० । दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थ० सिया० अणंतगु०ही० । एवं रदीए० ।

२०४. मणुसाउ० देवोघं । सादादीणं खविगाणं देवाउ० मणुसगदिपंचगस्स य ओघो । एवं आभिणि०भंगो ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम० । मणपज्ज० आभिणि०भंगो । णवरि असंजदपगदीओ वज्ज । एवं संजद-सामाइय-च्छेदो०-परिहार० । संजदासंज० आभिणि०दंडओ साददंडओ ओधि०भंगो । णवरि संजदासंजदपगदीओ

नाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। उत्कृष्ट संक्लेशसे उत्कृष्ट बन्धको प्राप्त होनेवाली अप्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष इसी प्रकार जानना चाहिए।

२०३. हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। रतिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२०४. मनुष्यायुकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सामान्य देवोंके समान है। सातावेदनीय आदि क्षपक प्रकृतियाँ, देवायु और मनुष्यगतिपञ्चककी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है। इसी प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञानी जीवोंके समान अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदगसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असंयतोंके बँधनेवाली प्रकृतियोंको छोड़कर यह सन्निकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके कहना चाहिए। संयतासंयत जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरण दण्डक और सातावेदनीय दण्डक अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि संयतासंयत प्रकृतियोंको

---

१. ता० प्रतौ तस० सुभ० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धुविगाओ कादव्वाओ। सेसं ओघो। असंजदेसु मदि०भंगो। णवरि असंजदसम्मादिट्ठि-पगदीओ णादव्वाओ। चक्खु०-अचक्खु० ओघभंगो।

२०५. किण्णाए आभिणि०दंडओ णवुंसगभंगो। साददंडओ णिरयभंगो। चदुआउ० ओघं। णवरि देवाउ० उ० बं० पंचणा०–छदंसणा०--सादा०--बारसक०-पंचणोक०--देवगदिअट्ठावीस–उच्चा०–पंचंत० णि० अणंतगुणही०। तित्थ० सिया० अणंतगु०। अथवा मिच्छादिट्ठी यदि करेदि तो मिच्छादिट्ठिपगदीओ सम्मादिट्ठि-पगदीओ वि[1] णादव्वाओ।

२०६. देवगदि० उ० बं० पंचणा०-छदंस०-साद०-बारसक०-पंचणोक०-पंचिंदि-यादिपसत्थाओ-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु०ही०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो[2]०-देवाणुपुव्वि० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया०। तं तु०। एवं देवगदिभंगो वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-तित्थ०। तिरिक्ख०-एइंदि० णवुंसगभंगो। सेसं ओघं।

२०७. णील-काऊणं आभिणि०दंडओ साददंडओ णिरयभंगो। इत्थि०-पुरिस०-

ध्रुव करना चाहिए। शेष भङ्ग ओघके समान है। असंयत जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टि सम्बन्धी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

२०५. कृष्णलेश्यामें आभिनिबोधिकज्ञानावरण दण्डक नपुंसकोंके समान जानना चाहिए। सातावेदनीय दण्डक नारकियोंके समान जानना चाहिए। चार आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, देवगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियाँ, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। अथवा मिथ्यादृष्टि यदि करता है,तो मिथ्यादृष्टि प्रकृतियाँ और सम्यग्दृष्टि प्रकृतियाँ भी जाननी चाहिए।

२०६. देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियाँ, निर्माण, उच्चगोत्र, और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार देवगतिके समान वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तिर्यञ्चगति और एकेन्द्रिय जातिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष नपुंसक जीवोंके समान है। शेष भङ्ग ओघके समान है।

२०७. नील और कापोतलेश्यामें आभिनिबोधिक ज्ञानावरण दण्डक और सातावेदनीय

---

१. आ० प्रतौ मिच्छादिट्ठिपगदीओ वि इति पाठः। २. आ० प्रतौ अणंतगु०ही०। वेउव्वि० अंगो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ०-उज्जो० णिरयभंगो। चदुआउ० ओघं। णवरि देवाउ० उ० बं० पंचणा०--छदंसणा०-साद०--बारसक०--पंचणोक०--देवगदिअट्ठावीस--उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणही०। तित्थ० सिया० अणंतगुणही०। अथवा पुण मिच्छादिट्ठिस्स पि होदि तदो णादव्वा विभासा। णिरयगदि० उ० बं० णिरयाणु० णि०। तं तु०। सेसाओ णि० अणंतगु०। एवं णिरयाणु०। देवगदि४--तित्थय० किण्ण०-भंगो। चदुजादि-आदाव--थावरादि०४ णवुंसगभंगो। उज्जोवं पढमपुढविभंगो। काऊए तित्थ० णिरयभंगो।

२०८. तेऊए आभिणि०दंडओ सोधम्मभंगो। साददंडओ परिहार०भंगो। इत्थि०-पुरिस०--हस्स--रदि--दोआउ०--चदुसंठा०--पंचसंघ० सोधम्मभंगो। देवाउ० ओघो। मणुसगदिपंचगं ओघं। एवं पम्माए वि। णवरि अप्पसत्थाणं सहस्सारभंगो णादव्वो। सुक्काए आभिणि०दंडओ इत्थि०--पुरिस०--हस्स--रदि--मणुसाउ०--चदुसंठा०-चदुसंघ० आणदभंगो। सेसं ओघं।

२०९. भवसि० ओघं। अब्भवसि० आभिणि०दंडओ ओघं। साद० उ० बं० पंचणा०- णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४--उप०-पंचंत० णि०

दण्डकका भङ्ग नारकियोंके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार, संस्थान, चार संहनन और उद्योतका भङ्ग नारकियोंके समान है। चार आयुका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, देवगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियाँ, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। अथवा यदि मिथ्यादृष्टिके भी होता है तो विकल्प जानना चाहिए। नरकगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगति चतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कृष्णलेश्याके समान है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारकी मुख्यतासे सन्निकर्ष नपुंसक जीवोंके समान है। उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष पहली पृथिवीके समान है। कापोतलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष नारकियोंके समान है।

२०८. पीत लेश्यामें आभिनिबोधिक ज्ञानावरण दण्डकका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, दो आयु, चार संस्थान और पाँच संहननका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। देवायुका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति पञ्चकका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है। शुक्ललेश्यामें आभिनिबोधिकज्ञानावरणदण्डक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यायु, चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग आनत कल्पके समान है। शेष भङ्ग ओघके समान है।

२०९. भव्य जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अभव्य जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरण दण्डक ओघके समान है। सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अणंतगु० । तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंतगु० । मणुसगदिपंचग-देवगदि४-उज्जो[1]०-उच्चा० सिया० । तं तु० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०[४-] अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णिय० । तं तु० । एवं उच्चागोदं पि । णवरि तिरिक्खसंजुत्तं वज्ज ।

२१०. मणुस-देवगदि० उ० बं० पसत्थाणं णि० । तं तु० । अप्पसत्थाणं अणंत-गु०ही० । एवं मणुसाणु०-देवगदि०४ ।

२११. ओरालि० उ० बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंतगु० । मणुसग०-मणुसाणु०-उज्जो० सिया० । तं तु० । सेसं मणुसगदिभंगो । एवं ओरालि०-अंगो०-वज्जरि० । एवं उज्जो० । सेसं ओघो ।

२१२. सासणे आभिणि० उ० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-सोलसक०-

नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगतिपञ्चक, देवगति चतुष्क, उद्योत और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार उच्चगोत्रकी मुख्यतासे भी सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिसंयुक्त प्रकृतियोंको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए।

२१०. मनुष्यगति और देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनन्तगुणहीन बन्ध करता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगतिचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२११. औदारिक शरीरके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनु-भागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनु-भागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिरूप होता है। शेष भङ्ग मनुष्यगतिके समान है। इसी प्रकार औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार उद्योत प्रकृतिकी मुख्यतासे भी सन्निकर्ष जानना चाहिए। शेष भङ्ग ओघके समान है।

२१२. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध

---

१. आ० प्रतौ अप्पसत्थ४ उज्जो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्थि०--अरदि--सोग-भय--दुगुं०--तिरिक्ख०--वामण०-खीलिय०--अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०--ओरालि०अंगो०--पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णी० अणंतगु०ही० । उज्जोवं सिया० अणंतगु० । एवं तं तु० पदिदाणं ।

२१३. साद० उ० बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंतगु० । दोगदि-दोसरीर--दोअंगो०-वज्जरिस०-दोआणु०--उज्जो०-उच्चा० सिया० । तं तु० । पंचणाणावरणादिअप्पसत्थाणं णिय० अणंतगु० । पंचिंदियादिपसत्थाणं णि० । तं तु० । इत्थि०-पुरिस०--हस्स-रदि--तिण्णिआउ-तिण्णिसंठा०-तिण्णिसंघ०-उज्जो० ओघं । सेसाणं कम्माणं हेट्ठा[2] उवरिं सादभंगो । णाम० सत्थाणभंगो ।

२१४. सम्मामिच्छादिट्ठी० आभिणि०भंगो । मिच्छादिट्ठी० मदि०भंगो । ओरालि० उ० बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंतगुणही० । मणुसगदि-

---

करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, वामन संस्थान, कीलक संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । इसी प्रकार तं तु०पतित प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

२१३. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । पाँच ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तीन आयु, तीन संस्थान, तीन संहनन और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है । शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है ।

२१४. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। किन्तु औदारिक शरीरके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता

---

१. आ० प्रतौ तिरिक्खाणु० अणंतगु० इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः सेसाणं णामाणं हेट्ठा इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उज्जोवं सिया० । तं तु[1]० । ओरालि०अंगो०-वज्जरि० णि० । तं तु० । सेसाओ पसत्थाओ णि० अणंतगु० । एवं ओरालिअंगो०-वज्जरि० ।

२१५. सण्णि० ओघं । असण्णी० तिरिक्खोघो । सादवंडओ मदि०भंगो । आहार० ओघं । अणाहार० कम्मइग०भंगो ।

एवं उक्कस्सं सम्मत्तं ।

२१६. जहण्णपरत्थाणसण्णियासे पगदं । दुवि०--ओघे० आदे० । ओघे० आभिणि० जह० अणुभागं बंधंतो चदुणा०-चदुदंस०-पंचंत० णि० बं० जहण्णा । साद०-जस०-उच्चा० णि० बं० णि० अजहण्णं अणंतगुणब्भहियं बंधदि । एवं चदुणा०-चदुदंस०-पंचंत० ।

२१७. णिद्दाणिद्दाए जहण्णं बं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०--देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४--देवाणु०-अगु०४--पसत्थवि०--तस०४--थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा[2]०-

---

है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । मनुष्यगति और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है, तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । शेष प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है । इसी प्रकार औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

२१५. संज्ञियोंमें ओघके समान भङ्ग है । असंज्ञियोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि सातावेदनीयदण्डक मत्यज्ञानी जीवोंके समान है । आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

२१६. जघन्य परस्थान सन्निकर्षका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ओघ और आदेश । ओघसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागका नियमसे बन्ध करता है । सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है । इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

२१७. निद्रानिद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो

---

१. ता० प्रतौ उज्जोवं तं तु० इति पाठः । २. आ० प्रतौ णिमि० णि० उच्चा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचंत०-णि०बं० णि० अज० अणंतगु० । पचलापचला-थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अणंताणु०४ णि० । तं तु० । छट्ठाणपदिदं बं० अणंतभागब्भहियं वा ५ । एवं पचलापचला०-थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अणंताणु०४ ।

२१८. णिद्दाए ज० बं० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-णामाणि णिद्दाणिद्दाए भंगो । उच्चा०-पंचंत० [णि०] अणंतगुणब्भ० । पचला० णि० । तं तु० छट्ठाणपदिदं० । आहारदुग-तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं पचला० ।

२१९. साद० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-पसत्था-पसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० णिय० अणंतगुणब्भ० । थीणगिद्धि३-मिच्छ०-बारसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-पंचिंदि०-दोसरीर-दोअंगो०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तस०४-तित्थ०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ० । तिण्णि-आउ-दोगदि-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थिरादिछयुग०-उच्चा०

नियमसे अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप बन्ध करता है। अर्थात् या तो अनन्तभागवृद्धिरूप या असंख्यात-भागवृद्धिरूप, संख्यातभागवृद्धिरूप, संख्यातगुणवृद्धिरूप, असंख्यातगुणवृद्धिरूप या अनन्तगुण-वृद्धिरूप बन्ध करता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व, और अनन्तानुबन्धी चार की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२१८. निद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय और नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग निद्रानिद्राके समान है। उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। प्रचलाका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। आहारकद्विक और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२१९. सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्र-शस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, बारह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, तीर्थङ्कर और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीन आयु, दो गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिया० । तं तु० । एवं असाद०-अथिर-असुभ-अजस० । णवरि णिरयाणु-णिरयगदि-देवगदि-दोआणु० सिया० । तं तु० । देवाउ० वज्ज ।

२२०. अपच्चक्खा० कोध० ज० बं० तिण्णि क० । तं तु० । सेसं णिद्दाए भंगो । णवरि अट्ठकसायं भाणिदव्वं[1] । एवं तिण्णं क० ।

२२१. पच्चक्खाणकोध० ज० बं० तिण्णि क० णि० । तं तु० । सेसं णिद्दाए भंगो । एवं तिण्णिं क० ।

२२२. कोधसंज० ज०बं० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-तिण्णिसंज०-जसगि०-उच्चा०-पंचंत० णि०अणंतगुणब्भ० । माणसंज० ज० बं० दोसंज० णि० अणंतगुणब्भ० । सेसं० कोधभंगो । मायसंज० ज० बं लोभसंज० णि० अणंतगुणब्भ० । सेसं माणभंगो । लोभ-संज० ज० बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० ।

२२३. इत्थि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-

असातावेदनीय, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नरकायु, नरकगति, देवगति और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मात्र देवायुको छोड़कर इन असातावेदनीय आदिकी मुख्यतासे यह सन्निकर्ष कहना चाहिए।

२२०. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन कषायोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग निद्राके समान है। इतनी विशेषता है कि आठ कषाय कहलाना चाहिए। इसी प्रकार तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२२१. प्रत्याख्यानावरण क्रोधके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन कषायोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेष भङ्ग निद्राप्रकृतिके समान है। इसी प्रकार तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२२२. क्रोध संज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, तीन संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। मानसंज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष भङ्ग क्रोध संज्वलनके समान है। मायासंज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव लोभ संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष भङ्ग मान संज्वलनके समान है। लोभ संज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है।

२२३. स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण,

1. ता० प्रतौ भणिदव्वं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगुण०भ०। सादासाद०-चदुणोक०-तिण्णिगदि-दोसरीर-तिण्णिसंठा०-दोअंगो०-तिण्णिसंघ०-तिण्णिआणु०-उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०-णीचुच्चागो० सिया० अणंतगुण०भ०। एवं णवुंस०। णवरि पंचसंठा०-पंचसंघ० सिया० अणंतगुण०भ०।

२२४. पुरिस० ज० बं० कोधसंजलणभंगो। णवरि चदुसंज० णि० अणंतगुण०भ०।

२२५. हस्स० ज० बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुण०भ०। रदि-भय-दु० णियमा। तं तु०। एवं रदि-भय-दु०।

२२६. अरदि० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-देवगदि-पसत्थट्ठावीस-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुण०भ०। तित्थ० सिया० अणंत-गुण०भ०। सोग० णि०। तं तु०। एवं सोग०।

मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, तीन गति, दो शरीर, तीन संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, तीन संहनन, तीन आनुपूर्वी, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति, अयशः-कीर्ति, नीचगोत्र और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पाँच संस्थान और पाँच संहननका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है।

२२४. पुरुषवेदके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग क्रोध संज्वलनके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है।

२२५. हास्यप्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार रति, भय और जुगुप्साकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२२६. अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति आदि प्रशस्त अट्ठाईस प्रकृतियाँ, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

---

१. आ० प्रतौ पंचणा० सादा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२७. णिरयाउ० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-पंचि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमिं०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । असाद०-णिरय०-हुंड०-णिरयाणु०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ० णि० । तं तु० । एवं णिरयगदि-णिरयाणु० ।

२२८. तिरिक्खाउ० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु०-तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०३-उप०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। सादासा०-चदुजादि-असंप०-थावर-सुहुम-साधा०[1] सिया० । तं तु० । चदुणोक०-पंचिं०-ओरालि०अंगो०-तस०-बादर-पत्ते० सिया० अणंतगुणब्भे०[2] । हुंड०-अपज्ज०-अथिरादिपंच० णि० । तं तु० । मणुसाउ० ज० तिरिक्खाउ०भंगो[3] । णवरि मणुस०-हुंड०-असंप०-मणुसाणु०-अपज्ज०-अथिरादिपंच णि० । तं तु० ।

२२७. नरकायुके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। असातावेदनीय, नरकगति, हुण्डसंस्थान, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वी की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२२८. तिर्यञ्चायुके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार जाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, स्थावर, सूक्ष्म और साधारणका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। चार नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, त्रस, बादर और प्रत्येकका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्ड संस्थान, अपर्याप्त और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यायुके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अपर्याप्त और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका

१. आ० प्रतौ तस० णिमि० इति पाठः । २. आ० प्रतौ पत्ते० अणंतगुणब्भ० इति पाठः । ३. आ० प्रतौ मणुसाउ० उ० तिरिक्खभंगो इति पाठः ।

१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२९. देवाउ० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचिं०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० णिय० अणंतगुणब्भ०। सादा०-देवग०-समचदु०-देवाणु०-पसत्थवि०-थिरादिछ०-उच्चा० णि०। तं तु०। इत्थि०-पुरिस० सिया० अणंतगुणब्भ०।

२३०. तिरिक्ख० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-सादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। णाम० सत्थाणभंगो। णीचा०। तं तु०। एवं तिरिक्खाणु०-णीचा०।

२३१. मणुस० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। सादासाद०-मणुसाउ०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-अपज्ज०-थिरादिछयुग०-उच्चा० सिया०। तं तु०। सत्तणोक०-पर०-उस्सा०-पज्ज०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ०। पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो-पसत्था-

भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

२२९. देवायुके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है।

२३०. तिर्यञ्चगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। नीचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३१. मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यायु, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, अपर्याप्त, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर,

१. आ० प्रतौ सादासाद० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थ०४–अगु०-उप०-तस०-बादर-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। मणुसाणु० णि०। तं तु०। एवं मणुसाणु०।

२३२. देवगदि० ज० बं पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचंतं० णि० अणंतगुणब्भ०। सादासाद०-देवाउ० सिया०। तं तु०। इत्थि०-पुरिस०-हस्स–रदि–अरदि–सोग० सिया० अणंतगुणब्भ०। उच्चा० णि०। तं तु०। णाम० सत्थाणभंगो। एवं देवाणु०।

२३३. एइंदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय०-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। सादासाद०-तिरिक्खाउ० सिया०। तं तु०। हस्स-रदि-अरदि-सोग० सिया० अणंतगुणब्भ०। णाम० सत्थाणभंगो। एवं बेइं०-तेइं०-चदुरिं० हेट्ठा उवरिं एइंदियभंगो। णाम० सत्थाणभंगो।

औदारिकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३२. देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और देवायुका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोकका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३३. एकेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, और तिर्यञ्चायुका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। हास्य, रति, अरति और शोकका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रिय जातिकी मुख्यतासे नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका सन्निकर्ष एकेन्द्रिय जातिके समान है तथा नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

---

१. ता० प्रतौ एवं मणुसाणु०। णि० तं तु० एवं मणु० [एतच्चिन्हान्तर्गतः पाठोऽधिकः प्रतीयते।] देवगदि०, आ० प्रतौ एवं मणुसाणु० णि० तं तु० एवं मणुस० देवगदि० इति पाठः। २. आ० प्रतौ सोलसक० णवुंस० भयदु० णीचा० पंचंत० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३४. पंचिंदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं तस० ।

२३५. ओरालि० जं० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०--णीचा०--पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं उज्जो० ।

२३६. वेउव्वि० ज० बं० हेट्ठा उवरिं पंचिंदिय०भंगो । णाम० सत्थाणभंगो । एवं वेउव्वि०अंगो० ।

२३७. आहार० ज० बं० पंचणा०-छदंस०-सादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-देवगदिपसत्थट्ठावीसं-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । आहार०अंगो[१]० णि० । तं तु० । तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं आहारंगोवंग० ।

२३८. तेजाक० हेट्ठा उवरिं पंचिंदियभंगो । णाम० सत्थाणभंगो । एवं तेजइगभंगो कम्मइ०-पसत्थवण्ण४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० ।

---

२३४. पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार त्रस प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३५. औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३६. वैक्रियिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय जातिके समान है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३७. आहारकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, देवगति आदि प्रशस्त अट्ठाईस प्रकृतियाँ, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। आहारक आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार आहारक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३८. तैजसशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय जातिके समान है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार तैजसशरीरके समान कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

---

१. ता० आ० प्रत्योः आहारभंगो० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३९. समचदु० ज० बं० पंचणा०--णवदंसणा०-मिच्छ०--सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि०अणंतगुणब्भ०। सादासाद०-देवाउ०-उच्चा० सिया०। तं तु०। सत्तणोक०-दोआउ०--णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ०। णाम० सत्थाणभंगो। एवं पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदें०।

२४०. णग्गोद० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०--मिच्छ०-सोलसक०--भय-दु०-पंचंत० णिय० अणंतगुणब्भ०। सादासाद०-उच्चा० सिया०। तं तु०। सत्तणोक०-दोआउ०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ०। णाम० सत्थाणभंगो। एवं णग्गोद०भंगो तिण्णिसंठा०-पंचसंघ०।

२४१. हुंड० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। दोवेदणी०-तिण्णिआउ०-उच्चा० सिया०। तं तु०। सत्तणोक०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भहियं०। णाम० सत्थाणभंगो। एवं हुंड०भंगो दूभग-अणादें०।

---

२३९. समचतुरस्र संस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, देवायु और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय, दो आयु और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२४०. न्यग्रोध संस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय, दो आयु और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार न्यग्रोध संस्थानके समान तीन संस्थान और पाँच संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२४१. हुण्ड संस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो वेदनीय, तीन आयु और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय और नीचगोत्र का कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार हुण्ड संस्थानके समान दुर्भग और अनादेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४२. ओरालि०अंगो ज० बं० हेट्ठा उवरिं ओरालिय०भंगो। णाम० सत्थाणभंगो।

२४३. असंप० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दुगुं०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। दोवेदणी०-तिरिक्ख०-मणुसाउ०-उच्चा० सिया०। तं तु०। सत्तणोक०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ०। णाम० सत्थाणभंगो।

२४४. आदाउज्जो० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। णाम० सत्थाणभंगो०।

२४५. अप्पसत्थवि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। सादासाद०-णिरयाउ०-उच्चा० सिया०। तं तु०। सत्तणोक०-दोआउ०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ०। णाम० सत्थाणभंगो। एवं दुस्सर०।

२४६. सुहुम० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय०-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। सादासाद०-तिरिक्खाउ० सिया०। तं तु०।

---

२४२. औदारिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भंग औदारिकशरीरके समान है। तथा नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२४३. असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो वेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२४४. आतप और उद्योतके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२४५. अप्रशस्त विहायोगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, नरकायु और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय, दो आयु और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार दुःस्वर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२४६. सूक्ष्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और तिर्यञ्चायुका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चदुणोक० सिया० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं अपज्ज०-साधार० । णवरि अपज्जत्तो दोआउ० सिया० । तं तु० ।

२४७. थिर० ज० बं० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय०-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-बारसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख-मणुसाउ०-णीचा० सिया० अणंतगु० । सादासाद०-देवाउ०-उच्चा० सिया० । तं तु० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं सुभ-जस० ।

२४८. तित्थ० ज० बं० पंचणा०-छदंस०-असाद०-बारसक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो ।

२४९. उच्चा० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचिं०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० णि० अणंत-गुणब्भहियं० । सादासाद०-देवाउ०-छसंठा०-छस्संघ०-दोगदि-दोआणु०-दोविहा०-

---

घन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपर्याप्तके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो आयुओंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

२४७. स्थिरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, बारह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, देवायु और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार शुभ और यशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२४८. तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२४९. उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, देवायु, छह संस्थान, छह संहनन, दो गति, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-मणुसाउ०-दोसरीर-दोअंगो० सिया० अणंतगुणब्भहियं बंधदि ।

२५०. आदेसेण णिरएसु आभिणि० ज० बं० चदुणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० । तं तु० । साद०-मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०-४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० णि० अणंतगुणब्भ० । तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं आभिणि०भंगो० तं तु० पदिदाणं सव्वाणं ।

२५१. णिद्दाणिद्दाए ज० बं० पंचणा०-छदंस०-साद०-बारसक०-पंचणोक०-पंचिं०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगु० । पचलापचला०-थीणगिद्धि[१]०-मिच्छ०-अणंताणु०४ णि० । तं तु० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० । तं तु० । मणुस०-मणुसाणु०-उज्जो०-उच्चा० सिया० अणंतगुणब्भ० ।

वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय, मनुष्यायु, दो शरीर और दो आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक अनुभागबन्ध करता है ।

२५०. आदेशसे नारकियोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदिछह, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तंतुपतित सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके समान जानना चाहिए।

२५१. निद्रानिद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचारका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्या-

१. आ० प्रतौ थीणगिद्धि०३ मिच्छा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं पचलापचला०-थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अणंताणु०४ ।

२५२. साद० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय०-दु०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क० - ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगु० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-तित्थ०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ० । दोआउ०-मणुसग०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थिरादिछ०-उच्चा० सिया० । तं तु० । एवं सादभंगो असाद०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० ।

२५३. इत्थि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । सादासाद०-चदुणोक०-दोगदि-तिण्णिसंठा०-तिण्णिसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०-दोगोद० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं णवुंस० । णवरि पंचसंठा०-पंचसंघ० सिया० अणंतगुणब्भ० ।

नुपूर्वी, उद्योत और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । इसी प्रकार प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारकी मुख्यतासे जानना चाहिए ।

२५२. सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, तीर्थङ्कर और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । दो आयु, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार सातावेदनीयके समान असातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

२५३. स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, दो गति, तीन संस्थान, तीन संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि यह पाँच संस्थान और पाँच संहननका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५४. अरदि० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४—मणुसाणु०-अगु०४—पसत्थवि०-तस०४—थिर—सुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-जसगि०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । सोग० णि० । तं तु० । एवं सोग० ।

२५५. तिरिक्खाउ० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-तिरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-अगु०४—तस०४—णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । सादासाद०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं मणुसाउं० । णवरि सत्तणोक०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ० । सादादि याव उच्चा० सिया० । तं तु० । मणुस०-मणुसाणु०

अनन्तगुणा अधिक होता है ।

२५४. अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । शोकका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

२५५. तिर्यञ्चायुके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । इसी प्रकार मनुष्यायुकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सात नोकषाय और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । सातावेदनीयसे लेकर उच्चगोत्र तककी प्रकृतियोंका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभाग का भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका

१. ता० प्रतौ० ज० बं० पं० (?) पंचणा० इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः मणुसाणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसाउ०भंगो० ।

२५६. पंचिंदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाण-भंगो । एवं पंचिंदियभंगो ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०-तस०४-णिमि० ।

२५७. समचदु० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-णि० अणंतगुणब्भ० । सादासाद०-दोआउ०-उच्चा० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं समचदुर०भंगो पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोविहा०-सुभादितिण्णियुग० ।

२५८. तित्थ० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो ।

२५९. उच्चा० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय० दु०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४[1]-

---

बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष मनुष्यायुके समान जानना चाहिए।

२५६. पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जातिके समान औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२५७. समचतुरस्रसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार समचतुरस्रसंस्थानके समान पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो विहायोगति और शुभादि तीन युगलकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२५८. तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२५९. उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर,

---

१. आ० प्रतौ पसत्थापसत्थ० ४ तस० ४ इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । सादासाद०-मणुसाउ०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । सत्तणोक० सिया० अणंतगुणब्भ० । मणुसगदि-मणुसाणु० णि० । तं तु० । एवं सत्तमाए पुढवीए । णवरि मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० तित्थयरभंगो । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंच-संघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० एदेसिं तिरिक्खगदी धुवं कादव्वं । णवरि थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० णि० । तं तु० । एवमेदाओ अण्णोण्णस्स तं तु० । णवरि साद० ज० बं० दोगदि-दोआणु०-उज्जो०-दोगो० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं असाद०-थिरादितिण्णियुगलाणं । छसु उवरिमासु णिरयोघो । णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० परियत्तमाणियाणं कादव्वं[1] । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि-णवुंसगाणं मणुसगदि-दुगं कादव्वं ।

कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यायु, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भङ्ग तीर्थङ्कर प्रकृतिके समान है। तथा स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र इनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहते समय तिर्यञ्चगतिको ध्रुव करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु वह स्त्यानगृद्धि तीन आदिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान ही जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, दो आनुपूर्वी, उद्योत और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलोंकी अपेक्षा जानना चाहिए। प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें सामान्य नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रको परिवर्तमान प्रकृतियोंमें करना चाहिए। तथा स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके मनुष्यगति द्विक करना चाहिए।

१. ता० प्रतौ परियमाणि कादव्वं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६०. तिरिक्खेसु आभिणि० ज० बं० चदुणा०-छदंस०-अट्ठकसा०-पंचणोक[1]०-अप्पसत्थ०-४-उप०-पंचंत० णिय० । तं तु० । साद०-देवग०पसत्थसत्तावीसं-उच्चा० णि० अणंतगुणब्भ० । एवं तं तु पदिदाओ अण्णमण्णस्स तं तु० । सेसं ओघं । णवरि अरदि० ज० बं० पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि अणंतगुणब्भ० । सेसं णामाणं णाणावरणभंगो । एवं पंचिंदिय०तिरि०३ । णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० परियत्तमाणियाणं कादव्वं तिरिक्खेसु० । णवरि पंचिंदियजादीणं ओरालि०-ओरालि०अंगो०-उज्जो०-तिरिक्खगदिदुग० अप्पप्पणो सत्थाणं कादव्वं ।

२६१. पंचिंदि०तिरि०अपज्ज० आभिणि० ज० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० । तं तु० । साद०-मणुस०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-समचदु०-ओरालि०अंगो० - वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० णि० अणंतगुणब्भ० । एवं तं तु० पदिदाओ अण्णोण्णं तं तु० ।

---

२६०. तिर्यञ्चोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त, वर्णचतुष्क उपघात, और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, देवगति आदि प्रशस्त सत्ताईस प्रकृतियों और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तं तु॰पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे परस्पर आभिनिबोधिकज्ञानावरणकी मुख्यतासे जिस प्रकार सन्निकर्ष कहा है उस प्रकार जानना चाहिए। शेष भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष नामकर्मकी प्रकृतियोंका ज्ञानावरणके समान भङ्ग है। इसी प्रकार अर्थात् सामान्य तिर्यञ्चोंके समान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रको परिवर्तमान प्रकृतियोंमें करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियजाति आदिमें औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, उद्योत और तिर्यञ्चगतिद्विकका अपना-अपना स्वस्थान सन्निकर्ष कहना चाहिए।

२६१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, मनुष्य गति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच-संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक

---

1. आ० प्रतौ चदुणोक० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६२. साद० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४—अगु०-उप०--णिमि०--पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । सत्तणोक०–ओरा०अंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । दो आउ०-दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तस-थावरादिदसयुग०-दोगो० सिया० । तं तु० । एवं सादभंगो असाद०-अथिर-असुभ०-अजस० ।

२६३. इत्थि० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४—पसत्थवि[2]०तस०४—सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंत-गुणब्भ० । सादासाद०—चदुणोक०—तिण्णिसंठा०-तिण्णिसंघ०—थिरादितिण्णियुग० सिया अणंतगुणब्भ० । एवं णवुंस० । णवरि पंचसंठा०—पंचसंघ० ।

२६४. अरदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-

होता है । इसी प्रकार तं तु-पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष आभिनि-बोधिकज्ञानावरणके समान जानना चाहिए ।

२६२. सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-वरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । सात नोकषाय, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । दो आयु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार सातावेदनीयके समान असातावेदनीय, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

२६३. स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र, और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, तीन संस्थान, तीन संहनन और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसमें पाँच संस्थान और पाँच संहनन कहने चाहिए ।

२६४. अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण,

१. ता० प्रतौ पंचजादि० छस्संघ० इति पाठः । २. ता० प्रतौ अगु० पसत्थापसत्थ० इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

०-दु०-मणुसं०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । सादासाद०-थिरादितिण्णियुग० सिया० अणंतगुणब्भ० । सोग० णि० । तं तु० । एवं सोग० । तिरिख०-मणुसाउ०-मणुसग०-मणुसाणु० ओघं ।

२६५. तिरिक्ख० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । सादासाद०-तिरिक्खाउ० सिया० । तं तु० । सत्त-णोक० सिया० अणंतगुणब्भ० । णीचा० णि० । तं तु० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं तिरिक्खाणु०-णीचा० । चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादि०४ ओघं ।

२६६. पंचिंदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचंत० णियमा० अणंतगुणब्भ० । सादासाद०-दोआउ०-दोगोद० सिया० । तं तु० ।

मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है।

२६५. तिर्यञ्चगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और तिर्यञ्चायुका कदाचित् बन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नीचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि चार युगलकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है।

२६६. पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह

---

१ ता० प्रतौ भय० मणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तणोक० सिया० अणंतगुण०भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं पंचिंदियजादिभंगो तस०४ । थिरादिछयुग० हेट्ठा उवरिं पंचिंदियभंगो । णामाणं अप्पप्पणो सत्थाणभंगो ।

२६७. ओरालि० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णिय० अणंतगुण०भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं ओरालियभंगो तेजा०-क०-पसत्थव०४-अगु०-णिमि०-ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा० । आदाउज्जो० एवं चेव । सादासाद०-चदुणोक०सिया० अणंतगुण०भ० । णाम० सत्थाणभंगो । उच्चा० ओघो । णवरि पंचिंदिय० णि० । तं तु० । एवं सव्वअपज्जत्ताणं सव्वविगलिंदियाणं पुढ०-आउ०-वणप्फदि०-बादरपत्ते०-णियोदाणं च । तेऊणं [वाऊणं] पि एवं चेव । णवरि मणुसगदिचदुक्कं वज्ज । तिरिक्खगदिधुविगाणं सव्वाणं आभिणि०भंगो । एइंदिएसु अपज्जत्तभंगो । णवरि तिरिक्खगदितिगं तिरिक्खोघं ।

२६८. मणुस०३ खविगाणं संजमपाओग्गाणं ओघं । सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो ।

छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । सात नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियजातिके समान त्रसचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । स्थिर आदि छह युगलकी मुख्यतासे नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका सन्निकर्ष पञ्चेन्द्रियजातिके समान है । तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थान सन्निकर्षके समान जानना चाहिए ।

२६७. औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है । इसी प्रकार औदारिकशरीरके समान तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात और उच्छ्वासकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । आतप और उद्योतकी मुख्यतासे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि यह सातावेदनीय, असातावेदनीय, और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है । उच्चगोत्रकी मुख्यतासे ओघके समान सन्निकर्ष है । इतनी विशेषता है कि यह पञ्चेन्द्रिय जातिका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभाग का भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार अर्थात् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान सब अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, वनस्पतिकायिक बादर प्रत्येक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए । अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति चतुष्कको छोड़कर जानना चाहिए । तथा तिर्यञ्चगति आदि सब ध्रुव प्रकृतियोंका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानावरणके समान है । एकेन्द्रियोंमें अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है ।

२६८. मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियाँ और संयम प्रायोग्य प्रकृतियाँ इनका भङ्ग ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६९. देवेसु सत्तण्णं कम्माणं पढमपुढविभंगो। सादावे० ज० बं० दोगदि-एइंदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर-थिरादिछयुग०-दोगो० सिया०। तं तु०। पंचिं०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस०-तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ०। सेसाणं णिरयभंगो। णामाणं तिरिक्खगदितिगं परियत्तमाणियाणं कादव्वं। एइंदि०-आदाव-थावर० ओघं। पंचिं०-ओरालि०अंगो०-तस० णिरयभंगो। णाम० सत्थाणभंगो। सेसं पढमपुढविभंगो।

२७०. भवण०-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मीसाणं सत्तण्णं कम्माणं देवोघं। णामाणं हेट्ठा[1] उवरिं देवोघं। णवरि णामाणं अप्पप्पणो सत्थाणभंगो। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति पढमपुढविभंगो। आणद याव णवगेवज्ज त्ति सत्तण्णं कम्माणं एवं चेव। णामाणं पि तं चेव। णवरि मणुस० ज० बं०-पंचणा०-णवदंस०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। णामाणं सत्थाणभंगो। एवं सव्वसंकिलिट्ठाणं।

२७१. अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति आभिणि०दंडओ देवोघं। साद० ज० बं०पंचणा०-

२६९. देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग पहली पृथिवीके समान है। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, एकेन्द्रियजाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर, स्थिर आदि छह युगल और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत, त्रस और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। किन्तु नामकर्मकी तिर्यञ्चगतित्रिकको परिवर्तमान करना चाहिए। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसप्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। शेष भंग पहली पृथिवीके समान है।

२७०. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म-ऐशान कल्पके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। नामकर्मके पहले और अन्तकी प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थानके समान है। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग इसी प्रकार है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग भी उसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार सर्व संक्लेशसे जघन्य बँधनेवाली प्रकृतियोंके सम्बन्धमें जानना चाहिए।

२७१. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरण दण्डकका

१. ता० आ० प्रत्योः थावरादि इति पाठः। २. आ० प्रतौ णाम सत्थाणं हेट्ठा इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुसगदि-पंचिं०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। चदुणोक०-तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ०। मणुसाउ०-थिरादितिण्णियुग० सिया०। तं तु०। एवं सादभंगो असाद०-मणुसाउ०-थिरादितिण्णियुग०। अरदि-सोगं देवोघं०।

२७२. मणुसग० ज० बं० पंचणा०-छदंस०-असादा०-बारसक०-पंचणोक०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। उच्चा० णि०। तं तु०। णाम० सत्थाणभंगो०। एवं सव्वसंकिलिट्ठाण भंगो उच्चा०।

२७३. पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगी० ओघो। ओरालि० मणुसभंगो[1]। णवरि तिरिक्ख०३ मूलोघं। ओरालियमि० आभिणि०दंडओ तिरिक्खोघं। णवरि बारसक० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ०। थीण-

---

भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। चार नोकषाय और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यायु और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार सातावेदनीयके समान असातावेदनीय, मनुष्यायु और स्थिर आदि तीन युगलकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अरति और शोकका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

२७२. मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इस प्रकार सर्व संक्लेशसे जघन्य बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंके समान उच्चगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२७३. पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी और काययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग मूलोघके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरण दण्डकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि बारह कषायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य

---

१. ता० आ० प्रत्योः मणुसगदिभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिद्धि०३–अणंताणुबं०४ देवोघं। सादासाद०–थिरादितिण्णियुग० ओघं। णवरि असाद० जह० बंधगस्स विसेसो। देवगदिपंचग० सिया० अणंतगुणब्भ०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुसग०-पंचजादि-ओरालि०-तेजा०-क०-छस्संठा०-ओरालि०-अंगो०-छस्संघ०-पसत्थापसत्थ०४–मणुसाणु०–अगु०४–आदाउज्जो०–दोविहा०-तसादिदसयुग०-उच्चा० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। अरदि-सोगं देवोघं। णवरि देवगदिसंजुत्तं। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ओघं। देवगदिपंचगं तित्थयरभंगो।

२७४. वेउव्वि० आभिणि०दंडओ थीणगिद्धिदंडओ च णिरयोघं। तिरिक्खायु-तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-णीचा० णिरयोघं। सेसाणं पगदीणं देवोघं। णवरि इत्थि०-णवुंस० णिरयोघं। एवं वेउव्वियमि०।

२७५. [आहार०-]आहारमि० आभिणि० ज० बं० चदुणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४–उप०-पंचंत० णि०। तं तु०। साद०-देवगदिआदिसत्तावीसं-उच्चा० णि० तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ०। एवमण्णोण्णं तं तु०। साद ज० बं० सव्वट्ठ०भंगो। णवरि अट्ठक० वज्ज०। देवगदी धुवं। एवं सादभंगो देवाउ०-थिर-सुभ-

अनन्तगुणा अधिक होता है। स्त्यानगृद्धि तीन और अनन्तानुबन्धी चारका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। सातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका भंग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि असातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके विशेष जानना चाहिए। देवगति पञ्चकका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और उच्चगोत्रका भंग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। अरति और शोकका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगतिसंयुक्त करना चाहिए। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिपञ्चकका भङ्ग तीर्थङ्कर प्रकृतिके समान है।

२७४. वैक्रियिककायोगी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणदण्डक और स्त्यानगृद्धिदण्डक सामान्य नारकियोंके समान है। तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए।

२७५. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, देवगति आदि सत्ताईस प्रकृतियाँ और उच्चगोत्रका नियमसे तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तं तुपतित प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग सर्वार्थसिद्धिके समान है। इतनी विशेषता है कि आठ कषायोंको छोड़कर कहना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस० । एवं तप्पडिपक्खाणं । णवरि देवाउ० णत्थि ।

२७६. देवगदि० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । उच्चा० णि० । तं तु० । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं सव्वसंकिलिट्ठाणं ।

२७७. कम्मइ० आभिणि० ज० बं० दोगदि -दोसरीर -दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । सेसं ओरालियमिस्स०भंगो। थीणगि०[३-] मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० बं० मणुस०--मणुसाणु०-उज्जो०--उच्चा० सिया० अणंतगुणब्भ० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०--णीचा० सिया० । तं तु० । सेसाणं ओघं । णवरि दोगदि-दोसरीर--दोअंगो०--वज्जरि०--दोआणु० सिया० अणंतगुणब्भ० । देवगदि०४ ओरालियमिस्स०भंगो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सत्तमपुढविभंगो ।

२७८. ओरालि० ज० बं० एइंदि०--थावरादि०४ सिया० अणंतगुणब्भ० ।

देवगतिको ध्रुव कहना चाहिए । इसी प्रकार सातावेदनीयके समान देवायु, स्थिर, शुभ और यशः कीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । इसी प्रकार इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि देवायु नहीं है ।

२७६. देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है । इसी प्रकार सर्व संक्लेशसे जघन्य बँधनेवाली प्रकृतियोंका जानना चाहिए ।

२७७. कार्मणकाययोगी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । शेष भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचारके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उद्योत और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । देवगतिचतुष्कका भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सातवीं पृथिवीके समान है ।

२७८. औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रियजाति और स्थावर आदि चारका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिं०-ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तस४ सिया० । तं तु० । एवं ओरालिय०भंगो तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि०-पंचिं०-पर०-उस्सा०-उज्जोव० । तस०४ मूलोघं । सेसाणं ओरालियमिस्स०भंगो ।

२७६. इत्थिवेदेसु आभिणि० ज० बं० चदुणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-पंचंत० णि० जहण्णा० । साद०-जस०-उच्चा० णि० अणंतगुणब्भ० । एवमेदाओ अण्णोण्णं जहण्णा० । सेसाणं खवगपगदीणं ओघं ।

२८०. सादा० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दुगुं०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । सेसं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं असाद०-थिरादितिण्णियु० । इत्थि०-णवुंस०-चदुआउ०-चदुगदि-चदुजादि छस्संठा०-छस्संघ०-चदुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-मज्झिल्ल०३-दोगो० पंचिं०तिरिक्खभंगो ।

२८१. पंचिंदि० ज० बं० पंचणा०--णवदंस०--असाद०--मिच्छ०--सोलसक०--पंचणोक०-णिरयग०-हुंडसंठा०-अप्पसत्थ०४—णिरयाणु०--उप०--अप्पसत्थ०--अथिरा-दिछ०-णीचा०-पंचंतरा० णि० अणंतगुणब्भ० । वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो०-

---

पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और त्रसचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार औदारिकशरीरके समान तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण, पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । त्रसचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष मूलोघके समान है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है ।

२७६. स्त्रीवेदी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद और पाँच अन्तरायका नियमसे जघन्य अनुभाग बन्ध करता है । सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता हैजो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । इसी प्रकार परस्पर जघन्य अनुभाग बन्ध करनेवाली इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। शेष क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है।

२८०. सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । शेष भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार आयु, चार गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, मध्यके तीन युगल और दो गोत्रका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है ।

२८१. पञ्चेन्द्रियजातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णि० । तं तु० । एवं वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-[तस०]।

२८२. ओरालि० ज० बं० हेट्ठा उवरि पंचिंदियजादिभंगो । तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । तेजइगादीणं० णि० । तं तु० । आदाउज्जो० सिया० । तं तु० । [एवं आदाउज्जो०] ।

२८३. तेज० जह० हेट्ठा उवरिं ओरालिय०भंगो । दोगदि-एइंदि-दोआणु०-अप्पसत्थ०-थावर०-दुस्सर० सिया० अणंतगु० । पंचिं०-ओरालि०-वेउव्वियदुग-आदाउ०-तस० सिया० । तं तु० । कम्म०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० । तं तु० । हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिरादिपंच० णि० अणंतगु० । एवं कम्मइगादिसंकिलिट्ठाणं ।

लघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२८२. औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके पूर्वकी और अन्तकी प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियजातिके समान है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तैजसशरीर आदिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार अर्थात् औदारिकशरीरके भङ्ग समान आतप और उद्योतका भंग है।

२८३. तैजसशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके पूर्वकी और अन्तकी प्रकृतियोंका भंग औदारिकशरीरके समान है। दो गति, एकेन्द्रियजाति, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीरद्विक, आतप और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार संक्लेशसे बँधनेवाली कार्मणशरीर आदि प्रकृतियोंका सन्निकर्ष जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८४. ओरालि०अंगो० ज० बं० हेट्ठा उवरिं तेजइगभंगो। बीइंदि०-पंचिं०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पसत्थ०[1]-पज्जत्तापज्जत्त०-दुस्सर०[2] सिया० अणंतगु०। तिरिक्खगदिसंजुत्ताओ णिय० अणंतगु०। तित्थयरं ओघं।

२८५. पुरिसेसु सत्तण्णं कम्माणं इत्थिभंगो। पंचिंदिय०-ओरालि०-वेउव्वि०-आहार०-तेजा०-क०-तिण्णि अंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-आदाउज्जो०-तस०४-णिमि०-खविगाणं तित्थय० ओघं। सेसाणं इत्थिभंगो।

२८६. णवुंसगे पढमदंडओ इत्थिभंगो। सेसं ओघं। णवरि पंचिंदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगु०। दोगदि[3]०-असंप०-दोआणु[3]०-णीचा० [सिया०] अणंतगु०। दोसरीर-दोअंगो०-उज्जो० सिया०। तं तु०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु[4]०३-तस०४-णिमि० णि०। तं तु०। एवं पंचिंदियभंगो तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि०। ओरालि[5]०-ओरालि०-

---

२८४. औदारिक आङ्गोपांगके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके पूर्वकी और अन्तकी प्रकृतियोंका भंग तैजसशरीरके समान है। द्वीन्द्रियजाति, पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, पर्याप्त, अपर्याप्त और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यञ्चगति संयुक्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

२८५. पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, तीन आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, क्षपक प्रकृतियाँ और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग स्त्रीवेदीके जीवोंके समान है।

२८६. नपुंसकवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। शेष भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियजातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो गति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जातिके समान तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। औदारिक

---

१. आ० प्रतौ अप्पसत्थ०४ इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः -पज्जत्त पत्ते० दुस्सर इति पाठः। ३. ता० प्रतौ दोगदि० असंप (अप्पस) त्थ दोआणु०, आ० प्रतौ दोगदि० अप्पसत्थ० दोआणु० इति पाठः। ४. ता० प्रतौ अगु०४ इति पाठः। ५. आ० प्रतौ तस ४ णिमि० ओरालि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगो०-उज्जो० णिरयभंगो । आदाव० तिरिक्खभंगो । सेसं ओघं ।

२८७. अवगदवेदेसु अप्पप्पणो पगदीओ ओघो ।

२८८. कोधादि०४ ओघं । णवरि कोधे०१८ णिय० जह० । माणे०१७ जह० । मायाए१६ जह० । लोभे० ओघो ।

२८९. मदि-सुद०-आभिणि० ज० बं० चदुणा० णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० । तं तु० । सादावे०-देवगदिसत्तावीसं-उच्चा० णि० अणंतगु० । एवमेदाओ तं तु० पदिदाओ[1] अण्णमण्णस्स तं तु० ।

२९०. अरदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ[2]०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगु० । सादासाद०-तिण्णिगदि-दोसरीर-दोअंगो[3]०वज्जरि०-तिण्णिआणु०-उज्जो०-थिरादि[4]तिण्णियुग०-दोगो०सिया०अणंतगु०।

शरीर, औदारिकआंगोपांग और उद्योतका भंग नारकियोंके समान है। आतपका भंग तिर्यञ्चोंके समान है। शेष भंग ओघके समान है।

२८७. अपगतवेदी जीवोंमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है।

२८८. क्रोधादि चार कषायोंमें ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रोध कषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तराय इन अठारह प्रकृतियोंका नियमसे एक साथ जघन्य अनुभागबन्ध होता है। मानकषायमें संज्वलन क्रोधके सिवा सत्रह प्रकृतियोंका नियमसे जघन्य अनुभागबन्ध होता है। माया कषायमें संज्वलनक्रोध और संज्वलन मानके सिवा सोलह प्रकृतियोंका नियमसे जघन्य अनुभागबन्ध होता है। लोभकषायमें ओघके समान भंग है।

२८९. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, देवगति आदि सत्ताईस प्रकृतियाँ और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार इन तं तु० पतित प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष परस्पर आभिनिबोधिकज्ञानावरणके समान जानना चाहिए।

२९०. अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तीन गति, दो शरीर, दो आंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, तीन आनुपूर्वी, उद्योत, स्थिर आदि तीन युगल और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष भंग ओघके

१. ता० प्रतौ तं तु० पंचिंदा (दिया) ओ, आ० प्रतौ तं तु० पंचिदियाओ इति पाठः । २. आ०प्रतौ अगु० ३ पसत्थ० इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः दोगो० इति पाठः । ४. आ० प्रतौ तिण्णि आणु० थिरादि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसं ओघं। एवं विभंग०।

२६१. आभिणि०-सुद०-ओधि० खविगाणं पगदीणं अरदि-सोगाणं च ओघं संजमपाओग्गाणं च। साद० ज० बं० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-पंचि०-समचदु०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु०। अट्ठक०-चदुणोक०-दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थय० सिया० अणंतगु०। दोआउ०-थिरादितिण्णि-युग० सिया०। तं तु०। एवमसा०-दोआउ०-थिरादितिण्णियु०।

२६२. मणुस० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० णि० अणंतगु०। पंचिंदियादि याव णिमि०-उच्चा० णि०। तं तु०। एवं मणुसगदिपंच०।

२६३. देवगदि ज० बं० हेट्ठा उवरि मणुसगदिभंगो। णाम० सत्थाणभंगो। एवं देवगदि०४।

२६४. पंचिंदि० ज० बं० हेट्ठा उवरि मणुसगदिभंगो। णामाणं० दोगदि-

समान है। इसी प्रकार अर्थात् मत्यज्ञानी जीवोंके समान विभङ्गज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए।

२६१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका, अरति शोकका व संयमप्रायोग्य प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। आठ कषाय, चार नोकषाय, दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो आयु और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार असातावेदनीय, दो आयु और स्थिर आदि तीन युगलकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२६२. मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माण तक और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगतिपञ्चककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२६३. देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है। तथा नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार देवगतिचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२६४. पञ्चेन्द्रियजातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोसरीर-दोअंगो०-वज्जरिस०—दोआणु०--तित्थ० सिया० । तं तु० । तेजइगादिपसत्थाओ उच्चा० णि० । तं तु० । अप्पसत्थवण्ण०-[उप०-अथिर-असुभ-अजस०] णि० अणंतगु० । एवं सव्वसंकिलिट्ठाणं पंचिंदियभंगो । [आहारदुगं अप्पसत्थ०४—उप० ओघं ।] एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइगसम्मा०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि० । णवरि उवसम० पसत्थाणं तित्थ० वज्ज असंजमपाओग्गा कादव्वा ।

२९५. मणपज्जवे खविगाणं ओघो । सेसाणं ओधिभंगो । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार-संजदासंजद० । णवरि परिहारवज्जाणं पसत्थपगदीणं तित्थयरं वज्ज० । सुहुमसंप० अवगदवेदभंगो ।

२९६. असंजदेसु आभिणि०दंडओ थीणगिद्धिदंडओ देवगदिसंजुत्तं[1] कादव्वं । सादासाद०-थिरादितिण्णियुग० सम्मादिट्ठि-मिच्छादिट्ठिसंजुत्ताओ कादव्वाओ । इत्थि०-णवुंस० ओघं ।

२९७. अरदि० ज० बं० दोगदि—दोसरीर--दोअंगो०--वज्जरि०—दोआणु०—

बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है। नामकर्मकी दोगति, दो शरीर, दो आंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर आदि प्रशस्त प्रकृतियाँ और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इस प्रकार जिनका सर्वसंक्लेशसे जघन्य अनुभागबन्ध होता है, उनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष पञ्चेन्द्रियजातिके समान जानना चाहिए। आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्ण चार और उपघातकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंको तीर्थङ्करप्रकृतिको छोड़कर असंयमप्रायोग्य करना चाहिए।

२९५. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामयिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंका तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है।

२९६. असंयत जीवोंमें आभिनिबोधिकदण्डक और स्त्यानगृद्धिदण्डकको देवगतिसंयुक्त करना चाहिए। सातावेदनीय, असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलको सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिसंयुक्त करना चाहिए। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग ओघके समान है।

२९७. अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, दो शरीर, दो आङ्गो-

१. आ० प्रतौ आभिणिदंडओ देवगदिसंजुत्तं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तित्थ० सिया० अणंतगु० । सेसं ओघं ।

२९८. चक्खु०-अचक्खु० ओघं । किण्णाए आभिणि०दंडओ थीणगिद्धिदंडओ णिरयभंगो । सादादिचदुयुग०--अरदि--सोगं असंजदभंगो । इत्थि०--णवुंस० ओघं । सेसं णवुंसगभंगो ।

२९९. णील--काऊए पढमदंडओ विदियदंडओ तदियदंडओ अरदि-सोगदंडओ किण्णभंगो । इत्थि० ज० बं० तिरिक्खोघं । मणुस०--देवगदि--दोआणु० सिया० अणंतगु० । णवुंस०-थीणगिद्धिदंडओ पंचिंदि०दंडओ णिरयोघं ।

३००. वेउव्वि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-असादा०--मिच्छ०--सोलसक०-पंचणोक०--णिरयगदिअट्ठावीसं--णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगु० । वेउव्वि०अंगो० आदावं तिरिक्खोघं । सेसं किण्णभंगो ।

३०१. तेऊए आभिणि०दंडओ परिहार०भंगो । विदियदंडओ ओघं । साद० ज० बं० पंचणा०--छदंसणा०--चदुसंज०--भय--दु०--तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४--अगु०४--बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगु० । थीणगि०३--मिच्छ०-बारसक०-सत्तणोक०-देवगदि-दोसरीर-दोअंगो०-देवाणु०-आदाउज्जो०-तित्थ० सिया०

पाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । शेष भङ्ग ओघके समान है ।

२९८. चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । कृष्णलेश्यामें आभिनिबोधिकज्ञानावरणदण्डक और स्त्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग नारकियोंके समान है । साता आदि चार युगल, अरति और शोकका भङ्ग असंयतोंके समान है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है ।

२९९. नील और कापोत लेश्यामें प्रथम दण्डक, द्वितीय दण्डक, तृतीय दण्डक और अरति-शोकदण्डकका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है । स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । मनुष्यगति, देवगति, और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । नपुंसकवेद, स्त्यानगृद्धिदण्डक और पञ्चेन्द्रियजाति दण्डकका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है ।

३००. वैक्रियिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियाँ नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और आतपका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । शेष प्रकृतियों का भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है ।

३०१. पीतलेश्यामें आभिनिबोधिकज्ञानावरण दण्डक परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है । द्वितीय दण्डकका भङ्ग ओघके समान है । सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करने वाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, बारह कषाय, सात नोकषाय, देवगति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंतगु० । तिण्णिआउ०-दोगदि-दोजादि-छस्संठा०--छस्संघ०--दोआणु०--दोविहा०-तस-थावर-थिरादिछयुग०-दोगो० सिया० । तं तु० । एवं असाद०-थिरादितिण्णि-युग० । इत्थि० ज० बं० णीलभंगो । णवुंस०-दोआउ० देवभंगो ।

३०२. देवाउ० ज० बं० सादा०-थिर-सुभ-जस० णि० । तं तु० । मिच्छा-दिट्ठिसंजुत्ता कादव्वा । सेसं णि० अणंतगु० ।

३०३. देवगदि ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०-इत्थि०-अरदि-सोग-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० णि० । तं तु० । णामाणं सत्थाणभंगो । सेसं सोधम्मभंगो । एवं पम्माए वि० । णवरि णामाणं सहस्सारभंगो । देवगदि०४ तेउभंगो । णवरि पुरिस० धुवं० ।

३०४. सुक्काए खविगाणं ओघं । सादादिचदुयुग० पम्मभंगो । देवगदि०४ पम्मभंगो । सेसं णवगेवज्जभंगो ।

पूर्वी, आतप, उद्योत और तीर्थङ्करका कदाचित बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । तीन आयु, दो गति, दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस स्थावर, स्थिर आदि छह युगल और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । इसी प्रकार अर्थात् सातावेदनीयके समान असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग नीललेश्याके समान है । नपुंसकवेद और दो आयुका भङ्ग देवोंके समान है ।

३०२. देवायुके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सातावेदनीय, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । किन्तु इन्हें मिथ्यादृष्टिसंयुक्त करना चाहिए । शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है ।

३०३. देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है । वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है । शेष भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है । इसी प्रकार अर्थात् पीत लेश्याके समान पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसमें नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है । तथा देवगतिचतुष्कका भङ्ग पीतलेश्याके समान है । इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदको ध्रुव करना चाहिए ।

३०४. शुक्ललेश्यामें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । सातावेदनीय आदि चार युगलोंका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है । देवगतिचतुष्कका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नौग्रैवेयकके समान है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०५. भवसि० ओघं। अब्भवसि० आभिणि०दंडओ [मदि०भंगो। णवरि] तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया०। तं तु०। दोगदि-दोसरीर--दोअंगो०-वज्जरि०--दोआणु०-उज्जो०-उच्चा० सिया० अणंतगु०। इत्थि०-णवुंस० ओघं। अरदि-सोग० मदि०भंगो। उवरि सव्वमोघं[1]।

३०६. सासणे आभिणि० ज० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४—उप०-पंचंत० णि०। तं तु०। सादा०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०३—पसत्थ०-तस०४—थिरादिछ०-णिमि० णि० अणंतगु०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०--णीचा० सिया०। तं तु०। दोगदि--दोसरीर--दोअंगो०--वज्जरि०-दोआणु०-उज्जो०-उच्चा० सिया० अणंतगु०। एवमेदाओ एॅक्कमेॅक्कस्स तं तु०।

३०७. सादा० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-सोलसक०-भय-दु०--पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४—तस०४—णिमि० णि० अणंतगु०। चदुणोक०-

३०५. भव्योंमें ओघके समान भङ्ग है। अभव्योंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणदण्डकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग ओघके समान है। अरति और शोकका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। आगेका सब भङ्ग ओघके समान है।

३०६. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध होता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इस प्रकार तंतु० पतित इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३०७. सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

१. आ० प्रतौ सव्वमोइं इति पाठः।

तिरिक्ख०३-दोसरीर-दोअंगो०-उज्जो० सिया० अणंतगु० । तिण्णिआउ०-मणुसग०-देवग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-थिरादिछयुग०-उच्चा० सिया० । तं तु० । एवं तंतु० पदिदाणं सव्वाणं सादभंगो । पंचिंदियदंडओ णिरयभंगो । दोआउ० देवभंगो । देवाउ० ओघं ।

३०८. मिच्छादिट्ठी० मदि०भंगो । सण्णी० ओघो । असण्णीसु आभिणिदंडओ देवगदिसंजुत्तं० कादव्वं । सेसं तिरिक्खोघं । आहार० ओघं । अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं जहण्णपरत्थाणसण्णियासो समत्तो ।

१६ भंगविचयपरूवणा

३०९. णाणाजीवेहि भंगविचयं दुवि०-जह० उक्कस्सयं च । उक्क० पगदं । तत्थ इमं अट्ठपदं मूलपगदिभंगो । एदेण अट्ठपदेण दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० सव्वपगदीणं उक्कस्साणुक्कस्स० छभंगा । तिण्णिआऊणं उक्कस्साणुक्कस्स० सोलसभंगा । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइग०--णवुंस०--कोधादि०४-मदि०--सुद०--असंजद०--अचक्खु०--तिण्णले०--भवसि०

अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। चार नोकषाय, तिर्यञ्चगतित्रिक, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीन आयु, मनुष्यगति, देवगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागबन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तंतु०पतित सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सातावेदनीयके समान है। पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकका भङ्ग नारकियोंके समान है। दो आयुओंका भङ्ग देवोंके समान है। देवायुका भङ्ग ओघके समान है।

३०८. मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। संज्ञी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। असंज्ञियोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरण दण्डक देवगतिसंयुक्त करना चाहिए। शेष भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार जघन्य परस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

१६ भङ्गविचयप्ररूपणा

३०९. नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है--जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसके विषयमें यह अर्थपद मूलप्रकृतिके समान है। इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टअनुभागबन्धके छह भङ्ग हैं। तीन आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके सोलह भङ्ग हैं। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति । णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारएसु-देवगदिपंच० उक्कस्साणुक्कस्स० सोलस भंगा ।

३१०. णेरइएसु-दोआउ० दो वि पदा सोलस भंगा । सेसाणं सव्वपगदीणं दोपदा छभंगा । एवं णिरयभंगो पंचिं०तिरि०अपज्ज० मणुस०३—सव्वदेव०-सव्व-विगलिंदि०--पंचिं०--तस० तेसिं पज्जत्तापज्जत्ता बादर--बादरपुढवि०--आउ०--तेउ० वाउ०--बादरवणप्फदिपत्तेयपज्जत्ताणं च पंचमण०--पंचवचि०--वेउव्वि०--इत्थि०-पुरिस०--विभंग--आभिणि०--सुद०--ओधि०--मणपज्ज०--संजद० याव संजदासंजदा० चक्खुदं०-ओधिदं०-तिण्णिले०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-सण्णि त्ति ।

३११. मणुस०अपज्ज०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहार०-आहारमि०-अवगद०-सुहुमसं०--उवसम०--सासण०--सम्मामि० उक्क० अणुक्क० सोलस भंगा । एइंदिएसु दोआउ ओघं। सेसाणं उक्कस्साणुक्कस्स० अथिरबंधगा य अबंधगा य। एवं एइंदियभंगो बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०--वाउ०अपज्ज०--सव्ववणप्फदिबादर-पत्तेय०अपज्ज०--सव्व-णियोदाणं सव्वसुहुमाणं च । णवरि एइंदि०-बादरएइंदि० तस्सेव पज्जत्तगेसु उज्जोवं ओघं। पुढ०- आउ०-तेउ०-वाउ०-बादर-पत्ते० सव्वपगदीणं ओघं ।

एवं उक्कस्सं समत्तं ।

क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके सोलह भङ्ग है।

३१०. नारकियोंमें दो आयुओंके दोनों ही पदोंके सोलह भङ्ग हैं। शेष सब प्रकृतियोंके दो पदोंके छह भङ्ग हैं। इसी प्रकार नारकियोंके समान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च तीन, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्यत्रिक, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और त्रस तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर और इन पाँचोंके पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयतोंसे लेकर संयतासंयत तकके जीव, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

३११. मनुष्यअपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसाम्परायिक संयत, उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके सोलह भङ्ग हैं। एकेन्द्रियोंमें दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके बन्धक जीव हैं और अबन्धक जीव हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रियोंके समान बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सब वनस्पति कायिक, बादर प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सब निगोद और सब सूक्ष्म जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें उद्योत ओघके समान है। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१२. जहण्णए पग० । तत्थ इमं अट्ठपदं मूलपगदिभंगो । एदेण अट्ठपदेण दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० सादासाद०-तिरिक्खाउ०-मणुस०-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०--दोविहा०-थावरादि०४--थिरादिछयु०--उच्चा० ज०अज० अत्थि बंधगा य अबंधगा य । सेसाणं पगदीणं ज० अज० उक्कस्सभंगो । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि--ओरालिय०--ओरालियमि०--कम्मइ०--णवुंस०--कोधादि०४--मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०--तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारए त्ति ।

३१३. एइंदिय-बादरएइंदिय-पज्जत्त मणुसाउ०-तिरिक्खगदितिगं ओघं । सेसाणं ज० अज० अत्थि बंधगा य अबंधगा य । बादरएइंदियअपज्ज० सव्वसुहुमाणं बादर-चदुकायअपज्जत्तगाणं सव्ववणप्फदि--बादरपत्तेयअपज्जत्त०--सव्वणियोद० मणुसाउ० ओघं । सेसाणं ज० अज० अत्थि[1] बंध० अबंध० । पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादर-पत्ते[2]०--बादरपुढवि०-आउ०--तेउ० [वाउ०] धुविगाणं पसत्थापसत्थाणं केसिं च परियत्तीणं च मणुसाउ० ज० अज० उक्कस्सभंगो । सेसाणं ज० अज० अत्थि बंधगा

और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट समाप्त हुआ ।

३१२. जघन्यका प्रकरण है । उसके विषयमें यह अर्थपद मूल प्रकृतिके समान है । इस अर्थ-पदके अनुसार दो प्रकारका निर्देश है-ओघ और आदेश । ओघसे सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके बन्धक जीव हैं और अबन्धक जीव हैं । शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

३१३. एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मनुष्यायु और तिर्यञ्च-गतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव हैं और अबन्धक जीव हैं । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सब सूक्ष्म, बादर चार कायवाले अप-र्याप्त, सब वनस्पतिकायिक, बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त और सब निगोद जीवोंमें मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव हैं और अबन्धक जीव हैं । पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक वायुकायिक, बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवोंमें प्रशस्त और अप्रशस्त ध्रुवबन्धवाली, कितनी ही परावर्तमान प्रकृतियाँ और मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव हैं और अबन्धक जीव हैं ।

१. आ० प्रतौ अज० णत्थि इति पाठः । २. आ० प्रतौ तेउ० बादरपत्ते० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य अबंधगा य। बादरपज्जत्ताणं उक्कस्सभंगो। सेसाणं णेरइगादीणं याव अणाहारगे त्ति उक्कस्सभंगो।

एवं भंगविचयं समत्तं[1]।

१७ भागाभागपरूवणा

३१४. भागाभागं दुवि०-जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० तिण्णिआउ०-वेउव्वियछ०-तित्थ० उक्कस्सअणुभागबंधगा जीवा[2] सव्वजीवाणं केवडियो भागो? असंखेंज्जदिभागो। अणुक० अणुभागबं० जीवा० सव्वजीवाणं केवं[3]० भागो? असंखेंज्जा भागा। आहारदुगं उक्क० अणुभागबंध० सव्वजी० केव०? संखेंज्ज०। अणु० संखेंज्जा भागा। सेसाणं उक्क० केव०? अणंतभा०। अणु० केव०? अणंता भागा[4]। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघो कायजोगि०--ओरालि०-ओरालियमि०--कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४--मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति। णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारएसु देवगदिपंचग० आहारसरीरभंगो। किण्ण-णीलाणं तित्थ० आहार०भंगो। एवं ओरालिय० इत्थि०बं०। णिरएसु सव्वपगदीणं उक्क० असंखेंज्जदि०। अणु० असंखेंज्जा

बादर पर्याप्त जीवोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष नारकियोंसे लेकर अनाहारक तकके जीवोंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है।

इस प्रकार भङ्गविचय समाप्त हुआ।

१७ भागाभागप्ररूपणा

३१४. भागाभाग दो प्रकारका है--जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है--ओघ और आदेश। ओघसे तीन आयु, वैक्रियिक छह और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव कितने भागप्रमाण हैं? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव कितने भागप्रमाण हैं? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका भङ्ग आहारकशरीरके समान है। कृष्ण और नीललेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग आहारकशरीरके समान है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंमें स्त्रीवेदके बन्धक जीवोंका भङ्ग जानना चाहिए। नारकियोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण

---

१. ता० प्रतौ एवं भागाभागं समत्तं इति पाठो नास्ति। २. ता० आ० प्रत्योः जीवाणं इति पाठः। ३. ता० प्रतौ सव्वजीवे० केव० इति पाठः। ४. ता० प्रतौ अणंतभागा इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागा । णवरि मणुसाउ० आहारभंगो । एवं सेसाणं पि ओघेण साधेदव्वं[1] । एवं ए असंखेंज्जजीविगा ते देवगदिभंगो । ए संखेंज्जजीविगा ते आहार०भंगो । एइंदिय-वणप्फदि०-णियोदेसु तिरिक्खाउ०[2] ओघं । एइंदिए उज्जो० उ० अणंतभागा । अणु० अणंता भागा[3] । सेसाणं णिरयभंगो ।

३१५. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०--सोलसक०--णवणोक०--तिरिक्ख०--पंचिं०-ओरालि०-तेजा०-क०--ओरालि०-अंगो[4]०-पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-अगु०४--आदाउ०-तस०४--णिमि०-णीचा०-पंचंत० जह० अणुभा० सव्वजी० केव० ? अणंतभा० । अज० अणंता भा[5]० । सादा-साद०-चदुआउ०-तिण्णिगदि-चदुजादि--छस्संठा०--छस्संघ०--तिण्णिआणु०--दोविहा०-थावरादि४--थिरादिछयुग०--उच्चा०--वेउव्वि०--वेउव्वि०अंगो०--तित्थ० ज० असंखेंज्जदिभा० । अज० असंखेंज्जा भागा । आहारदुगं उक्कस्सभंगो । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजो०-ओरालि०-ओरालियमि० कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४--मदि०-सुद०-असंज०--अचक्खु०--तिण्णिले०-भवसि०--अब्भवसि०--मिच्छादि०--असण्णि०-

हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भङ्ग आहारकशरीरके समान है । इसी प्रकार शेष मार्गणाओंमें भी ओघके अनुसार साध लेना चाहिए । इसी प्रकार जो असंख्यात जीवोंवाली मार्गणाएँ हैं, उनमें देवगतिके समान भङ्ग है और जो संख्यात जीवोंवाली मार्गणाएँ हैं, उनमें आहारकशरीरके समान भङ्ग है । एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें तिर्यञ्चायुका भङ्ग ओघके समान है । एकेन्द्रियोंमें उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है ।

३१५. जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है--ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार आयु, तीन गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल, उच्चगोत्र, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । आहारकद्विकका भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

१. आ० प्रतौ पि साभेदव्वं इति पाठः । २. आ० प्रतौ वणप्फदि० तिरिक्खाउ० इति पाठः । ३. ता० आ० प्रत्योः अणंतभागा इति पाठ । ४. आ० प्रतौ पंचिं० ओरालि०अंगो इति पाठः । ५. ता० आ० प्रत्योः अणंतभा० इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

आहार०-अणाहारग त्ति। णवरि ओरालि०-ओरालियमि०-इत्थिवे०-किण्ण--णील०-उवसम० तित्थ० ज० अजं० आहार०भंगो। ओरालियमि०-कम्मइ०--अणहार० देवगदिपंचगं उक्कस्सभंगो। सेसाणं णिरयादि याव सण्णि त्ति अप्पप्पणो उक्कस्सभंगो संखेंज्जजीविगाणं असंखेंज्जजीविगाणं अणंतजीविगाणं च। णवरि एइंदिएसु तिरिक्खगदितिगं ओघं। सेसं णिरयोघं। अवगद०-सुहुमसंप० ज० अज० आहार०भंगो।

एवं भागाभागं समत्तं[2]।

१८ परिमाणपरूवणा

३१६. परिमाणं दुवि०-जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०--दोगदि-चदुजादि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०४-दोआणु०-उप०-आदावं०[3]-अप्पसत्थवि०--थावरादि४-अथिरादिछ०--णीचा०--पंचंत० उक्कस्सअणुभागबंधगा केत्तिया? असंखेंज्जा। अणुक्क० अणुभा०बं० के०? अणंता। साद०-तिरिक्खाउ०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थव०४-अगु०३-पसत्थवि०--तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० उक्कस्स० संखेंज्जा०। अणु० अणंता। णिरयाउ०-णिरयगदि०-णिर-

इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, कृष्णलेश्यावाले, नील लेश्यावाले और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भंग आहारकशरीरके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष नरकगतिसे लेकर संज्ञी तककी संख्यात जीवोंवाली, असंख्यात जीवोंवाली और अनन्त जीवोंवाली मार्गणाओंमें अपने-अपने उत्कृष्ट के समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग ओघके समान है। शेष सामान्य नारकियोंके समान है। अपगतवेदवाले और सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भंग आहारकशरीरके समान है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

१८ परिमाणप्ररूपणा

३१६. परिमाण दो प्रकारका है-जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकार का है-ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव कितने हैं? अनन्त हैं। सातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और

१. आ० प्रतौ तित्थ० अज० इति पठः। २. ता० प्रतौ एवं भागाभागं समत्तं इति पाठो नास्ति। ३. आ० प्रतौ आदाव० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याणु० उक्क० अणु० असंखेँज्जा । दोआउ०-देवग०-[वेउव्वि०-] वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-तित्थ० उ० संखेँज्जा । अणु० असंखेँज्जा । आहारदुगं उक्क० अणु० संखेँज्जा । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०--णवुंस०--कोधादि०४–मदि०--सुद०--असंज०-अचक्खु०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-आहारग त्ति । णवरि ओरालि० तित्थ० उक्क० अणुक्क० संखेँज्जा० ।

२१७. णेरइएसु मणुसाउ० उक्क० अणुक्क० केँत्तिया ? संखेँज्जा । सेसाणं उक्क० अणुक्क० असंखेँज्जा । एवं सव्वणेरइगाणं ।

उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। नरकायु, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग का बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। दो आयु, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आंगोपांग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं, इसलिए यहाँ इनका परिमाण उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं, इसलिए इनका परिमाण उक्त प्रमाण कहा है। नरकायु आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं, इसलिए ये असंख्यात कहे हैं। तथा दो आयु आदि दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं, अतएव इनका उक्तप्रमाण परिमाण कहा है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं, यह स्पष्ट ही है। यह सब संख्या उत्कृष्ट अनुभागका स्वामित्व और तत्तत् प्रकृतिके बन्धक जीवोंका विचार करके कही गई है। आगे ऐसी मार्गणाएँ गिनाई हैं, जिनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल बन जाती है। उनमें एक मार्गणा औदारिककाययोग भी है। परन्तु इस मार्गणामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध पर्याप्त मनुष्य ही करते हैं और उनका परिमाण संख्यात है, इसलिए औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे हैं।

२१७. नारकियोंमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकियोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नारकी जीव यदि मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, तो गर्भज मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं। अतः इनमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१८. तिरिक्खेसु णिरयाउ०-वेउव्वियछ० उक्क० अणु० असंखेंज्जा[1]। तिण्णि-आउ० [ओघं ।] सेसाणं उ० असंखेंज्जा । अणु० अणंता । पंचिं०तिरि०३ तिण्णि-आउ० उ० संखेंज्जा । अणु० असंखेंज्जा । सेसाणं उ० अणु० असंखेंज्जा । पंचिं०-तिरि०अपज्ज० मणुसाउ० उ० संखेंज्जा । अणु० असंखेंज्जा । सेसाणं उक्क० अणुक्क० के० ? [अ०-] संखेंज्जा । एवं सव्वअपज्जत्ताणं [पंचिंदिय०-] तसाणं सव्वविगलिंदियाणं सव्वपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०--बादरपत्तेगसरीराणं च । णवरि तेउ-वाऊणं मणुस-गदिचदुक्कं णत्थि ।

३१९. मणुसेसु दोआउ०--वेउव्वियछ०--आहारदु०--तित्थ० उक्क० अणुक्क० संखेंज्जा । सेसाणं उ० संखेंज्जा । अणु० असंखेंज्जा । मणुसप०-मणुसिणीसु सव्व-पगदीणं [उक्क०] अणु० संखेंज्जा ।

३२०. देवाणं णिरयभंगो याव अपराजिता त्ति । सव्वट्ठे सव्वपगदीणं उ०

हैं । शेष कथन सुगम है ।

३१८. तिर्यञ्चोंमें नरकायु और वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं । तीन आयुओंका भङ्ग ओघके समान है और शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं तथा अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें तीन आयुओंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक और सब बादर प्रत्येकशरीर जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके मनुष्यगतिचतुष्कका बन्ध नहीं होता ।

विशेषार्थ—ओघसे देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है । किन्तु तिर्यञ्चोंके वह संयतासंयतके होगा और इनका परिणाम असंख्यात है, इसलिए यहाँ तिर्यञ्चोंमें नरकायु आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात कहे हैं । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

३१९. मनुष्योंमें दो आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्ध जीव असंख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं ।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें नरकायु, देवायु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध अपर्याप्त मनुष्य नहीं करते, इसलिए इनका दोनों प्रकारका परिमाण संख्यात कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

३२०. देवोंमें अपराजित तक नारकियोंके समान भङ्ग है । सर्वार्थसिद्धिमें सब प्रकृतियोंके

---

१. आ० प्रतौ संखेज्जा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० संखेज्जा ।

३२१. एइंदिय--सव्ववणप्फदि--णियोदाणं तिरिक्खाउ० उ० असंखेज्जा । अणु० अणंता । मणुसाउ० ओघं । सेसाणं उक्क० अणु० अणंता । णवरि एइंदि०-उज्जो० ओघं ।

३२२. पंचिं०-तस०२ साद०[1]-तिण्णिआउ०-देवगदि-पंचिं०-वेउ०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउ०अंगो०--पसत्थव०४--देवाणु०--अगु०३--पसत्थ०--तस०४--थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उ०[2] संखेज्जा । अणु० असंखेज्जा । सेसाणं उ० अणु० असंखेज्जा । आहारदुगं ओघं । एवं एस भंगो पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-सण्णि त्ति । णवरि इत्थि० तित्थ० उक्क० अणु० संखेज्जा ।

उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं ।

विशेषार्थ—अपराजित तक प्रत्येक स्थानमें देवोंका परिमाण असंख्यात है, इसलिए वहाँ तक जहाँ जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है, उनकी अपेक्षा नारकियोंके समान भंग बननेमें कोई बाधा नहीं आती । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

३२१. एकेन्द्रिय, सब वनस्पति और निगोद जीवोंमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं । मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियजाति और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है ।

विशेषार्थ—ये मार्गणाएँ अनन्त संख्यावाली होकर भी इनमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले सर्वविशुद्ध जीव होते हैं, जिनका प्रमाण असंख्यातसे अधिक नहीं होता; क्योंकि एकेन्द्रियोंके सिवा शेष तिर्यञ्च ही असंख्यात हैं। इसलिए इनमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले संख्यात जीवोंको कारण जानना चाहिए । एकेन्द्रियोंमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र तथा अन्य प्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्वामित्वकी जो विशेषता कही है, उसके अनुसार यह प्रकरण द्रष्टव्य है । स्वामित्व सम्बन्धी कुछ अन्य विशेषताएँ भी ध्यान देने योग्य हैं ।

३२२. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके सातावेदनीय, तीन आयु, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार यह भङ्ग पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवों के जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीव मनुष्योंमें ही होते हैं, इसलिए इनमें उसके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं । शेष कथन सुगम है ।

---

१. ता० आ० प्रत्योः सादि० इति पाठः । २. आ० प्रतौ तित्थ० ड० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२३. ओरालियमि० दोआउ० एइंदियभंगो। देवगदिपंचग० उ० अणु० संखेँज्जा। सेसाणं उ० अणु० ओघं। एवं कम्मइग०-अणाहार०। वेउव्वि० देवोघं। एवं चेव वेउव्वियमिस्स०। णवरि तित्थ० उक्क० अणु० संखेँज्जा। आहार०-आहारमि० सव्वट्ठभंगो। एवं अवगद०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुम०।

३२४. आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक०-सत्तणोक०-मणुस०-ओरा०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-अप्पसत्थ०४-मणुसाणु०-उप०-अथिर-असुभ०-अजस०-पंचंत० उ० अणु० असंखेँज्जा। सेसाणं उ० संखेँज्जा। अणु० असंखेँज्जा। णवरि मणुसाउ०-आहारदुगं उ० अणु० संखेँज्जा। एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-वेदगस०-उवसम०। णवरि सव्वाणं मणुसाउ० उ० अणु० संखेँज्जा। खइगस० दोआउ० उ० अणु[1]० संखेँज्जा। उवसम० आहारदुगं तित्थ० उ०

३२३. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें दो आयुओंका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है। देवगतिपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव ओघके समान हैं। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है। इसी प्रकार अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जो सम्यग्दृष्टि देव और नारकी मर कर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, उनके अपर्याप्त अवस्थामें औदारिकमिश्रकाययोग होता है और ये जीव संख्यात होते हैं, इसलिए इस योगमें देवगतिपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं। इसी प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जो मनुष्य देवों और नारकियोंमें उत्पन्न होते हैं, उन्हींके वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है और ये जीव संख्यात होते हैं, इसलिए इस योगमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३२४. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक आंगोपांग, वज्रर्षभनराच संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायु और आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन सबमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें दो आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं तथा उपशमसम्यग्दृष्टि

१. आ० प्रतौ दोआउ० अणु० इति पाठः।

अणु० संखेंज्जा ।

३२५. संजदासंजदेसु सादादीणं उक्क० संखेंज्जा । अणु० असंखेंज्जा । तित्थ० मणुसि०भंगो । सेसाणं उ० अणु० असंखेंज्जा ।

३२६. किण्ण०-णील० चदुआउ०-वेउव्वियछ० ओघं । तित्थ० मणुसि०भंगो । सेसाणं उक्क० असंखेंज्जा । अणु० अणंता । एवं काऊए पि । णवरि तित्थ० उ० अणु० असंखेंज्जा ।

३२७. तेऊए सादादीणं तिण्णिआउ० देवगदिपसत्थाणं तित्थ० उच्चा० उ० संखेंज्जा । अणु० असंखेंज्जा । सेसाणं उ० अणु[1]० असंखेंज्जा० । एवं पम्माए । सुक्काए

जीवोंमें आहारकद्विक और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं ।

विशेषार्थ—गर्भज मनुष्य संख्यात हैं और इन्हींमें आहारकद्विकका बन्ध होता है, इसलिए आभिनिबोधिकज्ञानी आदिमें मनुष्यायु और आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं । आगे अवधिदर्शनी आदि मार्गणाओंमें भी इन प्रकृतियोंके सम्बन्ध में इसी प्रकार जानना चाहिए । मात्र क्षायिकसम्यक्त्वका प्रारम्भ मनुष्य करते हैं और ये ही चारों गतियोंमें उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें मनुष्यायुके समान देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं । तथा जो मनुष्य उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं या ऐसे जीव मर कर देव होते हैं,उनमेंसे ही तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले होते हैं,अन्य उपशमसम्यग्दृष्टि नहीं। अतः इनमें आहारकद्विकके समान तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं । शेष कथन सुगम है ।

३२५. संयतासंयत जीवोंमें सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं ।

विशेषार्थ—जो मनुष्य संयतासंयत होते हैं,उनमें ही कुछ तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करते हैं; अतः यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

३२६. कृष्ण और नील लेश्यामें चार आयु और वैक्रियिक छहका भङ्ग ओघके समान है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका भंग मनुष्यिनियोंके समान है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं । इसी प्रकार कापोत लेश्यामें भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं ।

विशेषार्थ—जो नारकी कृष्ण और नील लेश्यावाले होते हैं,उनमें नरकायु, देवायु और वैक्रियिक छहका बन्ध नहीं होता; इसलिए यह प्ररूपणा ओघके समान बन जाती है । तथा इन लेश्याओंमें नरकमें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता, अतः यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिका भंग मनुष्यिनियोंके समान कहा है । मात्र कापोत लेश्यामें नरकमें भी इसका बन्ध होता है, इसलिए इस लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात कहे हैं । शेष कथन सुगम है ।

३२७. पीतलेश्यामें सातावेदनीय, तीन आयु, देवगति आदि प्रशस्त प्रकृतियाँ तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात

---

१. ता० प्रतौ सेसाणं अणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खइगाणं पंचिंदियभंगो। दोआउ० मणुसि०भंगो। सेसाणं आणदभंगो। आहारदुगं ओघं।

३२८. अब्भवसि० णिरयाउ०-वेउ०छ० उ० अणु० असंखेंज्जा। तिण्णिआउ० ओघं। सेसाणं उ० असंखेंज्जा। अणु० अणंता। सासणे दोआउ० उ० संखेंज्जा। अणु० असंखेंज्जा। मणुसाउ० मणुसि०भंगो। सेसाणं उ० अणु० असंखेंज्जा। सम्मामि० सव्वपगदीणं उ० अणु० असंखेंज्जा। असण्णीसु दोआउ०-वेउव्वियछ० उ० अणु० असंखेंज्जा। मणुसाउ० ओघं। सेसाणं उ० असंखेंज्जा। अणु० अणंता।

एवं उक्कस्सं परिमाणं समत्तं[1]।

३२९. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० अणु० केंत्तिया? संखेंज्जा। अज० अणुभा० के०? अणंता। सादासाद०-तिरिक्खाउ०-मणुसगदि-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु[2]०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछ०-उच्चा०

हैं। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। शुक्ललेश्यामें क्षायिक प्रकृतियोंका भंग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। दो आयुओंका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भंग आनत कल्पके समान है। आहारकद्विकका भंग ओघके समान है।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यामें मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध असंयतसम्यग्दृष्टि देव और देवायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अप्रमत्तसंयत मनुष्य करता है। इसी प्रकार इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक भी संख्यात हैं, इसलिए इनका भंग मनुष्यिनियोंके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

३२८. अभव्योंमें, नरकायु और वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। तीन आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृयियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें दो आयुओंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। मनुष्यायुका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। असंज्ञी जीवोंमें दो आयु और वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। मनुष्यायुका भंग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाण समाप्त हुआ।

३२९. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव कितने हैं? अनन्त हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर

१. ता० प्रतौ एवं उक्कस्सं परिमाणं समत्तं इति पाठो नास्ति। २. ता० प्रतौ मणुसाउ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जं० अज० अणंता। इत्थि०-णवुंस०-तिरि०-पंचिंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरा०-अंगो०-पसत्थव०४-तिरिक्खाणु०-अगु०३-आदाउज्जो०-तस०४-णिमि०-णीचागो० ज० असंखेज्जा[2]। अज० अणंता। तिण्णिआउग०-वेउव्वियछ० ज० अज० असंखेज्जा[3]। आहारदुगं ज० अज० संखेज्जा। तित्थ० ज० संखेज्जा। अज० असंखेज्जा। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति। णवरि ओरालि० [तित्थ०] ज० अज० संखेज्जा।

आदि छह और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आंगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। तीन आयु और वैक्रियिक छहके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिमें से कुछ का जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख हुए मिथ्यादृष्टिके होता है। आठ कषायोंका जघन्य अनुभागबन्ध भी संयमके अभिमुख हुए अविरत-सम्यग्दृष्टि और संयतासंयतके होता है। अरति और शोकका जघन्य अनुभागबन्ध प्रमत्तसंयतके होता है। यतः इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं, अतः ये संख्यात कहे हैं। इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं, यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध चारों गतिके जीव करते हैं और तिर्यञ्चायु और तीन जातिका जघन्य अनुभागबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य तथा एकेन्द्रियजाति और स्थावरका जघन्य अनुभागबन्ध तीन गतिके जीव करते हैं। ये बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त कहे हैं। स्त्रीवेद आदिका जघन्य अनुभागबन्ध यथायोग्य संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव ही करते हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त कहे हैं। तीन आयु आदिके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव पञ्चेन्द्रिय हैं मात्र मनुष्यायुके विषयमें यह नियम नहीं है। पर मनुष्य असंख्यात होते हैं, इसलिए इनके बन्धक भी असंख्यात ही होंगे, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात कहे हैं। आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं, यह स्पष्ट ही है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभागबन्ध मनुष्य ही करते हैं, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात कहे हैं। यह ओघ प्ररूपणा काययोगी आदि मार्गणाओंमें घटित हो जाती है, इसलिए उनकी प्ररूपणा ओघके समान कही है। मात्र औदारिककाययोगमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध गर्भज मनुष्य

१. आ० प्रतौ थिरादिछ० उक्क० उच्चा० ज० इति पाठः। २. आ० प्रतौ संखेजा इति पाठः। ३. आ० प्रतौ ज० असंखेजा इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३०. णेरइग-सव्वदेवाणं ज० अज० उक्कस्सभंगो। तिरिक्खेसु सादादंडओ तिण्णिआउ०--वेउव्वियछ० ओघं। सेसाणं ज० असंखेॅज्जा। अज० अणंता। सव्व-पंचिंदिय तिरि० सव्वपग० ज० अज० असंखेॅज्जा। एवं सव्वअपज्ज०-सव्वविगलिंदि०-सव्वपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरपत्ते०।

३३१. मणुसेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-पंचिंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४–अगु०४–आदुज्जो०-तस०४–णिमि०--पंचंत० ज० संखेॅज्जा। अज० असंखेॅज्जा। सादासाद०--दोआउ०--दोगदि-चदुजा०-छस्संठा०-छस्संघ०--दोआणु०-दोविहा०--थावरादि०४–थिरादिछयु'०-दोगो० ज० अज० असंखेॅज्जा। दोआउ०-वेउव्वियछ०-आहारदुग-तित्थ० ज० अज० संखेॅज्जा²। मणुसज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपग० ज० अज० उक्कस्सभंगो।

३३२. एइंदिएसु तिरिक्ख-मणुसाउ०-तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० जह० अज० ओघं। सेसाणं ज० अज० अणंता। वणप्फदि-णियोदाणं मणुसाउ०-तिरिक्ख०-

ही करते हैं और वे संख्यात हैं, अतः इस योगमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं।

३३०. नारकियों और सब देवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान है। तिर्यञ्चोंमें सातावेदनीयदण्डक, तीन आयु और वैक्रियिकछहका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

३३१. मनुष्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु, दो गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल और दो गोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। दो आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भंग उत्कृष्टके समान है।

३३२. एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भंग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें मनुष्यायु, तिर्यञ्च-

१. ता० प्रतौ थावरादि० थिरादिछयु० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः असंखेज्जा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० अज० ओघं[1]। सेसाणं ज० अज० अणंता। पंचि०-तस०२ पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-तित्थय०-पंचंत० ज० संखेॅज्जा। अज० असंखेॅज्जा। आहारदुगं ओघं। सेसाणं ज० अज० असंखेॅज्जा। एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खु०-सण्णि त्ति।

३३३. ओरालियमि० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० संखेॅज्जा। अज० अणंता। मणुसाउ० ओघं। देवगदिपंचगस्स उक्कस्स-भंगो। सेसाणं ओरालियकायजोगिभंगो। वेउव्वि०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि० उक्कस्सभंगो। कम्मइ० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ-०सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०-पंचि०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरा०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-आदाउज्जो०-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० ज० असंखेॅ०। अज० अणंता। देवगदि-पंचगं उक्कस्सभंगो। सेसाणं सादादीणं ज० अज० अणंता[2]।

३३४. अवगद०-मणपज्जव०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप० उक्कस्सभंगो।

गति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भंग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। पञ्चेन्द्रिय,पञ्चेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। आहारकद्विकका भंग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

३३३. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। मनुष्यायुका भंग ओघके समान है। देवगतिपञ्चकका भंग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियोंका भंग औदारिककाययोगी जीवोंके समान है। वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें उत्कृष्टके समान भंग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आंगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। देवगतिपञ्चकका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष सातावेदनीय आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं।

३३४. अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

---

१. ता० प्रतौ -णियोदाणं मणुसाउ० ओघं इति पाठः। २. ता० प्रतौ ज० अणंता इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

३३५. मदि-सुद० पंचणाणावरणादिदंडओ सादादिदंडओ पंचिंदियदंडओ ओघं। णवरि अरदि-सोग ज० असंखेंज्जा। अज० अणंता। एवमसंजदा० मिच्छादिट्ठि त्ति। आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४—उप०-तित्थ०-पंचंत० ज० के०? संखेंज्जा। अज० असंखेंज्जा। मणुसाउ०-आहारदुगं उक्कस्सभंगो। सेसाणं ज० अज० असंखेंज्जा। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०। णवरि खइगे दोआउ०-आहारदुगं उक्कस्सभंगो। उवसम० तित्थ० उक्कस्सभंगो। संजदासंजदे तित्थ० मणुसि०भंगो। सेसाणं ओधिभंगो।

३३६. किण्ण०-णील०-काउ० तिरिक्खोघं। णवरि तित्थ० मणुसि०भंगो। काऊए णिरयभंगो। तेऊए पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४—उप०-पंचंत० ज० संखें०। अज० असंखें०। मणुसाउ०-आहारदुगं उक्कस्सभंगो। सेसाणं ज० अज० असंखें०। एवं पम्माए। सुक्काए खविगाणं संजमपाओग्गाणं ज० संखें०। अज० असंखें०। दोआउ०-आहारदुगं उक्कस्सभंगो। सेसाणं ज० अज० असंखें०।

---

३३५. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि दण्डक, सातावेदनीयदण्डक और पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अरति और शोकके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। इसी प्रकार असंयत और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्ध जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। मनुष्यायु और आहारकद्विकका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें दो आयु और आहारकद्विकका भंग उत्कृष्टके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भंग उत्कृष्टके समान है। संयतासंयत जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है।

३३६. कृष्ण, नील और कपोतलेश्यामें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। मात्र कापोतलेश्यामें नारकियोंके समान भंग है। पीत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। मनुष्यायु और आहारकद्विकका भंग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। शुक्ललेश्यामें क्षपक और संयमप्रायोग्य प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। दो आयु और आहारकद्विकका भंग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३७. अब्भवसि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०-पंचिंदियजादि--तिण्णसरीर--ओरा०अंगो०--पसत्थापसत्थ०४–तिरिक्खाणु०-अगु०४–आदाउज्जो०-तस०४–णिमि०-णीचा०-पंचंत० ज० असंखे०। अज० अणंता। सेसाणं ओघं। एवमसण्णि त्ति[1]। सासणे मणुसाउ० देवभंगो। सेसाणं ज० अज० असंखे०। सम्मामि० सव्वपग० ज० अज० असंखेज्जा। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं परिमाणं समत्तं[2]।

१६ खेत्तपरूवणा

३३८. खेत्तं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० तिण्णिआउ०-वेउव्वियछ०-आहारदुग-तित्थ० उक्क० अणुक्क० अणुभागबंध० केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। सेसाणं उ० अणुभा० केव०? लोगस्स असंखेज्ज०। अणुक्क० सव्वलोगे। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघो कायजोगि-ओरालि०--ओरालियमि०--कम्मइ०--णवुंस०--कोधादि०४--मदि०–सुद०--असंज०–

३३७. अभव्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मनुष्यायुका भंग देवोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—ओघसे सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव कितने हैं इसका स्पष्टीकरण किया ही है। उसी प्रकार अपने अपने स्वामित्वको ध्यानमें रखकर सब मार्गणाओंमें स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे अलग अलग स्पष्टीकरण नहीं किया है।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

१६ क्षेत्रप्ररूपणा

३३८. क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे तीन आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकका असंख्यातवाँ भाग क्षेत्र है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी,

१. आ० प्रतौ एवं सण्णि त्ति इति पाठः। २. ता० प्रतौ एवं परिमाणं समत्तं इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति।

३३९. एइंदि० पंचणा०-णवदंस०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०--सत्तणोक०-तिरिक्ख०--एइंदि०--हुंड०--अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--उप०-थावरादि४--अथिरादि-पंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० सव्वलोगे। दोआउ०-मणुस०--मणुसाणु०-उच्चा० ओघं। सेसाणं उ० लोग० संखे०, अणु० सव्वलोगे[1]।

क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शन, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नरकायु, देवायु और वैक्रियिक छहका असंज्ञी आदि, आहारकद्विकका अप्रमत्तसंयत और तीर्थंकरका सम्यग्दृष्टि जीव बन्ध करते हैं। इन जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेसे इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र उक्त प्रमाण कहा है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, इसलिए इनका क्षेत्र तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है ही, परन्तु मनुष्यायुके अनुत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीवोंका भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है, क्योंकि एकेन्द्रियादि सभी जीव इसका बन्ध करनेवाले होते हुए भी वे स्वल्प हैं। उन जीवोंके क्षेत्रका योग लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, इसलिए मनुष्यायुकी अपेक्षा भी यह क्षेत्र उक्त प्रमाण कहा है। अब रही शेष प्रकृतियाँ सो उनके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध सामान्यतः संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव करते हैं और इनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध एकेन्द्रियादि सभी जीव करते हैं, इसलिए यह सर्वलोक कहा है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ कही हैं, उनमें यह प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनको ओघके समान कहा है।

३३९. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भंग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अन्यतर यथायोग्य संक्लेश युक्त एकेन्द्रिय जीव करते हैं और ये सर्व लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सर्व लोक क्षेत्र कहा है। दो आयु, मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका भंग ओघके समान है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव हैं और इनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। ओघसे इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र उक्त प्रमाण ही कहा है। अब रहीं शेष प्रकृतियाँ सो उनमेंसे प्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव करते हैं और जो एकेन्द्रिय सम्बन्धी न होकर अन्य प्रकृतियाँ हैं, उनके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध अन्यतर करते हुए वे

१. ता० आ० प्रत्योः सव्वलोगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४०. बादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्ता० पंचणाणावरणादि याव अप्पसत्थाणं थावरपगदीणं उक्क० अणु० सव्वलो० । सादावे०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-पज्ज०-पत्ते०-थिर-सुभ०-णिमि० उ० लोग० संखें०, अणु० सव्वलो० । इत्थि०-पुरिस०-चदुजादि-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तस०-बादर०-सुभग०-दोसर०-आदेँज्ज०-जस० उ० अणु० लोग० संखें० । तिरिक्खाउ० उ० लोग० असंखें०, अणु० लोग० संखें० । मणुसाउ०-मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० अणु० लोग० असंखें । सव्वसुहुमाणं[1] तिरिक्ख०-मणुसाउ० ओघं । सेसाणं उ० अणु० सव्वलो० ।

३४१. पुढवि०-आउ०-तेउ० सव्वथावरपगदीणं[2] उ० लो० असंखें०, अणु० सव्वलो० । णवरि मणुसाउ० ओघं । बादरपुढवि०-आउ०-तेउ० पंचणा०--णवदंस०-सादासाद०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरि०-एइंदि०-ओरालि०--तेजा०--क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-

सब लोकमें नहीं पाये जाते, अतः उन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक कहा है। आगे अन्य मार्गणाओंमें जो क्षेत्र कहा है उसे इसी प्रकार स्वामित्वका विचार कर घटितकर लेना चाहिए। विचार करनेकी दिशाका ज्ञान इससे ही हो जाता है।

३४०. बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणसे लेकर अप्रशस्त स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, बादर, सुभग, दो स्वर, आदेय और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। सब सूक्ष्म जीवोंमें तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका भंग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है।

३४१. पृथिवीकायिक, जलकायिक और अग्निकायिक जीवोंमें सब स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भंग ओघके समान है। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर अग्निकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

१. आ० प्रतौ जस० उ० अणु० लोग० असंखे० सव्वसुहुमाणं इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः तेउ बादरपत्ते० सव्व- इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थिराथिर--सुभासुभ--दूभग--अणादें०-अजस०--णिमि०-णीचा०--पंचंत० उ० लोगस्स असंखेंज्जदिभागे। अणुकस्सं सव्वलोगे[1]। सेसाणं सव्वतसपगदीणं बादर-जसगित्ति-सहिदाणं उ० अणु० लो० असंखें०। बादरपुढ०-आउ०-तेउ०पज्जत्ता[2] पंचिं०तिरि०-अपज्ज०भंगो। बादरपुढ०--आउ०--तेउ०अपज्जत्त० पंचणा०--णवदंसणा०--असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०--एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि४--अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० सव्वलो०। सादा०-ओरालि०--तेजा०--क०--पसत्थ०४--अगु०३--पज्जत्त-पत्ते०--थिर०-सुभ०-णिमि० उ० लोग० असं०, अणु० सव्वलो०। सेसाणं तसपगदीणं बादर-जसगित्तिसहिदाणं उ० अणु० लो० असंखें०। वाऊणं पि तेउभंगो। णवरि यम्हि लोग० असंखें० तम्हि लोग० संखें०कादव्वं। णवरि बादरवाउ० आउ० बादरएइंदियभंगो।

३४२. वणप्फदि-णियोद० थावरपगदीणं अप्पसत्थाणं उ० अणु० सव्वलो०। सेसाणं सादादीणं तस-थावरपगदीणं उ० लो० असंखें०, अणु० सव्वलो०। मणुसाउ० ओघं। बादरवणप्फदि-बादरणियोद-पज्जत्तापज्जत्त० थावरपगदीणं अप्पसत्थाणं

अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। बादर और यशःकीर्ति सहित शेष सब त्रसप्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भंग है। बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त और बादर अग्निकायिक अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। बादर और यशःकीर्ति सहित शेष त्रस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। वायुकायिक जीवोंका भी अग्निकायिक जीवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है, वहाँ पर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक जीवों में आयुका भंग बादर एकेन्द्रियोंके समान है।

३४२. वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें अप्रशस्त स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। शेष सातावेदनीय आदि त्रस-स्थावर-प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। मनुष्यायुका भंग ओघके समान है। बादर

---

१. ता० आ० प्रत्योः सव्वलोगो इति पाठः। २. आ० प्रतौ तेउ० वाउ० पज्जत्ता इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ० अणु० सव्वलो० । सादा०-ओरा०--तेजइगादीणं थावरपगदीणं पसत्थाणं उ० लो० असंखे०, अणु० सव्वलो० । सेसाणं तसपगदीणं आदाउज्जो०-बादर-जसगित्ति-सहिदाणं उ० अणु० लो० असंखे० । बादरपत्ते० बादरपुढविभंगो । णेरइगादि याव सण्णि त्ति उक्क० अणु० लोग० असंखेज्जदि० ।

एवं उक्कस्सं समत्तं ।

३४३. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०--णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०--तेजा०-क०-ओरालि०-अंगो०--पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--अगु०४--आदाउज्जो०--तस०४--णिमि०--णीचा०-पंचंत० ज० अणुभागबंधगा केवडि खेत्ते ? लोग० असंखे० । अज० अणु० केव० ? सव्वलो० । सादासाद०-तिरिक्खाउ०-मणुस०-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थावरादि४--थिरादिछयुग०-उच्चा० ज० अज० सव्वलो० । तिण्णिआउ०-वेउव्वियछ०-आहारदुग-तित्थ० ज० अज० लो० असंखे० । एवं ओघभंगो कायजोगि--णवुंस०--कोधादि४--मदि०--सुद०--असंज०--अचक्खु०--किण्ण०-

---

वनस्पतिकायिक, बादर निगोद तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें अप्रशस्त स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर और तैजसशरीर आदि प्रशस्त स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। आतप, उद्योत, बादर और यशःकीर्ति सहित शेष त्रसप्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंका बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान भंग है। तथा नारकियोंसे लेकर संज्ञी तक अन्य जितनी मार्गणाएँ शेष रही हैं,उनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

इस प्रकार उत्कृष्ट क्षेत्र समाप्त हुआ।

३४३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है? सब लोक क्षेत्र है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। तीन आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०--आहारए त्ति। तिरिक्खोघं ओरा०--ओरालियमि०-णील०-काउ०-असण्णीसु च ओघं। णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० लो० संखे०, अज० सव्वलो०।

३४४. एइंदिएसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०-ओरालि०अंगो०--अप्पसत्थ०४--तिरक्खाणु०--उप०-आदाउज्जो०--[अप्पसत्थवि०-] णीचा०-पंचंत० ज० लो० संखे०, अज० सव्वलो०। सादासाद०--तिरिक्खाउ०-

और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। सामान्य तिर्यञ्च, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले और असंज्ञी जीवोंमें भी ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध या तो गुणस्थानप्रतिपन्न जीव करते हैं और जिन स्त्यानगृद्धि तीन आदिका मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं वे सब संज्ञी पञ्चेन्द्रिय ही होते हैं और ऐसे जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका क्षेत्र उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध एकेन्द्रिय आदि सब जीव करते हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध एकेन्द्रिय आदि चारों गतिके जीव करते हैं, अतः इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक कहा है। शेष रही तीसरे दण्डकमें कही गई तीन आयु आदि प्रकृतियाँ सो इनमेंसे मनुष्यायुके सिवा शेष प्रकृतियोंका बन्ध यथायोग्य पञ्चेन्द्रिय जीव ही करते हैं और मनुष्योंका प्रमाण असंख्यात होनेसे मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले जीव स्वल्प हैं, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ काययोगी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है। यद्यपि सामान्य तिर्यञ्च आदि मार्गणाओंमें भी यह ओघप्ररूपणा घटित हो जाती है और इसलिए उनकी प्ररूपणाको भी ओघके समान जाननेकी सूचना की है पर उनमें तिर्यञ्चगति आदि तीन प्रकृतियोंकी अपेक्षा कुछ विशेषता है। बात यह है कि ओघमें और काययोगी आदि मार्गणाओंमें तो तिर्यञ्चगति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ सातवें नरकका नारकी जीव करता है और सामान्य तिर्यञ्च आदि मार्गणाओंमें बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध करता है और बादर वायुकायिक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इन मार्गणाओंमें उक्त तीन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक कहा है।

३४४. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चगति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक

१. ता० प्रतौ तिरिक्खोघं ओरालियमि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुस०-पंचजादि-ओरालि०-तेजा०-क०-छस्संठा०-छस्संघ०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-[पसत्थवि०-] तसथावरादिदसयुग०-णिमि०-उच्चा० ज० अज० सव्वलो०। मणुसाउ० ज० अज० ओघं।

३४५. बादरपज्जत्त-[अपज्जत्त०] पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-णीचा०-पंचंत० ज० लो० संखे०, अज० सव्वलो०। सादासाद०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ-वण्ण४-अगु०३-थावर-सुहुम-पज्ज०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि० ज० अज० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-तिरिक्खाउ०-चदुजादि-पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तस०-बादर०-

---

है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल, निर्माण और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध बादर जीव करते हैं और इनका स्वस्थानकी अपेक्षा क्षेत्र लोकका संख्यातवाँ भागप्रमाण है और समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक क्षेत्र है। इसी विशेषताको ध्यानमें रखकर यहाँ क्षेत्र कहा है। जिन प्रकृतियोंका सर्वविशुद्ध और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामोंसे जघन्य अनुभागबन्ध होता है। या तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट परिणामोंसे जघन्य अनुभागबन्ध होकर भी जो प्रतिपक्ष प्रकृतियोंसे रहित हैं उनका जघन्य अनुभागबन्ध स्वस्थानमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक कहा है। मात्र परघात और उच्छ्वास इस नियमकी अपवाद प्रकृतियाँ हैं, क्योंकि उपघात अप्रशस्त प्रकृति है और ये प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका ग्रहण सातावेदनीय आदिके साथ होता है। अब रहीं शेष सातावेदनीय आदि उत्कृष्ट संक्लिष्ट या तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट परिणामों से बँधनेवाली प्रकृतियाँ सो इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र कहा है, क्योंकि इनका मारणान्तिक समुद्घातके समय भी जघन्य अनुभागबन्ध हो सकता है। मात्र दो आयुओंके विषय में स्वतन्त्ररूपसे विचार करना चाहिए। कारण स्पष्ट है। इसी प्रकार आगे भी स्वामित्वका विचार कर क्षेत्र घटित कर लेना चाहिए।

३४५. बादर तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, तिर्यञ्चआयु, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, बादर, सुभग, दो स्वर, आदेय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुभग०-दोसर०-आदें०-जस० ज० अजे० लोग० संखें०। मणुसाउ०-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० ज० अज० लो० असंखे०। सव्वसुहुमाणं सव्वपगदीणं ज० अज० सव्वलो०। णवरि मणुसाउ० ओघं।

३४६. पुढ०-आउ० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-आदाउज्जो०-णिमि०-पंचंत० ज० लो० असंखें०, अज० सव्वलो०। सादासाद०-तिरिक्खाउ०-दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तसादिदसयुगल-दोगो० ज० अज० सव्वलो०। मणुसाउ० [ज० अज० ओघं।] बादरपुढ०-आउ० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-णिमि०-पंचंत० ज० लो० असंखें०, अज० सव्वलो०। सादासाद०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर-सुहुम०-पज्ज०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णीचागो० ज० अज० सव्वलो०। सेसाणं ज० अज० लो० असंखें०। बादरपुढ०-आउ०पज्ज० मणुसअपज्जत्तभंगो। बादरपुढ०-आउ०अपज्ज० पंचणा०-

और यशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सब सूक्ष्म जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भंग ओघके समान है।

३४६. पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है। बादर पृथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और बादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंमें मनुष्य

१. आ० प्रतौ जस० अज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० लो० असं०, अज० सव्वलो०। सादासाद०-तिरि०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४-[तिरिक्खाणु०-]अगु०३-थावर-सुहुम-पज्ज०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०--मणुस०--चदुजा०-पंचसंठा०--ओरालि०अंगो०-छस्संघ०--मणुसाणु०--आदाउज्जो०--दोविहा०--तस--बादर-सुभग--दोसर-आदें०-जस०-उच्चा० ज० अज० लो० असंखे०। एवं बादरवणप्फदिका०-बादरणियोद-पज्जत्तापज्जत्त-बादरपत्तेयअपज्जत्ताणं च। तेउ० पुढविभंगो। णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० आभिणि०भंगो। एवं चेव वाउका०। णवरि यम्हि लोग० असंखें० तम्हि० लोग० संखेंज्जो कादव्वो।

३४७. वणप्फदि--णियोदेसु पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--णवणोक०-ओरालि०अंगो०-अप्पसत्थ०४-उप०-आदाउज्जो०-पंचंत० ज० लो० असंखें०, अज० सव्वलो०। सादासाद०-तिरिक्खाउ०-दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-तेजा०-क०-छस्संठा०-छस्संघ०-पसत्थव०४-दोआणु०-अगु०३-दोविहा०-तस०-थावरादिदसयुग०-

अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त और बादर जलकायिक अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, बादर, सुभग, दो स्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार बादर वनस्पतिकायिक और बादर निगोद तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। अग्निकायिक जीवोंमें पृथिवीकायिक जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार वायुकायिक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है वहाँ पर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहना चाहिए।

३४७. वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, आतप, उद्योत और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, छह

१. ता० आ० प्रत्योः अप्पसत्थ४ अगु३ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिमि०-दोगो० ज० अज० सव्वलो० । [मणुसाउ० ज० अज० ओघं ।] पत्तेय० बादरपुढविभंगो । कम्मइ० अणाहारए त्ति मूलोघं । सेसाणं णिरयादीणं याव सण्णि त्ति ज० अज० लोगस्स० असंखें० ।

एवं खेत्तं समत्तं[1] ।

३४८. फोसणं दुविहं-जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०--णवदंस०-असादा०--मिच्छ०--सोलसक०--पंचणोक०-तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणुभागबंधगेहि केवडि खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखें०, अट्ठ-तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा । अणुक्क० अणुभागबंध० के० फोसिदं० ? सव्वलोगो । सादा०-तिरिक्खाउ०-चदुजा०-तेजा०-[क०-] समचदु०--पसत्थ०४--अगु०३--उज्जो०-पसत्थ०--तस०४--थिरादिछ०--णिमि०-उच्चा० उ० लो० असंखें० । अणु० सव्वलो० । इत्थि०-पुरिस०--चदुसंठा०-पंचसंघ०--अप्पसत्थवि०-दुस्सर० उक्क० अणुभा० अट्ठ--बारह चोद्द० । अणु० सव्वलो० । हस्स-रदि

संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि दस युगल, निर्माण और दो गोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है । मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है । प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंका भङ्ग बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है । कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंका भङ्ग मूलोघके समान है । नरकगतिसे लेकर संज्ञी तक शेष मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ जितनी मार्गणाएँ कही हैं उन सबमें अपने अपने क्षेत्र और स्वामित्वका विचारकर अपनी अपनी प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र ले आना चाहिए ।

इस प्रकार क्षेत्र समाप्त हुआ ।

३४८. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सब लोकका स्पर्शन किया है । सातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, चार जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट

१. ता० प्रतौ एवं खेत्तं समत्तं इति पाठो नास्ति । २. ता० आ० प्रत्योः पंचसंठा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० अट्ठचों० सव्वलो० । अणु० सव्वलो० । णिरय-देवाउ०-आहारदुगं उक्क० अणु० लो० असंखें० । मणुसाउ० उ० लो० असंखें० । अणु० लो० असंखें० अट्ठ चों० सव्वलोगो वा । णिरयगदि--णिरयाणु० उ० अणु० लो० असंखें० छचोद० । मणुस०-ओरालि०--ओरालि०अंगो०--वज्जरि०--मणुसाणु०--आदाव० उ० लो० असंखें० अट्ठ चो० । अणु० सव्वलो० । देवग०-देवाणु० उ० खेत्तभंगो० । अणु० छचो० । एइंदि०-थावर० उ० अट्ठ-णवचों० । अणु० सव्वलो० । वेउव्वि०-वेउव्वि०-अंगो० उ० खेत्तभंगो । अणु० बारह चों० । सुहुम०-अप०-साधार० उ० लो० असंखें० सव्वलो० । अणु० सव्वलो० । तित्थ० उ० खेत्तभंगो । अणु० [लोग०] असंखें० अट्ठ चोद० ।

अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु और आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आतपके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे करते हैं। इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और वैक्रियिककाययोगमें विहारवत्स्वस्थान आदिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू है। इन सब अवस्थाओंमें इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव होनेसे इस अपेक्षा उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक है यह स्पष्ट ही है। दूसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय आदिका क्षपकश्रेणिमें, तिर्यञ्चायु और चार जातिका मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्यके तथा उद्योतका सातवें नरकके नारकीके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है। यतः इनका वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक है यह स्पष्ट ही है। आगे जिन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अतीत कालीन स्पर्शन सर्व लोक कहा है वहाँ भी उनका एकेन्द्रियादि चारों गतियोंमें बन्ध होता है इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है ऐसा समझना चाहिए। स्त्रीवेद आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय करते हैं, इसलिए वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहनेका कारण आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके ही समान है। कुछ कम बारह बटे चौदह राजू स्पर्शन कहनेका कारण यह है कि इन प्रकृतियोंका बन्ध उन्हीं जीवोंके होता है जो त्रससम्बन्धी प्रकृतियोंका ही बन्ध करते हैं। अतएव इनके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव ऊपर और नीचे कुछ कम छह छह राजू क्षेत्रका ही स्पर्शन कर सकते हैं जो कुछ कम बारह बटे चौदह राजू होता है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाणका और अतीत कालीन स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूका स्पष्टीकरण पहलेके ही समान है। हास्य और रतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चारों गतिके संज्ञी जीव करते हुए भी ऐसे मनुष्य और तिर्यञ्च भी करते हैं जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अतीत कालीन स्पर्शन सर्व लोक भी कहा है। आयुबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च व मनुष्योंका शेष स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है इसलिए नरकायु आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धके स्पर्शनका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध वैक्रियिक-काययोगके समय भी सम्भव है और मारणान्तिक समुद्घातको छोड़कर विहारादिके समय इसका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। जो मनुष्य नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं उनके भी नरकगतिद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू कहा है। इनका बन्ध असंज्ञी आदि ही करते हैं और नरकगतिके योग्य प्रकृतियोंका बन्ध होते समय ही होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका भी वही स्पर्शन कहा है। मनुष्यगति आदिका देव और नारकी तथा आतपका नारकियोंके सिवा शेष तीन गतिके जीव उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध करते हैं। उसमें भी मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले देव और नारकियोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता। इनके विहारादि शेष पदोंका स्पर्शन इतना ही है। हाँ जो देव विहारादि शेष पदोंसे युक्त हैं और इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहे हैं उनके कुछ कम आठ बटे चौदह राजू स्पर्शन पाया जाता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। एकेन्द्रिय जाति और स्थावरका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध देव करते हैं और देवोंका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। वैक्रियिकद्विकका उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४६. णेरइएसु साद०-पंचिं०-ओरा०-तेजा०-क०--समचदु०--ओरा०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थवण्ण०४--अगु०३--उज्जो०-पसत्थ०--तस०४--थिरादिछ०-णिमि० उ० खेत्तं०। अणु० छचोद्द०। दोआउ०-मणुसगदिदुग-तित्थ-उच्चा० उ० अणु० खेत्तभंगो। सेसाणं उ० अणु० छचो०। एवं सव्वणेरइगाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं।

३५०. तिरिक्खेसु पंचणा०--णवदंस०-सादासाद०--मिच्छ०-सोलसक०-पंच-

अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान और अतीत स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है और वैक्रियिकद्विकका बन्ध करनेवाले मनुष्य और तिर्यञ्च ऊपर व नीचे कुछ कम छह छह राजूका स्पर्शन करते हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजू कहा है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका देव और नारकी बन्ध नहीं करते। साथ ही एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले मनुष्य और तिर्यञ्चोंके भी इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोक कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान और अतीत स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा देवोंमें भी इसका बन्ध होता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत कालीन स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। प्रथमादि नरकोंमें और मारणान्तिक समुद्घातके समय इसका बन्ध होनेसे उक्त स्पर्शनमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

३४९. नारकियोंमें सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है। दो आयु, मनुष्यगतिद्विक, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है। इसी प्रकार सब नारकियोंके अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उद्योतके सिवा प्रथम दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि नारकी और उद्योतका सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ सातवें नरकका नारकी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम छह बटे चौदह राजू हैं यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगतिद्विक, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके बन्धक जीव मनुष्य लोकमें ही मारणान्तिक समुद्घात कर सकते हैं और दो आयुका मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, इसलिए उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू बन जाता है।

३५०. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णोक०-पंचिं०-तेजा०-क०-समचदु०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४–दोविहा०-तस०४-थिरादिछयु०-णिमि०-दोगो०-पंचंत० उ० छचोँद०। अणु० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-तिण्णिआउ०-मणुसग०-तिण्णिजा०-ओरा०-चदुसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाउज्जो० उ० अणु० खेत्तभंगो। हस्स-रदि-तिरिक्ख०-एइंदि०-तिरिक्खाणु'०-थावरादि०४ उ० लो० असं० सव्वलो०। अणुक० सव्वलो०। मणुसाउ० उ० खेत्तं। अणु० लो० असंखें० सव्वलोगो वा। णिरयगदि०-[-देवगदि०-] दोआणु० उ० अणु० छचों०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उ० छचों०। अणु० बारस०।

सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, दो विहायोगति, त्रस-चतुष्क, स्थिर आदि छह युगल, निर्माण, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, तीन आयु, मनुष्यगति, तीन जाति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उद्योतके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। हास्य, रति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति, देवगति और दो आनुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—प्रथमदण्डकमें कही गई प्रकृतियोंमेंसे पाँच ज्ञानावरणादिका संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव और सातावेदनीय आदिका संयतासंयत उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करते हैं, इस लिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू कहा है। मात्र मिथ्यादृष्टियोंका मारणान्तिक समुद्घात द्वारा नीचे छह राजू स्पर्शन कराके यह स्पर्शन लाना चाहिए। इनका बन्ध एकेन्द्रिय आदि सब जीव करते हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक स्पर्शन कहा है। स्त्रीवेद आदि सब प्रकृतियाँ त्रस और मनुष्यों सम्बन्धी हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। हास्य और रति आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवालेके भी होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोक कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय ही करते हैं, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है और मनुष्यायुका एकेन्द्रिय आदि सब जीव बन्ध करते हैं, इसलिए

१. ता० प्रतौ तिरिक्ख० एइंदि० तिरिक्ख० तिरिक्खाणु०, आ० प्रतौ तिरिक्ख० तिरिक्खाणु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५१. पंचिंदिय०तिरिक्ख०३ पंचणा०--णवदंस०--सादासाद०--मिच्छ०--सोलसक०-पंचणोक०-तेजा०-क०-हुंडसंठा०--पसत्थापसत्थ०४--अगु०४--पज्जत्त-पत्ते०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०--अजस०--णिमि०-णीचा०-पंचंत० उ० छ०। अणु० लो० असं० सव्वलो०। इत्थि० उ० खेंत्तभंगो। अणु० दिवड्ढचों०। पुरिस० उ० खेंत्त०। अणु० छचों०। हस्स-रदि-तिरि०-एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ उ० अणु० लो० असं० सव्वलो०। चदुआउ०-मणुसग०-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-ओरालि०-अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव० उ० अणु० खेंत्तभंगो। दोगदि-समचदु०-दोआणु०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदे०-उच्चा० उ० अणु० छ०। पंचिं०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-तस० उ० छ०। अणु० बारस०। ओरालि० उ० खेंत्त०। अणु० लो० असं० सव्वलो०।

इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। जो नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं, उनके नरकगतिद्विकका और जो देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं, उनके देवगतिद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम छहबटे चौदह राजु स्पर्शन कहा है। वैक्रियिकद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संयतासंयतके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छहबटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव मारणान्तिक समुद्घातके समय नीचे और ऊपर कुछ कम छह राजूका स्पर्शन करते हैं, इसलिए यह कुछ कम बारह राजू कहा है।

३५१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छहबटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेदके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छहबटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य, रति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चार आयु, मनुष्यगति, तीन जाति, चार संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आतपके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दो गति, समचतुरस्रसंस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके उत्कृष्ट

---

१. आ० प्रतौ अगु० पज्जत्त इति पाठः। २. आ० प्रतौ सव्वलो०। उक्को० उ० खेत्त०, अणु० छचो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उज्जो० उ० खेत्त० । अणु० लो० असंखे० सत्तचो० । बादर० उ० छचो० । अणु० तेरह० । जस० उ० छ० । अणु० सत्तचो० ।

अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और कुछ कम सात बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। यशस्कीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिके स्पर्शनका स्पष्टीकरण जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। मात्र इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सर्व लोक प्रमाण स्पर्शन एकेन्द्रियोंमें समुद्घात कराके लाना चाहिए। स्त्रीवेद और पुरुषवेद तिर्यञ्चादि तीन गति सम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा इन प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम डेढ़ राजू और कुछ कम छह राजू स्पर्शन देखा जाता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि यद्यपि मारणान्तिक समुद्घातके समय भी इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, पर देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय यह नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्पर्शन इस अपेक्षासे नहीं कहा है। हास्य और रति आदिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी होता है, इसलिए इनका दोनों प्रकारका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। चार आयुओंका मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध नहीं होता, और शेष प्रकृतियाँ मनुष्यों और त्रस तिर्यञ्चों सम्बन्धी हैं। एक आतप इसकी अपवाद है सो वह भी बादर पृथिवीकाय सम्बन्धी होकर भी प्रशस्त प्रकृति है, अतः इनका दोनों प्रकारका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवोंमें और नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करने वाले तिर्यञ्चोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू होता है, इसलिए दो गति आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है, क्योंकि यथायोग्य ऐसे समयमें इन प्रकृतियोंका दोनों प्रकारका बन्ध सम्भव है। जो संयतासंयत तिर्यञ्च देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं, उनके पञ्चेन्द्रियजाति आदिका उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध सम्भव है और जो देवों और नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं। उनके इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम छह बटे चौदह राजू और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम बारह बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन कहा है। औदारिकशरीरका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च करते हैं और ये एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा इसका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध उन जीवोंके भी होता है जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। उद्योतका

---

१. ता० प्रतौ छचो० अणु० जस० उ० खेत्तं तेरह० जस० उ० छ०, आ० प्रतौ छचो० अणु० तेरह० । जस० छ० इति पाठः ।

३५२. पंचिं०तिरि०अप०पंचणा०--णवदंस०--असादा०--मिच्छ०--सोलसक०-सत्तणोक०-तिरि०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि०४—अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० लो० असंखें० सव्वलो० । सादा०-ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०३—पज्जत्त-पत्ते०-थिर--सुभ--णिमि० उ० खेत्तं० । अणु० लो० असं० सव्वलो० । उज्जो०-बादर०-जस० उ० खेत्तं० । अणु० सत्तचोॅद्द० । सेसाणं उ० अणु० खेत्तभंगो । एवं सव्वअपज्ज०-सव्वविगलिंदि०--बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०--बादरवणप्फदिपत्ते०पज्ज० । णवरि बादरवाउ०पज्जत्त० जम्हि लोग० असं० तम्हि लोग० संखें० कादव्वा । णवरि आउ० वट्टमाणखेत्तं० ।

उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध तिर्यञ्चके होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । तथा प्रकृतिबन्धमें इसके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजू कहा है, वह ही यहाँ अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके बन जाता है । बादर व यशका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संयतासंयतके होता है, अतः इन दोनोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू कहा है तथा इनके बन्धक जीवोंका स्पर्शन प्रकृतिबन्धमें क्रमशः कुछ कम तेरह राजू व सात राजू कहा है, वह ही यहाँ अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धक जीवोंका स्पर्शन बतलाया है ।

३५२. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । उद्योत, बादर और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिकपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें जहाँ लोकका असंख्यातवाँ भागप्रमाण स्पर्शन कहा है, वहाँ लोकका संख्यातवाँ भागप्रमाण स्पर्शन कहना चाहिए । इतनी विशेषता है कि आयुका स्पर्शन वर्तमान क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है । उद्योत, बादर और यशस्कीर्ति प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका मारणान्तिक समुद्घातके समय उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नहीं होता । यही कारण है कि इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है ।

---

१. आ० प्रतौ तिरिक्खाणु० थावरादि४ इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५३. मणुस०३ पंचणा०-णवदंस०-दोवेदणी०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पज्ज०-पत्ते०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उ० खेंत्त०। अणु[1]० लो० असं० सव्वलो०। हस्स-रदि-तिरिक्ख०-एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ उ० अणु० लो० असं० सव्वलो०। उज्जो०-बादर-जस० उ० खेंत्तं०। अणु० सत्त चों०। सेसाणं उ० अणु० खेंत्तभं०।

३५४. देवेसु पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर-अथिरादिपंच०-

---

३५३. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य, रति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिक उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंके समय एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते, अन्यत्र यह स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है; क्योंकि मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा मनुष्योंका उक्त प्रमाण स्पर्शन उपलब्ध होता है। जो मनुष्य एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी हास्यादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। उद्योत आदि तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। मारणान्तिक समुद्घातके समय इनका ऐसे मनुष्य भी बन्ध करते हैं जो एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, पर ये एकेन्द्रिय जीव ऊपर सात राजूके भीतरके होने चाहिए, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजू कहा है। शेष जितनी प्रकृतियाँ बचती हैं वे सब त्रससम्बन्धी हैं, इसलिए उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

३५४. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी,

---

१. आ० प्रतौ खेस० अणु० खेत्तभंगो अणु० इति पाठः।

णीचा०-पंचंत० उ० अणु० लो० असंखे० अट्ठ-णव०। सादा०-ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-थिर-सुभ-जस०-णिमि० उ० अट्ठ०। अणुक० अट्ठ-णव०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-पंचिं०-पंचसंठा०-ओरालि०-अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसर-आदे०-तित्थ०-उच्चा० उ० अणु० अट्ठचो०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं कादव्वं।

३५५. एइंदिएसु पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि०४-अथिरादि-पंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० सव्वलो०। तिरिक्खाउ० ओघं। मणुसाउ० तिरि-

उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंके अपना-अपना स्पर्शन करना चाहिए।

विशेषार्थ—जो देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम आठ व नौ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि देव करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू कहनेका कारण स्पष्ट ही है, क्योंकि देवोंके इससे अधिक स्पर्शन नहीं उपलब्ध होता। स्त्रीवेद आदि कुछ त्रससम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं। इनमेंसे कुछका सम्यग्दृष्टि देव बन्ध करते हैं, आयुका मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध नहीं होता और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवालेके आतपका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। इन विशेषताओंके साथ सब देवोंके अपना-अपना स्पर्शन ले आना चाहिए।

३५५. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यञ्चायुका

१. आ० प्रतौ छस्संघ० आदा० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः मणुसाणु० इति पाठः।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

क्खोघं । मणुस०-मणुसाणु०--उच्चा० उ० अणु० खेत्त० । सेसाणं उ० लो० संखेंज्ज०, अणु० सव्वलो० ।

३५६. बादरपज्जत्तापज्ज० पंचणाणावरणादिथावरदंडओ एइंदियभंगो । एवं [अ] साददंडओ वि । दोआउ०-मणुस०३ उ० अणु० खेत्त० । णवरि तिरिक्खाउ० उ० अतीतं लोग० संखे० । उज्जो०-बादर०-जस० उ० खेत्त०, अणु० लो० संखे० सत्तचोद्द० । सेसाणं तसपगदीणं उ० अणु० लो० संखे० । सादादीणं उ० लो० संखेंज्ज०, अणु० सव्वलो० ।

भङ्ग ओघके समान है । मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय सब लोकमें हैं, इसलिए पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है । तिर्यञ्चायुका भङ्ग ओघके समान है और मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है, यह स्पष्ट ही है । मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त आदि जीव करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध यथायोग्य बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव भी करते हैं, अतः उनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कहा है ।

३५६. बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि स्थावर दण्डकका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है । इसी प्रकार असातावेदनीयदण्डकका भङ्ग भी जानना चाहिए । दो आयु और मनुष्यगतित्रिकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अतीत कालीन स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है । उद्योत, बादर और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम सात बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । शेष त्रस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—आयुकर्मका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता और बादर एकेन्द्रिय तथा उनके भेदोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनके तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अतीत कालीन स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है । उद्योत आदिका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, पर ऐसे जीव ऊपर सात राजूके भीतर ही मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है । शेष त्रस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५७. सव्वसुहुमाणं मणुसाउ० उ० अणु'० लो० असं० सव्वलो० । तिरिक्खाउ० उ० लो० असंखे० सव्वलो०, अणुक० सव्वलो० । सेसाणं उ० अणु० सव्वलो० ।

३५८. पंचिंदि०२ पंचणा०-णवदंस० [असादा०-] मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०--अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उ० अट्ठ--तेरह०, अणु० अट्ठ चोद्द० सव्वलो० । सादा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-पज्ज०-पत्ते०-थिर-सुभ-णिमि० उक्क० खेत्त०, अणु० अट्ठ चो० सव्वलो० । इत्थि०-पुरिस०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० अणु० अट्ठ-बारह० ।

समुद्घात करते हैं, उनके इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता । सातावेदनीय आदिका मारणान्तिक समुद्घातके समय भी अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

३५७. सब सूक्ष्म जीवोंमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है । तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्म जीवोंका सब लोक आवास है, इसलिए दो आयुओंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके स्पर्शनको छोड़कर शेष सब स्पर्शन सर्वलोक है,यह स्पष्ट ही है । रहीं दो आयु सो इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामों से होता है, और ऐसे परिणाम बहुत ही कम जीवों के होते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोक कहा है । तथा मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले जीव थोड़े ही होते हैं, क्योंकि मनुष्यों का प्रमाण भी स्वल्प है, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का वर्तमान स्पर्शन भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोक कहा है । परन्तु तिर्यञ्चायुका बन्ध करनेवाले अनन्त जीव होते हैं और ये वर्तमानमें भी सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का दोनों प्रकारका स्पर्शन सब लोक कहा है ।

३५८. पञ्चेन्द्रियद्विकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सातावेदनीय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायो-

---

१. आ० प्रतौ मणुसाउ० अणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्स-रदि उ० अणु० अट्ठ चो० सव्वलो०। दोआउ०-तिण्णिजा०-आहारदु० उ० अणु० खेत्त०। दोआउ०-तित्थ० उ० खेत्त०, [अणु०] अट्ठ चो०। णिरय० णिरयाणु० उ० अणु० छच्चो०। मणुस०--मणुसाणु०--आदाव०--उच्चा० [उ०] अणु'० अट्ठ०। देवग०--देवाणु० ओघं। एइंदि०--थावर० उ० अट्ठ--णव०, अणु० अट्ठ० सव्वलो०। पंचिंदि०-समचदु०-पसत्थवि०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदे० उ० खेत्त०, अणु० अट्ठ-बारह०। ओरा० उ० अट्ठ, अणु० अट्ठ० सव्वलो०। वेउव्वि०-वेउव्वि०-अंगो० ओघं। ओरालि०अंगो०-वज्जरि० उ० अट्ठ०, अणु० अट्ठ--बारह०। उज्जो०-बादर०-जस० उ० खेत०, अणु० अट्ठ--तेरह०। सुहुम-अपज्जत्त--साधार० उ० अणु० लो० असंखेज्जदि० सव्वलो०। एवं पंचिंदियभंगो तस०--तसपज्जत्त०--पंचमण०--पंचवचि०-चक्खु०-सण्णि त्ति।

गति और दुःस्वरके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति और आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दो आयु और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीका भङ्ग ओघके समान है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गका भङ्ग ओघके समान है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जीवोंके समान त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचन-

---

१. ता० आ० प्रत्योः आदाउजो० अणु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन जिस प्रकार ओघमें स्पष्ट कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। तथा पञ्चेन्द्रियद्विकका वेदनादि की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और मारणान्तिककी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। मात्र यहाँ सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन उपपादपदकी अपेक्षा कहना चाहिए। स्त्रीवेद आदिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका ओघसे जैसा स्पष्टीकरण किया है, उसी प्रकार यहाँ पर उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंकी अपेक्षा कर लेना चाहिए। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके भी हास्यद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सर्व लोकप्रमाण कहा है। तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध देवोंके कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते समय भी सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो नीचे नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं उनके भी नरकगतिद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। देवोंके विहारादिके समय मनुष्यगति आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी सम्भव है इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो देव ऊपर त्रसनालीके भीतर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके भी एकेन्द्रियजाति और स्थावरका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु कहा है। तथा सब एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके भी इनका बन्ध सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक कहा है। देवोंके विहारादिके समय और नीचे व ऊपर कुछ कम छह छह राजू प्रमाण क्षेत्रके भीतर समचतुरस्र आदिका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन कहा है। विहारादिके समय देवोंके औदारिक शरीरका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इसका सब एकेन्द्रियोंमें समुद्घात करनेवाले जीव भी बन्ध करते हैं, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण कहा है। विहारादिके समय देवोंके औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पष्टीकरण स्त्रीवेदके समान कर लेना चाहिए। उद्योत आदिका देवोंके विहारादिके समय और ऊपर सात राजु व नीचे छह राजूके भीतर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू-प्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रियद्विकका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा सब लोक प्रमाण स्पर्शन सम्भव है तथा ऐसी अवस्थामें सूक्ष्मादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५६. पुढ०-आउ० पंचणा०-णवदंस-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरि०-एइंदि०-हुंडसंठा०--अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--उप०-थावरादि०४--अथिरादि-पंच०-णीचा०-पंचंत० उ० लो० असं० सव्वलो०, अणु० सव्वलो०। सेसाणं उ० लो० असं०, अणु० सव्वलो०। णवरि मणुसाउ० तिरिक्खोघं।

३६०. बादरपुढ०--आउ० पंचणाणावरणादीणं थावरपगदीणं पुढविभंगो[1]। सादा०--ओरा०--तेजा०-क०-पसत्थ०४--अगु०३--पज्जत्त-पत्ते०-थिर--सुभ-णिमि० उ० खेत्त०, अणु० सव्वलो०। उज्जो०-बादर०-जस० उ० खेत्त०, अणु० सत्त चोद्द०। सेसाणं उ० अणु० खेत्तभंगो।

आगे त्रस आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें पञ्चेन्द्रियोंकी ही प्रधानता है, अतएव उनकी प्ररूपणा पञ्चेन्द्रियद्विकके समान जाननेकी सूचना की है।

३५६. पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध बादर पर्याप्त जीव करते हैं, किन्तु इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक है। इन दोनों अवस्थाओंमें पाँच ज्ञानावरणादि का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वत्र सम्भव है, क्योंकि पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव सर्वत्र उपलब्ध होते हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध एक तो मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, जिनका होता भी है वे द्वीन्द्रियादि तिर्यञ्च और मनुष्य सम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहनेका कारण यह है कि इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता। सामान्य तिर्यञ्चोंके यह इतना ही बतलाया है।

३६०. बादर पृथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण आदि और स्थावर प्रकृतियों का भङ्ग पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सर्वलोकका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशःकीर्ति के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका

---

१. ता० प्रतौ णाणावरणादीणं पुढविभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६१. बादरपुढ०-आउ०अपज्जत्तएसु पंचणा०-णवदंस०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०--तिरि०--एइंदि०--हुंड०संठा०--अप्पस०४--तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि०४--अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० सव्वलो० । सादा०-ओरा०-तेजा०--क०--पसत्थव०४--अगु०३--पज्जत्त--पत्ते०--थिर--सुभ--णिमि० उ० खेत्त०, अणु० सव्वलो० । उज्जो०-बादर०-जस० उ० खेत्त०, अणु० सत्त चों० । सेसाणं उ० अणु० खेत्तभंगो । एवं बादरवणप्फदि-पज्जत्तापज्जत्त-बादरणियोदपज्जत्तापज्जत्त-बादर-पत्ते०अपज्जत्तगाणं च । तेउ० पुढवि०भंगो । वाऊणं पि तं चेव । णवरि जम्हि लोग० असंखे० तम्हि लोग० संखेज्ज० कादव्वं । वणप्फदि-णियोद० णाणावरणादीणं थावर-पगदीणं उ०[1] अणु० सव्वलो० । सेसाणं उ० खेत्त०, अणु० सव्वलो० । मणुसाउ० एइंदियभंगो ।

स्पर्शन क्षेत्रके समान तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजु है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

३६१. बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त और बादर जलकायिक अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशस्कीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार बादर वनस्पतिकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर निगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त तथा बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। अग्निकायिक जीवोंका भङ्ग पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। वायुकायिक जीवोंका भी इसी प्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, वहाँ पर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण करना चाहिए। वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें ज्ञानावरणादि स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मात्र मनुष्यायुका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है।

विशेषार्थ—पहले एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें स्पर्शनका स्पष्टीकरण किया है। उसे देखकर यहाँ भी उसे घटित कर लेना चाहिए। मात्र यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन एक मात्र सर्व लोक कहा है सो वर्तमान स्पर्शनकी अविवक्षासे ही ऐसा कहा है, इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए। तथा इन जीवोंमें उद्योत, बादर और यशस्कीर्तिका बन्ध करनेवाले जीव त्रसनालीके भीतर ऊपर सात राजू तक ही मारणान्तिक

---

१. ता० प्रतौ णाणावरणादीणं उ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६२. कायजोगि०-कोधादि०४–अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति ओघभंगो। ओरालि० खइगाणं उ० मणुसभंगो। अणु० सेसाणं च उ० अणु० तिरिक्खोघं। ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४–तिरिक्खाणु०–उप०-थावरादि४–अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उ० लो० असंखें० सव्वलो०, अणु० सव्वलो०। सेसाणं[1] उ० खेत्त०, अणु० सव्वलो०। मणुसाउ० तिरिक्खोघं।

३६३. वेउव्वि० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरि०-हुंड[2]०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० अट्ठ-तेरह०। सादा०–ओरा०–तेजा०–क०–पसत्थ०४– अगु०३–बादर-पज्जत्त–पत्ते०-थिरादितिण्णि-णिमि० उ० अट्ठचों०, अणु० अट्ठ-तेरह०। इत्थि०–पुरिस०–चदुसंठा०

समुद्घात करते हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६२. काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें क्षायिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक और शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है और ये जीव सब लोकमें मारणान्तिक समुद्घात करते हुए पाये जाते हैं, इसलिए यह स्पर्शन सर्व लोक प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३६३. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर आदि तीन और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे

१. आ० प्रतौ लो० असंखे० सव्वलो० सेसाणं इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः तिरि० एइंदि० हुंड० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचसंघ०--अप्पसत्थ०--दुस्सर० उ० अणु० अट्ठ-बारह० । दोआउ०--मणुस०३--आदा०-तित्थ० उ० अणु० अट्ठ० । एइंदि०-थावर० उ० अणु० अट्ठ-णव० । पंचिं०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिस०-पसत्थ०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदें० उ० अट्ठ०, अणु० अट्ठ-बारह० । उज्जो० उ० खेत्तभंगो, अणु० अट्ठ-तेरह० ।

३६४. वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि० खेत्तभंगो । कम्मइय० पंचणा०-

चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगतित्रिक, आतप और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिकके समय सम्भव न होनेसे इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। शेष पूर्ववत् जानना चाहिए। स्त्रीवेद आदि एकेन्द्रियजाति सम्बन्धी प्रकृतियाँ नहीं हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू कहा है। कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन तिर्यञ्चोंमें देवों और नारकियोंका समुद्घात कराके ले आना चाहिए। दो आयु आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। जो देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, इनका स्पर्शन कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण उपलब्ध होता है और एकेन्द्रियजाति तथा स्थावरका मारणान्तिक समुद्घातके समय उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका और सब विचार स्त्रीवेददण्डकके समान है। मात्र मारणान्तिक समुद्घातके समय इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन मात्र कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सातवें नरकके नारकीके सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है।

३६४. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवदंस०-असादा०-मिच्छ०--सोलसक०--णवणोक०--तिरिक्ख०-पंचसंठा०-चदुसंघ०-अप्पसत्थ०४–तिरिक्खाणु०-उप०--अथिरादिपंचं०-णीचा०–पंचंत० उ० बारह०, अणु० सव्वलो० । सादा०-पंचिं०-तेजा०--क०-समचदु०--पसत्थव०४–अगु०३–पसत्थवि०-तस०४–थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० उ० छ०, अणु० सव्वलो० । मणुसगदिपंचग० उ० अणु० तं चेव । देवगदिपंचग० खेत्तभंगो । [एइंदिय०-थावर० उ० दिवड्ढचोंद्दस०, अणु० सव्वलो० । असंप०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उ० एक्कारस०, अणु० सव्वलो० ।] तिण्णिजादि-आदाउज्जो०-सुहुम-अपज्ज०-साधार० उ० खेत्तभं०, अणु० सव्वलो० ।

क्षेत्रके समान भङ्ग है । कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पूर्वोक्त ही है । देवगतिपञ्चकका भङ्ग क्षेत्रके समान है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीन जाति, आतप, उद्योत, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इन मार्गणाओंमें सब स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। जो चारों गति के संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव कार्मणकाययोगी होते हैं, उनके पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है और कार्मणकाययोगका स्पर्शन सब लोक है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। सम्यग्दृष्टि कार्मणकाययोगी जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण होनेसे सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण है,यह स्पष्ट ही है। मनुष्य-गतिपञ्चक का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि देव और नारकी करते हैं, इसलिए इनका भङ्ग सातावेदनीयके समान ही कहा है। देवगतिचतुष्कका सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य तथा तीर्थङ्कर का तीन गतिके सम्यग्दृष्टि जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं। तथा देवगतिचतुष्कका बन्ध असंज्ञी आदि और तीर्थङ्कर प्रकृतिका तीन गतिके संज्ञी जीव बन्ध करते हैं। ऐसे जीवोंका यदि

१. ता० प्रतौ पंचणा० असादा० इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः पंचसंघ० इति पाठः । ३. ता० आ० प्रत्योः उप० अप्पसत्थ० अथिरादिपंच० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६५. इत्थिवे० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अट्ठ-तेरह०, अणु० अट्ठचों० सव्वलो०। सादा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-पज्ज०-पत्ते०-थिर-सुभ-णिमि० उ० खेत्तभंगो, अणु० अट्ठ० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-मणुस०-चदुसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु[1]०-आदाव० उ० अणु० अट्ठ०। हस्स-रदि उ० अणु० अट्ठ० सव्वलो०। दोआउ०-तिण्णिजादि-आहारदुग-तित्थय० उक्क० अणु० खेत्त-भंगो। दोआउ०-समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० उ० खेत्तभंगो, अणु० अट्ठ०। णिरयगदिदुग० उ० अणु० छच्चों०। तिरि०-एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावर० उ० अट्ठ-णव०, अणु० अट्ठ० सव्वलो०। देवगदिदुग० उ० खेत्त०, अणु० छच्चों०।

स्पर्शनका विचार करते हैं तो वह सब क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध ऐशान कल्पतकके देव करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनु-भागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक है, यह स्पष्ट ही है। असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन आदि तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नारकी और सहस्रार कल्प तकके देव करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन नीचे छह और ऊपर पाँच इस प्रकार कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पूर्ववत् सब लोक कहा है। तीन जाति आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जो स्पर्शन कहा है, वह स्पष्ट ही है।

३६५. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, मनुष्यगति, चार संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आतपके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दो आयु, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगतिद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावरके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट

---

१. आ० प्रतौ मणुसाउ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिं०-तस० उ० खेत्त०, अणु० अट्ठ-बारह० । ओरालि० उ० अट्ठ०, अणु० अट्ठचो० सव्वलो०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उ० खेत्त०, अणु० बारह० । उज्जो०-जस० उ० खेत्त०, अणु० अट्ठ-णव० । णवरि उज्जो० उ० अट्ठ० । अप्पस०-दुस्सर० उ० छ०, अणु० अट्ठ-बारह० । बादर० उ० खेत्त०, अणु० अट्ठ-तेरह० । सुहुम०-अपज्ज०-साधार० उ० अणु० लो० असं० सव्वलो० । एवं पुरिसेसु । णवरि तित्थ० उ० अणु० ओघं ।

अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिद्विकके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसके उत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके उत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशस्कीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन ओघके समान है।

विशेषार्थ—देवियाँ विहारादिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करती हैं। यद्यपि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी और मनुष्यिनी मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन करती हैं, परन्तु पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट बन्धके समय यदि मारणान्तिक समुद्घात होता है, तो वह त्रस नालीके भीतर नीचे छह राजू और ऊपर सात राजू इस प्रकार कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू प्रमाण ही होता है। यही सब देखकर यहाँ इन प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा है। स्पर्शनका उक्त विधिसे निर्देश मूलमें ही किया है। सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके समान ही घटित कर लेना चाहिए। जो तिर्यञ्चगति आदि तीनमें उत्पन्न होते हैं, उन्हींके स्त्रीवेद आदिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध सम्भव है और ऐसे स्त्रीवेदी जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण होता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए स्त्रीवेद आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो सर्वत्र एकेन्द्रियोंमें भी उत्पन्न होते हैं, उनके भी हास्य और रतिका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं, उनके दो आयु और समचतुरस्र संस्थान आदि प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं, उनके भी नरकगतिद्विकका दोनों प्रकार का अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह राजूप्रमाण कहा है। यद्यपि स्त्रियाँ छठे नरक तक ही जाती हैं, ऐसा आगम-वचन है, पर यह नियम योनि-कुचवाली स्त्रियोंके लिए ही है। जिनके स्त्रीवेदका उदय है और जो योनि-कुचवाली नहीं हैं अर्थात् जो स्त्रीवेदके उदयके साथ द्रव्यसे पुरुष हैं, उनका गमन सातवें नरक तक सम्भव है, यह इस स्पर्शन नियमसे सिद्ध होता है। इतना ही नहीं, इससे द्रव्यवेद और भाववेदका जो वैषम्य माना जाता है, उसकी भी सिद्धि होती है। जो त्रसनालीके भीतर ऊपर एकेन्द्रियोंमें समुद्घात करते हैं, उनके भी तिर्यञ्चगति आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है; इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके स्पर्शनका स्पष्टीकरण पाँच ज्ञानावरण आदिके समान कर लेना चाहिए। जो तिर्यञ्च और मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं, उनके भी देवगतिद्विकका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो नीचे छह और ऊपर छह, इस प्रकार कुछ कम बारह राजूप्रमाण क्षेत्रका मारणान्तिक समुद्घातके समय स्पर्शन कर रहे हैं, उनके भी पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसप्रकृतिका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके औदारिकशरीरका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नहीं होता, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। परन्तु एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय इसका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिके समान कहा है। जो देवों और नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उन मनुष्य और तिर्यञ्चोंके वैक्रियिकद्विकका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। जो एकेन्द्रियोंमें त्रसनालीके भीतर समुद्घात करते हैं, उनके उद्योत और यशस्कीर्तिका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मात्र उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य तिर्यञ्च आदि तीन गतिके जीव करते हैं, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पञ्चेन्द्रियजातिके समान घटित कर लेना चाहिए। जो नीचे छह और ऊपर सात इस प्रकार कुछ कम तेरह राजूका मारणान्तिक समुद्घातके समय स्पर्शन करते हैं, उनके भी बादर प्रकृति का बन्ध होता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६६. णवुंसग० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०[1]-तिरिक्ख०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उ० छचो०, अणु० सव्वलो०। सादा०-तिरिक्खाउग०-मणुस० चदुजा०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-आदाउ०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० उ० खेत्त०, अणु० सव्वलो०।[हस्स-रदि० उ० छचो० सव्वलो०,अणु० सव्वलो०।] दोआउ०-वेउव्वियछ०-आहारदुगं ओघं। मणुसाउ० तिरिक्खोघो। [एइंदिय-थावरादि४ तिरिक्खोघं।] तित्थय० इत्थिभंगो।

कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो तिर्यञ्च और मनुष्य एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी सूक्ष्मादिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। पुरुषवेदी जीवोंमें भी यह स्पर्शन प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनमें स्त्रीवेदी जीवोंके समान कहा है। मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिकी अपेक्षा कुछ विशेषता है। बात यह है कि पुरुषवेदी देव भी तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करते हैं और इनका विहारादिकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू होनेसे पुरुषवेदी जीवोंके तीर्थङ्कर प्रकृतिकी अपेक्षा यह स्पर्शन भी पाया जाता है। इसलिए यह स्पर्शन ओघके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६६. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, वैक्रियिक छह और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। एकेन्द्रियजाति और स्थावर आदि चारका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—नपुंसकोंमें तीन गतिके संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं। इनका अतीत स्पर्शन उत्कृष्ट या तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट परिणामोंके समय कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा नपुंसकवेदी सब लोकमें पाये जाते

१. ता० आ० प्रत्योः सोलसक० पंचणोक० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः अथिरादिपंच णीचुचा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६७. मदि०--सुद० ओघं। णवरि देवगदिदुगं उ० खेंत्त०, अणु० पंच चोंद्द०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उ० खेंत्तभंगो, अणु० एँक्कारह०। विभंगे० पंचिंदियभंगो। णवरि देवगदिचदुक्क० मदि०भंगो।

३६८. आभिणि-सुद०-ओधि० पंचणा०--छदंसणा०-असादा०-बारसक०-सत्तणोक०-मणुसगदिपंच०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ--अजस०-पंचंत० उ० अणु० अट्ठ०। एवं मणुसाउ०। सादा०-पंचिं०--तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-

हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इनके अनुत्कृष्टके समान सातावेदनीय आदि, हास्य, रति और एकेन्द्रियजाति आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक प्रमाण स्पर्शन जान लेना चाहिए। सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। हास्य और रतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नारकियोंके तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें तथा तिर्यञ्चों और मनुष्योंके एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेके समय भी होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चों और मनुष्योंके नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी जानना चाहिए, इसलिए इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम छह बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। एकेन्द्रिय जाति आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य तो करते ही हैं, साथ ही ये जब एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं तब भी होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६७. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ओघके समान स्पर्शन है। इतनी विशेषता है कि देवगतिद्विकके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पञ्चेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—जो मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य बारहवें कल्प तक समुद्घात करते हैं, उनके देवगतिद्विकका बन्ध होता है। यद्यपि मनुष्य मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक तक उत्पन्न होते हैं पर उससे इस स्पर्शनमें अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि उनका प्रमाण संख्यात है और ऐसे जीवोंका कुल स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए यहाँ देवगतिद्विकके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा वैक्रियिकद्विकका नीचे छह राजू और ऊपर पाँच राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंके बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, मनुष्यगति पञ्चक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार मनुष्यायुकी अपेक्षासे स्पर्शन जानना चाहिए। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उ० खेत्तभं०, अणु० अट्ठ० । देवाउ०-आहारदुगं ओघं । देवगदि०४ उ० खेत्त०, अणु० छ० । एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि० । णवरि खइग०-उवसम०-सम्मामिच्छा० देवग०४ खेत्तभंगो । उवसम० तित्थय० खेत्तभंगो ।

३६६. अवगद०-मणपज्ज०-संज०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप० खेत्तभंगो । संजदासंज० हस्स-रदि० उ० अणु० छ० । देवाउ० तित्थय० उ० अणु० खेत्त० । सेसाणं उ० खेत्त०, अणु० छच्चों० । असंजद० ओघं ।

शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रका भङ्ग क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है । देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें देवगतिचतुष्कका भङ्ग क्षेत्रके समान है । तथा उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए चारों गतिके जीव करते हैं । उसमें भी हास्य और रतिका तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामोंसे स्वस्थानमें और मनुष्यगतिपञ्चकका देव और नारकी जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं । इनमेंसे तीन गतिके जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और देवोंका कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण होता है। सब मिलाकर यह स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण ही है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है और इसी कारणसे इनके तथा सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्तप्रमाण स्पर्शन कहा है । सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं । इसलिए देवगति चतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्तप्रमाण स्पर्शन कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है । यहाँ अवधिदर्शनी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको आभिनिबोधिकज्ञानी आदिके समान कहा है । मात्र क्षायिकसम्यग्दृष्टि आदि तीन मार्गणाओंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है, इसलिए इनमें देवगति चतुष्कका भङ्ग क्षेत्रके समान कहा है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहनेका भी यही कारण है ।

३६६. अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें क्षेत्रके समान भङ्ग है । संयतासंयत जीवोंमें हास्य और रतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । असंयत जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७०. किण्णे०-णील०--काउ० पंचणा०--णवदंस०--असादा०-मिच्छ०-सोलसक०--सत्तणोक०--तिरिक्ख०--पंचसंठा०--पंचसंघ०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उ० छच्चों० चत्तारि-बेचोद्द०, अणु० सव्वलो०। सादा०-तिरिक्खाउ०-मणुसग०--चदुजा०-ओरा०-तेजा०--क०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०--पसत्थ०४--मणुसाणु०--अगु० ३--आदाउ०--पसत्थ०--तस०४--थिरादिछ०--णिमि०-उच्चा० उ० खेत्तभंगो। अणु० सव्वलो०। हस्स-रदि-एइंदि०-थावरादि०४ उ० लो० असंखे० सव्वलो०, अणु० सव्वलो०। णवरि-णील-काऊणं हस्स-रदि० असादभंगो[1]। [णिरयाउ-] देवाउ०-देवगदि० [२-] तित्थ० खेत्तभंगो। मणुसाउ० णवुंसगभंगो। णिरय०-णिरयाणु० उ० अणु० छ-चत्तारि-बेचोद्द०। वेउव्वि०-वेउव्वि०-अंगो० उ० खेत्तभंगो। अणु० छ-चत्तारि-बेचों०।

विशेषार्थ—संयतासंयत जीवोंका मारणान्तिक समुद्‌घातकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन होता है। हास्यद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध तथा देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा शेष प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध ऐसी अवस्थामें सम्भव है, अतः हास्यद्विकके दोनों प्रकारके अनुभागके और शेष प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

३७०. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम दो बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक है। हास्य, रति, एकेन्द्रियजाति और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि नील और कापोत लेश्यामें हास्य और रतिका भङ्ग असातावेदनीयके समान है। नरकायु, देवायु, देवगतिद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम दो बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम दो बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

१. ता० आ० प्रत्योः असंजद० ओघं। चक्खु० तसभंगो। किण्णा० इति पाठः। २. ता० प्रतौ हस्सरदि ४ असादभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७१. तेऊए[1] पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्ख०-उप०-थावर-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० अट्ठ-णव० । सादा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-थिर-सुभ-जस०-णिमि० उ० खेत्त०, अणु० अट्ठ-णव० । इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०२-चदुसंठा[2]०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-आदा०-अप्पसत्थ०-दुस्सर[3]० उ० अणु०

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके स्वामीको देखनेसे विदित होता है कि इन लेश्याओंमें परस्पर तीन गतिके संज्ञी जीवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके यथायोग्य उक्त प्रकृष्ट अनुभागबन्ध होता है और इस दृष्टिसे इन लेश्याओंका क्रमसे स्पर्शन कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो बटे चौदह राजूप्रमाण है, अतः यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। तथा एकेन्द्रियोंके भी तीनों लेश्याएँ होती हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध सम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है। मात्र तिर्यञ्चायु, आतप और उद्योत इसके अपवाद हैं सो इनका मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध नहीं होता, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन ज्ञानावरणादिके समान समझ लेना चाहिए। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी हास्य आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्वलोक प्रमाण कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सर्वलोक प्रमाण स्पर्शन है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ इतनी विशेषता है कि नील और कापोतलेश्यामें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी हास्य और रतिका नारकी जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं, इसलिए इन दो प्रकृतियोंकी अपेक्षा असाता-वेदनीयके समान स्पर्शन बन जाता है। वैसे सामान्य नारकियोंमें इन दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू बतला आये हैं। पर यहाँ कृष्ण लेश्यामें यह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्यों रहने दिया गया है, यह अवश्य ही विचारणीय है। जो तिर्यञ्च और मनुष्य नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं, उनके नरकगतिद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। इसी प्रकार वैक्रियिकद्विकके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन भी घटित कर लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

३७१. पीत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह-कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्या-नुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनु-त्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगतिद्विक, चार संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, अप्रशस्त

१. आ० प्रतौ छ-चत्तारि तेउए इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः मणुस० ४ चदुसंठा० इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः अप्पसत्थ४ दुस्सर० इति पाठः।

अट्ठचों० । देवाउ०-आहारदुगं ओघं । देवगदि०४ उ० खेत्त०, अणु० दिवड्ढचोंद्द० । पंचिं०-समचदु०-पसत्थ०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदें०-तित्थय०-उच्चा० उ० खेत्तभंगो[1] । अणु० अणुभा० अट्ठ० । ओरा०-उज्जो० उ० अट्ठ चों०, अणु० अट्ठ-णवे०[2] । एवं पम्माए वि । णवरि अट्ठ चों० । देवगदि०४ अणु० पंच चों० ।

विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीर और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहना चाहिए। तथा देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादि का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध ऐशान कल्पतकके देव करते हैं और मारणान्तिक समुद्घातके समय भी इनका बन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अप्रमत्तसंयत जीव करते हैं, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्रके समान स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार अन्य प्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागबन्धके विषयमें जानना चाहिए। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिके समान है, यह स्पष्ट ही है। जो देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके स्त्रीवेद आदिका बन्ध नहीं होता, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। देवायु और आहारकद्विक का भङ्ग ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। जो देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी देवगतिचतुष्कका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके पञ्चेन्द्रियजाति आदिका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। औदारिकशरीरका सम्यग्दृष्टि देव और उद्योतका तत्प्रायोग्य विशुद्ध देव उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है और इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू कहा है। पद्मलेश्यामें मरकर देव एकेन्द्रिय नहीं होता, इसलिए इसमें कुछ कम आठ बटे व नौ बटे चौदह राजूके स्थानमें केवल कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है।

---

१. आ० प्रतौ० उच्चा० खेत्तभंगो इति पाठः। २. ता० प्रतौ अट्ठचो० अट्ठ-णव० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७२. सुक्काए पढमदंडओ उ० अणु० छच्चो०। खविगाणं उक्क० खेत्त०, अणु० छच्चो०। देवाउ०-आहारदुग० खेत्त०।

३७३. अब्भवसि० पढमदंडओ मदि०भंगो। सादा०-पंचिंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० उ० अट्ठ-बारह०, अणु० सव्वलो०। मणुस०-मणुसाणु०-आदाउज्जो०

मात्र पद्मलेश्यामें मारणान्तिक समुद्घातद्वारा तिर्यञ्च और मनुष्य कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं, इसलिए इस लेश्यामें देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। इस लेश्यामें शेष सब प्ररूपणा पीतलेश्याके समान है। मात्र यहाँ अपनी प्रकृतियाँ कहनी चाहिए।

३७२. शुक्ललेश्यामें प्रथम दण्डकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। क्षपक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यामें कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन है, क्योंकि आनतादि-देवोंका मेरुके मूलसे नीचे गमन नहीं होता। यहाँ पर प्रथम दण्डकमें ये प्रकृतियाँ ली गई हैं—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशः-कीर्ति नीचगोत्र और पाँच अन्तराय। क्षपक प्रकृतियाँ ये हैं—सातावेदनीय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय-जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थंकर और उच्चगोत्र। यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध देवोंके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। क्षपक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है और इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध देव भी करते हैं। मात्र देवगतिचतुष्कका बन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, सो देवोंमें मरणान्तिक समुद्घात करनेवाले इनका भी स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण उपलब्ध होता है। देवोंका तो इतना है ही, इसलिए इन सब क्षपक प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है।

३७३. अभव्योंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक-आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रस-चतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उज्जो० उ० अट्ठ०, अणु० सव्वलो०। देवगदिदुग० उक्क० अणु० पंचचों०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उ० पंचचों०, अणु० एक्कारह०। णिरयगदिदुगं ओघं। अथवा सव्वाणं मदिअण्णाणिभंगो कादव्वो।

२७४. सासणे पंचणा०--णवदंसणा०--असादा०--सोलसक०--अट्ठणोक०--तिरिक्ख०-चदुसंठा०-चदुसंघ०--अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--उप०--अप्पसत्थ०--अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उ०[अणु०] अट्ठ-बारह०। सादा०-पंचिंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४--अगु०३--पसत्थवि०-तस०४--थिरादिछ०-णिमि० उ० अट्ठ०, अणु० अट्ठ-बारह०। देवाउ० ओघं। दोआउ० उ० खेत्त०, अणु०

आतप, उद्योत और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगतिद्विकका भङ्ग ओघके समान है। अथवा सब प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान करना चाहिए।

विशेषार्थ—जो ऊपर छह और नीचे छह इस प्रकार कुछ कम बारह बटे चौदह राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, ऐसे जीवोंके भी सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है। देवोंके विहारादिके समय तो हो ही सकता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। मात्र मनुष्यगति आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कई कारणोंसे कुछ कम बारह बटे चौदह राजू नहीं प्राप्त होता, इसलिए यह कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इन सातावेदनीय आदि और मनुष्यगति आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। जो तिर्यञ्च और मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके देवगतिद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है; इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार वैक्रियिकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन घटित कर लेना चाहिये। मात्र इसमें नीचेका कुछ कम छह राजू स्पर्शन मिलाने पर कुछ कम ग्यारहबटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन वैक्रियिकद्विकके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका होता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२७४. सासादनमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, सोलह कषाय, आठ नोकषाय, तिर्यञ्चगति, चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और

१. ता० प्रतौ आदा० उज्जो० उ० अट्ठ, आ० प्रतौ० आदाउज्जो० उ० अट्ठ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठ० । मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० उं० अणु० अट्ठचों० । देवगदि०४ उ० अणु० पंचचों० । उज्जो० उ० खेत्त०, अणु० अट्ठ-बारह० । मिच्छादिट्ठी० मदि०भंगो ।

३७५. असण्णीसु[1] पंचणा०-णवदंस०-दोवेदणी०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०-मणुस०-चदुजा०-ओरा०-तेजा०-क०-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-आदाउज्जो०-दोविहा०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-दोगो०-पंचंत० उ० लो० असंखे०, अणु० सव्वलो० । हस्स-रदि०-

अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायुका भङ्ग ओघके समान है। दो आयुओंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सासादनसम्यक्त्वका विहार आदिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन है। प्रथम दण्डककी प्रकृतियोंके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका यह दोनों प्रकारका स्पर्शन सम्भव है और सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समय कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन सम्भव नहीं है, इसलिए इन बातोंको ध्यानमें रखकर इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध विहारादिके समय सर्वत्र सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। इसी प्रकार मनुष्यगति आदि तीनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू जानना चाहिए। देवगतिचतुष्कका बन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। उद्योतका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

३७५. असंज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके

१. आ० प्रतौ मणुसाणु० उ० इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः मदि०भंगो । सण्णी पंचदिय-भंगो । असण्णीसु इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्ख०--एइंदि०--तिरिक्खाणु०--थावरादि०४--[अथिरादिछ०] उ० लो० असं० सव्वलो०, अणु० सव्वलो०। दोआउ०-वेउव्वियछ० उ० अणु० खेत्तभंगो। मणुसाउ० तिरिक्खोघं। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं उक्कस्सफोसणं समत्तं।

३७६. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०--अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--उप०-णीचा०--पंचंत० जहण्णं अणुभागं बंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोग० असंखे०, अज० सव्वलो०। सादासाद०-तिरिक्खाउ०-मणुस०--चदुजा०--छस्संठा०--छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-

---

असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य, रति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि छहके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका व अन्य सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अपने-अपने योग्य परिणामोंके साथ असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव करते हैं। उसमें भी प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है। अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और अतीत कालीन स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। इन सबका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध एकेन्द्रिय जीव भी करते हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। नरकायु, देवायु और वैक्रियिकछहका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय ही करते हैं और ऐसे जीवोंका उनका बन्ध करते समय एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात नहीं होता, इसलिए इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मनुष्यायुका भङ्ग स्पष्ट ही है। संसारी जीवोंके अनाहारक अवस्था कार्मणकाययोगके समय होती है, इसलिए अनाहारकोंकी प्ररूपणा कार्मणकाययोगी जीवोंके समान कही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्शन समाप्त हुआ।

३७६. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थावर०४-थिरादिछयुगं०-उच्चा० ज० अज० सव्वलो०। इत्थि-णवुंस० ज० अट्ठ-बारह०, अज० सव्वलो०। दोआउ०-आहारदुग० ज० अज० खेत्तभंगो। मणुसाउ० ज० लो० असंखे० सव्वलो०, अज० अट्ठ० सव्वलो०। णिरय०-णिरयाणु० ज० अज० छच्चो०। देवग०-देवाणु० जह० दिवड्ढचोद्द०, अथवा पंचचो०, अज० छच्चो०। पंचिं०-ओरा०-अंगो०-तस० जह० अट्ठ-बारह०, अज० सव्वलो०। ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० ज० अट्ठ-तेरह०, अज० सव्वलो०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० [ज०] छच्चोद्द०, अज० बारहचो०। आदाव० ज० अट्ठ०, अज० सव्वलो०। तित्थ० ज० खेत्तं०, अज० अट्ठ०।

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावरचतुष्क, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सबलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजू अथवा कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आतपके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ वैक्रियिक छह, आहारकद्विक, नरकायु व देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध एकेन्द्रिय जीव नहीं करते। इनके सिवा सब प्रकृतियोंका बन्ध एकेन्द्रिय जीव करते हैं, इसलिए उन सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक कहा है। इसके सिवा

1. आ० प्रतौ थावर० थिरादिछयुग० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहाँ जो विशेषता होगी, वह उस उस प्रकृतिके निरूपणके समय कहेंगे। अब रहा जघन्य अनुभाग-बन्धका विचार, सो प्रथक दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध जिनके होता है, उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध यथासम्भव चार, तीन या दो गतिके जीव मध्यम परिणामोंसे करते हैं। इनका स्पर्शन सर्व लोक होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागबन्ध चारों गतिके संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव करते हैं, किन्तु यह बन्ध करते समय एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात नहीं होता। यथासम्भव अन्यत्र भी नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। नरकायु, देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। मनुष्यायुका जघन्य अनुभागबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य करते हुए भी एकेन्द्रिय जीव भी करते हैं, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। तथा देव भी विहारादिके समय इसका अजघन्य अनुभागबन्ध करते हैं, इसलिए इसके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण अलगसे बतलाया है। तिर्यञ्च और मनुष्य मारणान्तिक समुद्घातके समय भी नरकगतिद्विकका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध करते हैं, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। ऐशान कल्प तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्यञ्च और मनुष्यके देवगतिद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है; ऐसा मानने पर इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजू प्रमाण प्राप्त होता है और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके भी यह जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, ऐसा मानने पर इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। इनका अजघन्य अनुभागबन्ध करनेवाले जीव सर्वार्थसिद्धि तक मारणान्तिक समुद्घात करते हैं और इनका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूसे अधिक नहीं है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो पञ्चेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी पञ्चेन्द्रियजाति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो देव बादर एकेन्द्रियोंमें ऊपर सात राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी औदारिकशरीर आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो तिर्यञ्च और मनुष्य नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी वैक्रियिकद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध होता है। तथा देव और नारकियोंमें समुद्घात करते समय इनका अजघन्य अनुभागबन्ध भी होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। ऐशान तकके देवोंके विहारादिके समय भी आतपका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए मनुष्य असंयत सम्यग्दृष्टि करते हैं, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है और तिर्यञ्चोंके सिवा तीनों गतिके जीवोंके यथायोग्य इसका बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७७. णिरएसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--उप०--णीचा०--पंचंत० ज० खेँत्त०, अज० छचों० । दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस-पंचिं०-ओरालि०-तेजा०-क०-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ० पसत्थ०४[1]-अगु०३-[उज्जो०-] दोविहा०-तस०४-थिरादिछयु०-णिमि[3]० ज० अज० छ० । दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-तित्थ०-उच्चा० ज० अज० खेँत्त० । एवं सत्तमाए पुढवीए । छसु उवरिमासु एसेव भंगो । णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० साद-भंगो । एवं अप्पप्पणो रज्जू भाणिदव्वं । इत्थि०-णवुंस० ज० खेँत्त० ।

३७८. तिरिक्खेसु पंचणा०--छदंस०-अट्ठक०--सत्तणोक०--पंचिं०--तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-[अगुरु०४-]तस०४-णिमि०-पंचंत० ज० छ०, अज० सव्वलो० ।

३७७. नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिक-आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह युगल और निर्माणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्य-गति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तीर्थंङ्कर और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। पहलेकी छह पृथिवियों में यही स्पर्शन जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार अपनी-अपनी रज्जु कहना चाहिए। तथा इनमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—सामान्य नारकियोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण है, इसलिए यहाँ कुछ प्रकृतियोंके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है और सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भी उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। मात्र पाँच ज्ञानावरणादिके जघन्य अनुभागबन्धके स्वामीको तथा दो आयु आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके स्वामीको देखते हुए यह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिए यह क्षेत्रके समान कहा है। प्रथमादि पृथिवियोंमें अपना-अपना स्पर्शन समझ कर सब प्ररूपणा इसी प्रकार कहनी चाहिए। केवल तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध इन पृथिवियोंमें मिथ्यादृष्टि नारकी परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे करते हैं। अतः यहाँ इनका भङ्ग सातावेदनीयके समान कहा है।

३७८. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय-जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रस-चतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह

१. ता० प्रतौ तेजाक० छस्संठा० तेजाक० छस्संठा० (?) आ० प्रतौ तेजाक० पंचसंठा० इति पाठः । २. ता०आ०प्रत्योः अप्पसत्थ०४ इति पाठः । ३. ता०आ०प्रत्योः थिरादिछ० णिमि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थीणगिद्धि०३–मिच्छ०–अट्ठक०–णवुंस०–ओरा०अंगो०–आदाव०[1] ज० खेत्तभंगो। अज० सव्वलो०। सादादंडओ ओघो। इत्थि० ज० दिवड्ढ०, अज० सव्वलो०। दोआउ०-वेउव्वियछ० ओघं। मणुसाउ० ज० अज० लो० असंखे० सव्वलो०। ओरा० ज० लो० असंखे० सव्वलो०, अज० सव्वलो०। तिरिक्ख०[2]-तिरिक्खाणु०-णीचा० खेत्तभंगो। उ० ज० सत्तचोद्द०, अज० सव्वलो०।

राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, आठ कषाय, नपुंसकवेद, औदारिकआङ्गोपाङ्ग और आतपके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और वैक्रियिकछहका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग क्षेत्रके समान है। उद्योतके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण होनेसे यहाँ एकेन्द्रियोंमें बँधनेवाली प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कहा है। जहाँ विशेषता होगी उसे अलगसे कहेंगे। नारकियोंमें और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके भी स्वामित्वके अनुसार पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्त्यानगृद्धि आदिका जघन्य अनुभागबन्ध पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके स्वस्थानमें ही सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाले तिर्यञ्चोंके ऐशान कल्प तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करना सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मनुष्यायुका जघन्य अनुभागबन्ध एकेन्द्रिय जीव भी करते हैं। किन्तु इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है और अतीत स्पर्शन सब लोक प्रमाण है। इसके अजघन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा भी यही स्पर्शन जानना चाहिए। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी औदारिकशरीरका जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तिर्यञ्च-गतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान लोकके संख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। जो ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी उद्योतका जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

---

1. आ० प्रतौ आदाउ० इति पाठः। 2. आ० प्रतौ असंखे० सव्वलो० तिरिक्ख० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७६. पंचिंदि०तिरिक्ख०३ पंचणा०-छदंसणा०--अट्ठक०-छण्णोक०-तेजा०-क०--पसत्थापस०४-अगु०४-पज्ज०-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० ज० छ०, अज० लो० असं० सव्वलो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अट्ठक०-णवुंस० ज० खेत्त०, अज० लो० असं० सव्वलो० । सादासाद०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरा०--हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावरादि४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग०-अणादें०-अजस०-णीचा० ज० अज० लो० असं० सव्वलो० । इत्थि० ज० अज० दिवड्ढ० । पुरिस०-णिरय०--णिरयाणु०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० ज० अज० छचों० । चदुआउ०-मणुस०--तिण्णिजा०--[चदुसंठा०-] ओरा०अंगो०[1]--छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव० ज० अज० खेत्त० । देवग०--समचदु०-देवाणु०-पसत्थ०-सुभग०--सुस्सर[2]-आदें०--उच्चा० ज० पंच चो०, अज० छचो० । पंचिंदि०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-तस० ज० छ०, अज० बारह० । उज्जो०-जसगि० ज० अज० सत्तचो० । बादर० ज० छ०, अज० तेरह० ।

३७६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, छह नोकषाय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धितीन, मिथ्यात्व, आठ कषाय और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चार आयु, मनुष्यगति, तीन जाति, चार संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आतपके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग और त्रसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

१. ता०आ०प्रत्योः अगु०३ इति पाठः। २. ता०आ०प्रत्योः चदुआदि ओरा०अंगो० इति पाठः। ३. आ०प्रतौ पसत्थ० सुस्सर० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८०. पंचिं०तिरिक्खअपज्जत्तएसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० लो० असं० सव्वलो०। सादासाद०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०३-थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-थिराथिर०-सुभासुभ-दूभग-अणादे०-अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० लो० असं० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-

---

विशेषार्थ—प्रथम दण्डककी प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकका स्वस्थान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करने पर सब लोकप्रमाण है। पाँच ज्ञानावरणादिके अजघन्य अनुभागबन्धके समय उक्त स्पर्शन सम्भव है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। आगे भी जिन प्रकृतियोंका जघन्य या अजघन्य यह स्पर्शन कहा हो, उसे इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। स्त्यानगृद्धि तीन आदिका जघन्य अनुभागबन्ध स्वस्थानमें ही सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। ऐशान कल्पतकको देवियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी स्त्रीवेदका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्यञ्चोंके पुरुषवेदका और नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्यञ्चोंके नरकगति आदिका दोनों प्रकारका अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। सहस्रारकल्पतकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्यञ्चोंके देवगति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध और आगे तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्यञ्चोंके देवगति आदिका अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक तिर्यञ्चोंके क्रमसे कुछ कम पाँच और कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले पञ्चेन्द्रियजाति आदिका जघन्य तथा नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवालेके इनका अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजू व कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। ऊपरके बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवालेके उद्योत और यशःकीर्तिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। नारकियोंमें और नारक व देवोंके साथ ऊपरके बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्यञ्चोंके क्रमसे बादर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक तिर्यञ्चोंका स्पर्शन क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजू व तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३८०. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्रके जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुस०-चदुजा०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०--मणुसाणु०-आदाव०-दोविहा०-तस०-सुभग²-दोसर०--आदें०--उच्चा० ज० अज० लो० असं० । उज्जो०--बादर-जस० जह० अज० सत्तचो० । एवं सव्वअपज्जत्तगाणं सव्वविगलिंदियाणं बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-पत्ते०पज्जत्ताणं च । णवरि बादरवाऊणं यम्हि लो० असंखें० तम्हि लो० असंखेंज्ज० कादव्वो ।

३८१. मणुस०३ पंचणा०-णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०-सत्तणोक०--तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४—पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० लो० असं० सव्वलो० । सादासाददंडओ पंचिंदियतिरिक्खभंगो । उज्जो० ज० अजं³ सत्त

और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, वहाँ वायुकायिक जीवोंके लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध संज्ञी जीव सर्वविशुद्ध या तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामोंसे करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंका स्वस्थान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शन सर्वलोकप्रमाण है। पाँच ज्ञानावरणादिका अजघन्य अनुभागबन्ध इनके हो सकता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंके जघन्य या अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है, वहाँ भी ऐसा ही जानना चाहिए। स्त्रीवेद आदि ऐसी प्रकृतियाँ हैं जो अधिकतर त्रसादिसम्बन्धी हैं, आयुका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय होता नहीं और आतप एकेन्द्रियसम्बन्धी होकर भी उसका उदय बादर पर्याप्त पृथिवीकायिक जीवोंमें होता है, इसलिए इन सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। जो ऊपर सात राजूके भीतर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी उद्योत आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है; इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३८१. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय और असातावेदनीयदण्डकका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय

१. ता०आ०प्रत्योः मणुस०३ चदुजा० इति पाठः। २. ता०आ०प्रत्योः तस४ सुभग इति पाठः। ३. ता० प्रतौ ज० ज० अज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोॅ० । बादरजहण्णं खेॅत्तभंगो । अज० सत्तचोॅ० । सेसाणं ज० अज० खेॅत्तभंगो ।

३८२. देवेसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ४-उप०-पंचंत० ज० अट्ठ०, अज० अट्ठ-णव० । सादासाद०-तिरिक्ख०-एइंदिय०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०३-उज्जो०-थावर-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादेॅ०-जस०-अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० अट्ठ-णव०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-पंचिं०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-मणु-साणु०-आदाव०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसर०-आदेॅ०-तित्थ०-उच्चा० ज० अज० अट्ठ० । एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं ।

तिर्यञ्चोंके समान है । उद्योतके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । बादरके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्र-का स्पर्शन किया है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध जो जीव करते हैं, उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । तथा उक्त मनुष्योंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन मारणान्तिक समु-द्घातकी अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण होनेसे उक्त प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है । जो ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके उद्योतके जघन्य और अजघन्य अनुभागका बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है । बादरके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

३८२. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड-संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायो-गति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब देवोंके अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें समुद्घात करते समय पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभाग

---

१. आ० प्रतौ अप्पसत्थ० उप० इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

३८३. एइंदिएसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०-ओरा०-अंगो[1]०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-आदा०-णीचा०-पंचंत० ज० लो० संखें०, अज० सव्वलो०। दोवेदणीय०-तिरिक्खाउ०-मणुस०-पंचजा०-ओरा०-तेजा०-क०-छस्संठा०-छस्संघ०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-दोविहा०-तस०थावरादि-दसयुग०- [णिमि०-] उच्चा० ज० अज० सव्वलो०। मणुसाउ० तिरिक्खोघं। उज्जो० जं० सत्तचोॅद्द०, अज० सव्वलो०।

३८४. बादरपज्जत्तापज्जत्त० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-णीचा०-पंचंत० ज० लो० संखें०, अज० सव्वलो०। सादासाद०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४-अगु०३-

---

बन्ध, और स्त्रीवेद आदिका दोनों प्रकारका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी पाँच ज्ञानावरणादिका अजघन्य अनुभागबन्ध और सातावेदनीय आदिका दोनों प्रकारका अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३८३. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चगति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, आतप, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल, निर्माण और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। उद्योतके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध बादर एकेन्द्रिय जीव सर्वविशुद्ध परिणामोंसे करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है। एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक प्रमाण स्पर्शन कहा है। दो वेदनीय आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध सबके होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

३८४. बादर पर्याप्त और अपर्याप्त एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड-

---

१. आ० प्रतौ तिरिक्ख० ओरालि० ओरा०अंगो० इति पाठः। २. ता०आ०प्रत्योः उज्जो० जस० ज० इति पाठः।

थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार०--थिराथिर-सुभासुभ--दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि० ज० अज० सव्वलो० । इत्थि०--पुरिस०--तिरिक्खाउ०--चदुजा०--पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-आदाव०--दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदें० ज० अज० लो० संखें० । मणुसाउ०-मणुस०३ ज० अज० लो० असं० । [उज्जो०-बादर-जस० ज० अज० सत्तचो० ।] सव्वसुहुमाणं सव्वपगदीणं ज० अज० सव्वलो० । मणुसाउ० ज० अज० लो असं० सव्वलो० ।

३८५. पंचिं०२ पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-छण्णोक०--तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--उप०--णीचा०--पंचंत० [ज०] खेत्त०, अज० अट्ठ० सव्वलो० । सादासाद०--एइंदि०-हुंड०-थावर०--थिराथिर--सुभासुभ--दूभग--अणादें०-

संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, तिर्यञ्चायु, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायु और मनुष्यगतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सब सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—इन जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण है। इसलिए इस स्पर्शन और स्वामित्वको ध्यानमें रखकर यहाँ सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा गया है। विशेषताका स्पष्टीकरण अनेक बार कर आये हैं। इन जीवोंके उच्चगोत्रका बन्ध मनुष्यगति आदिके साथ ही सम्भव है, और मनुष्यायु आदिके बन्धक जीवोंका स्पर्शन हर अवस्थामें लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। उद्योत आदिका बन्ध या तो स्वस्थानमें होता है या ऊपर सात राजूके भीतर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। सूक्ष्म जीव सर्वत्र होते हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले सूक्ष्म जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है।

३८५. पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, छह नोकषाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, स्थावर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजस० ज० अज० अट्ठ'० सव्वलो० । इत्थि०--पंचिंदि०--पंचसंठा०--ओरा०अंगो०-छस्संघ०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसर०-आदे०ं ज० अज० अट्ठ-बारह० । पुरिस० ज० खेत्त०, अज० अट्ठ-बारह० । णवुंस० ज० अट्ठ-बारह०, अज० अट्ठ० सव्वलो० । दोआउ०-तिण्णिजादि-आहारदु० ज० अज० खेत्त० । दोआउ०-तित्थ० ज० खेत्त०, अज० अट्ठ० । णिरय०-णिरयाणु० ज० अज० छ० । मणुसग०-मणुसाणु०-आदाव०-[उच्चा०] ज० अज० अट्ठ० । देवग०-देवाणु० ज० पंचचो०, अज० छचो० । ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थव०४-अगु०३-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० ज० अट्ठ-तेरह०, अज० अट्ठ० सव्वलो० । [वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ओघं ।] उज्जो०-बादर०-जस० ज० अज० अट्ठ-तेरह० । सुहुम-अपज्ज०-साधार० जं० अज० लो० असंखे० सव्वलो० । एवं तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-चक्खु०-सण्णि त्ति ।

स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्रीवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पुरुषवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो आयु, तीन जाति और आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दो आयु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गका भङ्ग ओघके समान है । उद्योत, बादर और यशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए ।

१. ता० प्रतौ ज० अट्ठ इति पाठः । २. ता० प्रतौ अपज्ज० सादा० ज० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८६. पुढवि०--आउ० पंचणा०--णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०--णवणोक०-ओरा०अंगो०-अप्पसत्थ०४--उप०-आदाव०-पंचंत० ज० लो० असं०, अज० सव्वलो०।

विशेषार्थ—जो पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध करते हैं, उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिए यह क्षेत्रके समान कहा है। तथा इनका स्वस्थान विहारादिके समय और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण कहा है। आगे जहाँ भी कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है, वह इस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। स्त्रीवेद आदिका स्वस्थान विहारादिके समय तथा नीचे छह व ऊपर छह इस प्रकार मारणान्तिक समुद्घात द्वारा कुछ कम बारह राजूका स्पर्शन करते समय जघन्य व अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य व अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। पुरुषवेदका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। इसके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंके स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूका खुलासा पहले कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी व आगे भी जानना चाहिए। तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु व तीर्थङ्कर प्रकृतिका अजघन्य अनुभागबन्ध स्वस्थान विहारादिके समय सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। यद्यपि तीर्थङ्कर प्रकृतिका अजघन्य अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, पर इस कारण स्पर्शनमें अन्तर नहीं पड़ता। मनुष्यगति आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी नरकगतिद्विकका जघन्य व अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य व अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। जो सहस्रार कल्पतक देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी देवगतिद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध होता है और इनमें व इनसे ऊपरके देवोंमें भी मारणान्तिक समुद्घात करनेवालोंके इनका अजघन्य अनुभागबन्ध होता है, अतः इनके जघन्य व अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्रमसे कुछ कम पाँच बटे चौदह राजू और कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। विहारादिके समय तथा नीचे छह राजू और ऊपर सात राजू कुल कुछ कम तेरह राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके औदारिकशरीर आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिये इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम तेरह बटे राजूप्रमाण कहा है। इसी प्रकार उद्योत आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। स्वस्थानमें व एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी सूक्ष्म आदिका दोनों प्रकारका अनुभागबन्ध सम्भव है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। शेष जो स्पर्शन स्पष्ट नहीं किया है, उसे पूर्वापर देखकर व स्वामित्व देखकर समझ लेना चाहिए। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह स्पर्शन अविकल घटित हो जाता है, इसलिए उनमें पञ्चेन्द्रियद्विकके समान कहा है।

३८६. पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, आतप और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादासाद०-तिरिक्खाउ०-दोगदि०-पंचजा०--छस्संठा०-छस्संघ०--दोआणु०--दोविहा०-तसथावरादिदसयुग०-दोगो० ज० अज० सव्वलो० । मणुसाउ० तिरिक्खोघं । ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-णिमि० ज० लो० असं० सव्वलो०, अज० सव्वलो० । उज्जो°० ज० सत्तचो°, अज० सव्वलो० ।

३८७. बादरपुढ०-आउ० पंचणा०-णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०--सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो० । सादासाद०--तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-सुहुम०-पज्ज०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग--अणादे०--अजस०--णीचा० ज० अज० सव्वलो० । इत्थि०-पुरिस०-

किया है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और दो गोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—उक्त बादर जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और ये जीव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध करते नहीं, अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिका सब पृथिवी और जलकायिक जीव जघन्य अनुभागबन्ध करते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। औदारिकशरीर आदिका अजघन्य अनुभागबन्ध करते हुए भी एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। जो ऊपर सात राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके उद्योतका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है; अतः इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनमें पाँच ज्ञानावरणादि सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। मनुष्यायुका भङ्ग स्पष्ट ही है।

३८७. बादर पृथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद,

१. ता० प्रतौ असं सव्वलो० उज्जो० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोआउ०-मणुसग०-चदुजा०-पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसर०-आदे०-उच्चा० ज० अज० लो० असं। ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-णिमि० ज० लो० असं० सव्वलो०, अज० सव्वलो०। उज्जो०-बादर-जस० ज० अज० सत्तचो०।

३८८. बादरपुढ०-[आउ०] अपज्ज० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो०। दोवेद०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४-[तिरिक्खाणु०-] अगु०३-

दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—बादर पृथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध नहीं करते, मात्र अजघन्य अनुभागबन्धके होनेमें कोई बाधा नहीं है। अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्रमसे लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है। अतः इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। स्त्रीवेद आदि प्रायः त्रस सम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं। दो आयुका मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध नहीं होता और बादर पृथिवीकायिक जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके ही मारणान्तिक समुद्घातके समय आतपका बन्ध होता है। इसलिए इन स्त्रीवेद आदि प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। औदारिकशरीर आदिका स्वस्थानमें और मारणान्तिक समुद्घातके समय दोनों अवस्थाओंमें जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है। अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। उद्योत आदिका स्वस्थान आदिमें और ऊपर सात राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करनेकी अवस्थामें भी दोनों प्रकारका अनुभागबन्ध सम्भव है। अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है।

३८८. बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त और बादर जलकायिक अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानु-

१. ता० प्रतौ जस० अज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थावरादि०४–पज्ज०–पत्ते०–थिराथिर–सुभासुभ–दूभग०–अणादें०–अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-चदुजा०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०–छस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस०–सुभग-दोसर०-आदें०-उच्चा० ज० अज० लो० असं०। उज्जो०-बादर०-जस० मणुस०अपज्ज०भंगो। एवं तेउ०-वाऊणं पि। णवरि वाऊणं बादरएइंदियभंगो कादव्वो।

३८६. वणप्फदि-णियोद० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-अप्पसत्थ०४–उप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो०। मणुसाउ० तिरिक्खोघं। सेसाणं ज० अज० सव्वलो०। बादरणियोद–पज्जत्तापज्जत्त–बादरपत्ते०अपज्जत्ताणं च बादरपुढविअपज्जत्तभंगो। बादरपत्तेय० बादरपुढविभंगो।

३६०. कायजोगि०-कोधादि०४–अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति ओघभंगो।

पूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, स्थावर आदि चार, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशःकीर्तिका भङ्ग मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके भी कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वायुकायिक जीवोंके बादर एकेन्द्रियोंके समान स्पर्शन करना चाहिए।

विशेषार्थ—बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और बादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंके जिस प्रकार स्पष्टीकरण कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। जो विशेषता कही है, उसे समझ लेना चाहिए।

३८६. वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त और बादर प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवोंका भङ्ग बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवोंके समान है, तथा बादर प्रत्येकशरीर जीवोंका भङ्ग बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें बादर जीव पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध करते हुए भी सब एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय नहीं करते। अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६०. काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें

१. ता० प्रतौ मणुस० पंचसंठा० इति पाठः। २. ता० प्रतौ णवरि वाऊणं पि णवरि (?) बादर, आ० प्रतौ णवरि वाऊणं पि बादर इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरालियका० तिरिक्खोघं। ओरालियमि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-[ओरा०अंगो०-] अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो०। एवं आदा०। दोवेद--तिरिक्खाउ०--मणुस०-पंचजा०--छस्संठा०--छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तसथावरादिदसयुग०-उच्चा० ज० अज० सव्वलो०। मणुसाउ०--तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-णीचा० तिरिक्खोघं। ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-णिमि० ज० लो० असं० सव्वलो०, अज० सव्वलो०। देवगदिपंच० खेत्तभंगो।

३६१. वेउव्वियका० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-छण्णोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० अट्ठ०, अज० अट्ठ-तेरह०। दोवेद०-ओरा०--तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४-अगु०--पर०-उस्सा०-उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-

---

ओघके समान भंग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार आतप प्रकृतिका भङ्ग जानना चाहिए। दो वेद, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्रका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिपञ्चकका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—स्वामित्वको देखते हुए प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके व आतप प्रकृतिके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, अतः क्षेत्रके समान कहा है। तथा औदारिकमिश्रकाययोगी जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। दो वेद आदिका कोई भी मिथ्यादृष्टि जीव जघन्य अनुभागबन्ध करते हैं, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। औदारिकशरीर आदिका जघन्य अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रियोंके स्वस्थान आदि और मारणान्तिक समुद्घातके समय होता है। अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। देवगतिपञ्चकका बन्ध सम्यग्दृष्टि करते हैं, अतः इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६१. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, छह नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस०-अजस०--णिमि० ज० अज० अट्ठ–तेरह०। इत्थि०-पंचिं०-पंचसंठा०--ओरा०-अंगो०--छस्संघ०-दोविहा०-तस०४–सुभगं-दोसर०-आदें० जं० अज० अट्ठ-बारह०। पुरिस० ज० अट्ठ०, अज० अट्ठ-बारह०। णवुंस० ज० अट्ठ-बारह०, अज० अट्ठ-तेरह०। दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-आदा०-तित्थ०-उच्चा० ज० अज० अट्ठ०। तिरिक्ख०२–णीचा० ज० खेत्त०, अज० अट्ठ-तेरह०। एइंदि०-थावर० ज० अज० अट्ठ-णवं०। वेउव्वि० [मिस्स०-] आहार०-आहारमि० खेत्तभंगो।

अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और निर्माणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, दो स्वर और आदेयके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यञ्चगतिद्विक और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें क्षेत्रके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि देव और नारकी करते हैं। इसमें भी स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका सम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि करते हैं। इनका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण होनेसे पाँच ज्ञानावरणादिके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। तथा तिर्यञ्चों, मनुष्यों और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले नारकियों और देवोंके भी इनका अजघन्य अनुभागबन्ध होता है; स्वस्थान आदिके समय तो होता ही है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंके जघन्य, अजघन्य या दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है, उसे इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। जिनका कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है, वहाँ नीचे छह और ऊपर छह इस प्रकार कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन लेना चाहिए। जिनका कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है, वहाँ एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कराके यह स्पर्शन लाना चाहिए। तात्पर्य यह है कि इन विशेषताओंको ध्यानमें रखकर और

---

१. ता० आ० प्रत्योः तस० सुभग० इति पाठः। २. आ० प्रतौ दोसर० ज० इति पाठः। ३. आ० प्रतौ ज० अट्ठणव० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६२. कम्मइ० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० छ०, अज० सव्वलो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचिं०-ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०-तस०४-णिमि० ज० एक्कारह०, अज० सव्वलो० । साददंडओ ओघो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ओघं । देवगदिपंचगं खेत्तभंगो । सेसं ओरालिय०भंगो । आदा० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो० ।

३६३. इत्थिवेदेसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो० । एवं छण्णोक० । सादासाद०-तिरि०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णीचा० ज० अज० अट्ठ० सव्वलो० । इत्थि०-मणुस०-पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०

स्वामित्वका विचारकर स्पर्शन का स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है ।

३६२. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सातावेदनीय दण्डकका भङ्ग ओघके समान है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग ओघके समान है । देवगतिपञ्चकका भङ्ग क्षेत्रके समान है । शेष भङ्ग औदारिककाययोगी जीवोंके समान है । आतपके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन है । यहाँ जिन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है,वह इसी दृष्टिसे कहा है । पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है । कार्मणकाययोगमें नीचे छह और ऊपर पाँच राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंके स्त्यानगृद्धि तीन आदिका जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है । शेष प्रकृतियोंका स्पर्शन निर्दिष्ट स्थानोंको देखकर घटित कर लेना चाहिए।

३६३. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार छह नोकषायोंका भङ्ग है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्रीवेद, मनुष्यगति, पाँच संस्थान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदाव-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० ज० अज० अट्ठ०। पुरिस०-दोआउ० ज० खेँत्त०, अज० अट्ठ०। णवुंस० ज० अट्ठ०, अज० अट्ठ० सव्वलो०। णिरय-देवाउ०-तिण्णिजा०-आहारदुग-तित्थ० खेँत्तभंगो। णिरय०--णिरयाणु० ज० अज० छच्चों०। देवग०-देवाणु० ज० पंचचो०, अज० छच्चों०। पंचिं०-तस० ज० छच्चों०, अज० अट्ठ०-बारह०। ओरा० ज० अट्ठ-णव०, अज० अट्ठ० सव्वलो०। तेजा०-[क०-] पसत्थ०४-अगु०३-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० ज० अट्ठ-तेरह०, अज० अट्ठ० सव्वलो०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० छ०, अज० बारह०। उज्जो०-जस० ज० अज० अट्ठ-णव०। अप्पसत्थ०-दुस्सर० ज० अट्ठ०, अज०[1] अट्ठ-बारह०। बादर० ज० अज०

औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेद और दो आयुके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु, तीन जाति, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और अयशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह

१. ता० प्र० अज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठ-तेरह० । सुहुम०-अपज्ज०-साधार० ज० अज० लो० असं० सव्वलो० ।

राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके व छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग है, अतः यह क्षेत्रके समान कहा है, तथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है। अतः इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है । स्त्रीवेदी जीवोंका स्वस्थानविहार आदिकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शन सब लोकप्रमाण है । इन दोनों अवस्थाओंमें सातावेदनीय आदिका दोनों प्रकारका अनुभागबन्ध सम्भव है, अतः यह स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है । स्त्रीवेद आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध एकेन्द्रियों और नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं हो सकता ; मात्र आतप इसका अपवाद है । वह भी मारणान्तिक समुद्घातके समय यदि हो, तो बादर पृथिवीकायिकोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय ही सम्भव है। इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है । पुरुषवेदका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है । तथा तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता व तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । इनके अजघन्य अनुभागबन्धका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है । नारकियों और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है । तथा स्वस्थान विहारादिके समय व नपुंसकोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी इसका बन्ध होता है, इसलिए इसके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू व सब लोकप्रमाण कहा है । नरकायु आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है । जो नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी नरकगतिद्विकका दोनों प्रकारका अनुभागबन्ध होता है। अतः इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है । देवोंमें सहस्रार कल्पतक मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके देवगतिद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध और सब देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके इनका अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्रमसे कुछ कम पाँच और कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है । तिर्यञ्चों और मनुष्योंके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है । तथा स्वस्थानविहार आदिके समय व नीचे और ऊपर कुछ कम छह-छह राजूप्रमाण क्षेत्रके भीतर यथायोग्य मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी इनका अजघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिये इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है । औदारिकशरीरका जघन्य अनुभागबन्ध देव करते हैं, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है । इसी प्रकार उद्योत व यशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका यह स्पर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९४. पुरिसेसु पढमदंडओ विदियदंडओ इत्थिभंगो। इत्थि०-मणुस०-पंच-संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० ज० अज० अट्ठचोंद्द०। पुरिस०--दोआउ०-तित्थ० ज० खेंत्त०, अज० अट्ठ०। णवुंस० ज० अट्ठ०, अजह० अट्ठचोंद्दस० सव्वलो०। दोआउ०-तिण्णिजा०-आहार-दुगं ज० अज० खेंत्त०। वेउव्वियछ० ओघं। पंचिं०-अप्पसत्थ०-तस-दुस्सर० ज०

घटित कर लेना चाहिए। औदारिकशरीरके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। तैजसशरीर आदिका जघन्य अनुभागबन्ध स्वस्थान-विहारादिके समय तो होता ही है,पर नीचे छह राजू और ऊपर सात राजू कुल कुछ कम तेरह राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो नीचे नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं,उन तिर्यञ्च और मनुष्योंके भी वैक्रियिकद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है और इनका अजघन्य अनुभागबन्ध देवों व नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है। इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका जघन्य अनुभागबन्ध नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय नहीं होता। इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध स्वस्थान विहारादिके समय तो होता ही है,पर नीचे व ऊपर कुछ कम बारह राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण भी कहा है। बादर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध स्वस्थान विहारादिके समय भी होता है और नीचे छ व ऊपर सात राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी होता है। इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तिर्यञ्च और मनुष्य स्वस्थानमें व एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्घात करते समय सूक्ष्म आदिका दोनों प्रकारका अनुभागबन्ध करते हैं, इसलिए इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है।

३९४. पुरुषोंमें प्रथम दण्डक और दूसरे दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। स्त्रीवेद, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेद, दो आयु और तीर्थङ्करके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति और आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। वैक्रियिकशरीर आदि छहका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस और दुःस्वरके जघन्य और अजघन्य अनुभागके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज० अट्ठ-बा० । तेजा०-[क०-] पसत्थ०४—अगु०३—पज्ज०—पत्ते०--णिमि० ज० अट्ठतेरह०, अज० अट्ठ चोंद्दह० सव्वलो० । ओरा० ज० अट्ठ--णवचों०, अज० अट्ठ० सव्वलो० । उज्जो०-जस० ज० अज० अट्ठ-णव० । बादर० ज० अज० अट्ठ-तेरह० । सुहुम०-अपज्ज०-साधार० ज० अज० लो० असं सव्वलो० ।

३६५. णवुंसगे पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-आदा०-णीचा०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो० । सादादिदंडओ ओघं । इत्थि०-णवुंस०-पंचिं०—ओरा०--तेजा०--क०--ओरा०अंगो०-

---

बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—पुरुषवेदी जीवोंमें स्पर्शन प्रायः स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। जहाँ थोड़ा-बहुत अन्तर है भी, उसे स्वामित्वको देखकर घटित कर लेना चाहिए। उदाहरणार्थ—स्त्रीवेदी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध केवल मनुष्यिनियाँ ही करती हैं, इसलिए वहाँ इसकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। किन्तु पुरुषोंमें देव भी इसका बन्ध करते हैं, इसलिए यहाँ इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहकर भी अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। इसी प्रकार स्त्रीवेदी जीवोंसे यहाँ पञ्चेन्द्रियजाति और त्रस प्रकृतिके स्पर्शनमें भी अन्तर घटित कर लेना चाहिए।

३६५. नपुंसकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, आतप, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माण

---

१. ता० आ० प्रत्योः आदा० उप० णीचा० इति पाठः ।

पसत्थ०४–अगु०३–उज्जो०-तस४–णिमि० ज० छ०, अज० सव्वलो०। दोआउ०-वेउव्वियछ०-आहारदुग-तित्थ० इत्थिभंगो। मणुसाउ० तिरिक्खोघं।

३६६. अवगद०-मणपज्जव०--संज०--सामाइ०--छेदो०-परिहा०–सुहुम० ज० अज० खेत्त०। मदि-सुद० ओघं। विभंगे पंचिंदियभंगो।

३६७. आभिणि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४–उप०-तित्थ०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० अट्ठचो०। दोवेदणी०-मणुसाउ०-मणुसगदिपंचग०-पंचि०-तेजा०-क०-समचदु०--पसत्थ०४–अगु०३–पसत्थ०-तस०४–

के जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, वैक्रियिक छह, आहारकशरीरद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ आतपके सिवा पाँच ज्ञानावरणादिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामित्व ओघके समान है और आतपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामित्व सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। यतः ओघसे पाँच ज्ञानावरणादि और सामान्य तिर्यञ्चों के आतपके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान बतला आये हैं, अतः यहाँ भी यह क्षेत्रके समान कहा है। तथा नपुंसक सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान, नरकायु, देवायु और वैक्रियिक छह आदिका भङ्ग क्षेत्रके समान और मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। अब रहा स्त्रीवेददण्डक सो स्पर्शनकी दृष्टिसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय नपुंसकों में नारकियों की मुख्यता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। तथा इसके अजघन्य अनुभागका बन्ध एकेन्द्रियादि जीवों के सम्भव है, अतः इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है।

३६६. अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवों में जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवों में ओघके समान है। तथा विभङ्गज्ञानियों में पञ्चेन्द्रियों के समान है।

विशेषार्थ—अपगतवेदी आदि जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है, इसलिए इन मार्गणाओं में अपनी-अपनी प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवों में स्वामित्व सम्बन्धी विशेषताके होने पर भी स्पर्शन ओघके समान बन जाता है, इसलिए वह ओघके समान कहा है। तथा चारों गतिके पञ्चेन्द्रिय जीव विभङ्गज्ञानी हो सकते हैं, इसलिए विभङ्गज्ञानी जीवों में स्पर्शन पञ्चेन्द्रियों के समान बन जानेसे वह पञ्चेन्द्रियों के समान कहा है।

३६७. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवों में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगतिपञ्चक, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थिराथिर-सुभासुभ-सुभग--सुस्सर-आदें०-जस०-अजस०-णिमि०-उच्चा० ज० अज० अट्ठ० । देवाउ०--आहारदुगं ज० अज० खेत्त० । देवगदि०४ ज० खेत्त०, अज० छचों० । एवं ओधिदंस०-सम्मादि०--खइग०--वेदग०--उवसम०-सम्मामि० । णवरि खइग०-उवसम० किंचि० विसेसो णादव्वो ।

३९८. संजदासंज० सादासाद०-अरदि-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० ज० अज० छचों० । सेसाणं ज० खेत्त०, अज० छचों० । देवाउ०-तित्थ० ज० अज० खेत्त० । असंजदेसु ओघं ।

प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति अयशःकीर्ति, निर्माण और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवायु और आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । देवगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें कुछ विशेषता जाननी चाहिए ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध ओघके समान है और ओघसे इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान घटित करके बतला आये हैं, अतः यह क्षेत्रके समान कहा है । तथा आभिनिबोधिकज्ञानी आदिका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण है, इसलिए इनके अजघन्य व दूसरे दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है । देवायुका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य तथा आहारकद्विकका दोनों प्रकारका अनुभागबन्ध अप्रमत्तसंयत जीव करते हैं । यतः इन जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इन प्रकृतियोंके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । देवगतिचतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । तथा इन जीवोंके मारणान्तिक समुद्घातके समय भी इनका बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

३९८. संयतासंयत जीवोंमें सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । असंयतोंमें ओघके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—संयतासंयतोंमें सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध मारणान्तिक समु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६६. किण्णाए पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख-गदितिग-अप्पसत्थ०४-उप०-आदा०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो०। सादादि-दंडओ ओघो। इत्थि०-णवुंस०-पंचिंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरा०अंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०-तस०४-णिमि० ज० छ०, अज० सव्वलो०। दोआउ०-देवगदि-दुग०-तित्थ० ज० अज० खेत्त०। मणुसाउ० णवुंसगभंगो। णिरयगदिदुग-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० अज० छचों०। एवं णील-काऊणं। णवरि अप्पप्पणो रज्जू भाणिदव्वा। तिरिक्ख०३ एइंदियभंगो।

दूघातके समय भी सम्भव है। इनका तथा देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा शेष प्रकृतियोंका अजघन्य अनुभागबन्ध तो मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव है ही। इसलिए यह सब स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है तथा सातावेदनीयदण्डकके सिवा शेष प्रकृतियोंका जघन्य और देवायु व तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव नहीं है, इसलिए इस अपेक्षासे यह स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिका अजघन्य अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, पर उससे स्पर्शनमें कोई विशेषता नहीं आती। शेष कथन सुगम है।

३६६. कृष्णलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगतित्रिक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, आतप और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, देवगतिद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। नरकगतिद्विक, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार नील और कापोत लेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी राजू कहनी चाहिए। तथा तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके स्वामियोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा कृष्ण लेश्याका स्पर्शन सब लोक होनेसे यहाँ इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कहा है। आगे भी सब लोकप्रमाण स्पर्शनका इसी प्रकार स्पष्टीकरण करना चाहिए। सातावेदनीय दण्डकके स्पर्शनका स्पष्टीकरण ओघके समान कर लेना चाहिए। नीचे छह राजू प्रमाण यथायोग्य स्पर्शन करनेवाले जीवोंके भी स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है। अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। नरकायु, देवायु और देवगतिद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभागबन्ध मनुष्य करते हैं, अतः इन प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। नपुंसकोंमें मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४००. तेऊए पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-छण्णोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० अट्ठ-णव० । सादासाद०-तिरि०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-[क०-] हुंड०-पसत्थव०४-तिरिक्खाणु०-अगु०३-उज्जो०-थावर०-बादर-पज्जत्त०-पत्ते०-थिरादितिण्णियु०-दूभग-अणादें०-णिमि०-णीचा० ज० अज० अट्ठ-णव० । इत्थि०-दोआउ०-मणुस०-पंचिं०-पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदें०-तित्थ०-उच्चा० ज० अज० अट्ठचों० । पुरिस० ज० खेत्त०, अज० अट्ठ० । णवुंसगे सोधम्मभंगो । देवाउ०-आहारदुगं खेत्त० । देवगदि०४ ज० अज० दिवड्ढचोंद्द० । एवं पम्माए वि । णवरि सव्वाणं रज्जू० अट्ठचों० । देवगदि०४ पंचचों० ।

तिर्यञ्चोंके समान कहा है । वह स्पर्शन यहाँ भी प्राप्त होता है, इसलिए मनुष्यायुका भङ्ग नपुंसकोंके समान कहा है । जो तिर्यञ्च और मनुष्य नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी नरकगतिद्विक और वैक्रियिकद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है । नील और कापोत लेश्यामें तिर्यञ्चगतित्रिकका स्वामी बदल जानेसे स्पर्शन बदल जाता है । शेष सब स्पर्शन कृष्णलेश्याके ही समान है । मात्र नील लेश्या पाँचवें नरक तक और कापोत लेश्या तीसरे नरक तक होती है, इसलिए जहाँ कुछ कम छह राजू स्पर्शन कहा है, वहाँ कुछ कम चार और कुछ कम दो राजू स्पर्शन कहना चाहिए ।

४००. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, छह नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ और कुछ कम नौ राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, स्थावर, बादर पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, अनादेय, निर्माण और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्रीवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पुरुषवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । नपुंसकवेदका भङ्ग सौधर्मकल्पके समान है । देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग क्षेत्रके समान है । देवगतिचतुष्कके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ सबके कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहने चाहिए । तथा देवगतिचतुष्कके कुछ कम पाँच बटे चौदह राजू कहने चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ जिन प्रकृतियोंका एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय जघन्य,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०१. सुक्काए खविगाणं ज० खेत्त०, अज० छ०। सादद्दंडओ इत्थि०-णवुंस०-मणुसाउ०-मणुस०-पंचिंदियादि याव णीचुचा० देवगदि०४—तित्थ० ज० अज० छचों०। देवाउ०-आहारदुगं खेत्तं०।

४०२. अब्भवसि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-पंचिं०-ओरा०अंगो०-अप्पसत्थ०४—उप०--पंचंत० ज० अट्ठ-बारह०, अज० सव्वलो०।

अजघन्य या दोनों अनुभागबन्ध सम्भव है, उनके बन्धक जीवोंका कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन कहा है। जिनका जघन्य या अजघन्य अनुभाग-बन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता और स्वस्थान-विहारादिके समय सम्भव है, उनके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। प्रथम दण्डक की प्रकृतियों, पुरुषवेद, देवायु और आहारकद्विकके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका तथा देवायु और आहारकद्विकके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है, यह स्पष्ट ही है। देवोंमें नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर देव करता है। यही स्वामित्व यहाँ पीतलेश्यामें भी कहा है, इसलिए यहाँ नपुंसकवेदका भङ्ग सौधर्मकल्पके समान कहा है। तिर्यञ्च और मनुष्य ऊपर डेढ़ राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी देवगतिचतुष्कका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध करते हैं, इसलिए इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। पद्मलेश्यामें देवगतिचतुष्कका यह स्पर्शन कुछ कम पाँच राजू है, क्योंकि पद्मलेश्याके साथ तिर्यञ्च और मनुष्योंका स्पर्शन बारहवें कल्प तक देखा जाता है। शेष सब कथन पीतलेश्याके समान है। मात्र पद्मलेश्यामें कुछ कम नौ बटे चौदह राजू नहीं कहने चाहिए, क्योंकि इस लेश्यावाले एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते।

४०१ शुक्ललेश्यामें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीयदण्डक, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, मनुष्यायु, मनुष्यगति व पञ्चेन्द्रिय जातिसे लेकर नीच व उच्चगोत्र तक तथा देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्करके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छहबटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। तथा यहाँ शुक्ल-लेश्याका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। यहाँ पञ्चेन्द्रियजातिसे नीचगोत्रके मध्यकी प्रकृतियाँ, अर्थात् क्षपकप्रकृतियाँ, आहारकद्विक, देवगतिचतुष्क व तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा नामकर्मकी शुक्ललेश्यामें बँधनेवाली सब प्रकृतियाँ ली गई हैं। इनका यथा सम्भव जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध देवोंमें व देवों और मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय होता है। अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। इसी प्रकार देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी अपेक्षा भी स्पर्शन जान लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

४०२. अभव्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०-बादर-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० ज० अट्ठ-तेरह०, अज० सव्वलो०। सेसाणं मदि०भंगो।

४०३. सासणे सव्वविसुद्धाणं ज० अट्ठ०, अज० अट्ठ-बारह०। दोआउ०-मणुसगदिदुगं ज० अज० अट्ठचों०। देवाउ० खेत्त०। देवगदि०४ ज० अज० पंचचों०। तिरिक्खगदितिगं ज० खेत्त०, अज० अट्ठ-बारह०। सेसाणं ज० अज० अट्ठ-बारह०। मिच्छादिट्ठि० मदि०भंगो।

स्पर्शन किया है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—अभव्योंमें चारों गतिके संज्ञी जीव पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध करते हैं। यह बन्ध नीचे छह व ऊपर छह राजूके भीतर यथायोग्य मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। औदारिकशरीर आदिका नीचे छह और ऊपर सात राजूके भीतर यथायोग्य मारणान्तिक समुद्घातके समय भी जघन्य अनुभाग-बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

४०३. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सर्व विशुद्ध प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और मनुष्यगतिद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायुका भंग क्षेत्रके समान है। देव-गतिचतुष्कके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजू-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनु-भागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सर्व विशुद्ध परिणामोंसे जघन्य बँधनेवाली प्रकृतियाँ ज्ञानावरणादि हैं। यहाँ चारों गतिके संज्ञी जीव इनका जघन्य अनुभागबन्ध करते हैं। मारणान्तिक समुद्घातके बिना इनका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। इनके अजघन्य तथा जिन प्रकृतियोंका यहाँ नामोच्चारके साथ स्पर्शन नहीं कहा गया है, उनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि उनका यह दोनों प्रकारका अनुभागबन्ध नीचे पाँच और ऊपर सात इस प्रकार कुल बारह राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करनेवालोंके भी होता है। आयुकर्मका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता और मनुष्यगतिद्विकका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातमें होकर भी मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवालोंके ही सम्भव है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०४. असण्णीसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-पंचिं०-तेजा०-[क०-] ओरा०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-आदाव-तस४-णिमि०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो० । दोआउ०-वेउव्वियछक्कं ज० अज० खेत्त० । सादर्दंडओ ओघो । मणुसाउ० किण्णभंगो । तिरिक्खगदितिग-ओरा०-उज्जो० तिरिक्खोघं । अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं फोसणं समत्तं ।

२१. कालपरूवणा

४०५. कालं दुविधं—जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे०

अतः स्वस्थान विहारादिककी अपेक्षा इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन प्रधान होनेसे यह कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है । देवोंमें सहस्रार कल्प तक मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले सासादन जीवोंके भी देवगतिचतुष्कका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है । देवायुका जघन्य अनुभागबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध सातवें नरकके नारकी करते हैं। अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । तथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध नीचे पाँच व ऊपर सात कुल बारह राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीव भी करते हैं। इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है । शेष कथन स्पष्ट है ।

४०४. असंज्ञियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो आयु और वैक्रियिक छहके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग ओघके समान है । मनुष्यायुका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है । तिर्यञ्चगतित्रिक, औदारिकशरीर और उद्योतका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । अनाहारक जीवोंका भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । एकेन्द्रिय सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ ।

२१. कालप्ररूपणा

४०५. काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिण्णिग०-चदुजा०-ओरा०-पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०४–तिण्णिआणु०-उप०-आदा०--उज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर४--अथिरादिछ०--णीचा०--पंचंत० उक्कस्सअणुभागबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेणं एगसमयं । उक्कस्सेण आवलियाए असंखेँज्जदिभागो । अणुक० अणुभाग० सव्वद्धा । सादा०-तिरिक्खाउ०--देवगदि०--पंचिं०-चदुसरीर-समचदु०--दोअंगो०--पसत्थ०४–देवाणु०--अगु०३–पसत्थवि०--तस०४–थिरादिछ०–णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उ० ज० एग०, उ० संखेँज्जस० । अणुक० सव्वद्धा । णिरयाउ० उ० ज० ए०, उ० आवलि० असंखे० । अणु० ज० ए०, उ० पलि० असं० । दोआउ० उ० ज० ए०, उ० संखेँज्जस० । अणु० ज० ए०, उ० पलिदो० असंखेँ० । एवं ओघभंगो पंचिंदिय-तस०२–पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरा०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४–मदि०-सुद०-असंज०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा०-सण्णि०-आहारए त्ति । णवरि चदुण्णं आउगाणं अणुक० बंधगा असंखेँज्ज[4]-रासीणं अप्पप्पणो पगदिकालो कादव्वो ।

है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तीन गति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, उपघात, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । सातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्र संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त-वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । नरकायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । दो आयुओंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इस प्रकार ओघके समान पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि असंख्यात संख्यावाली राशियोंमें चार आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अपनी-अपनी प्रकृतियोंका जो बन्धकाल हो, वह कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक प्रकृतिका बन्ध-काल कितना है, इसका विचार

---

१. ता० प्रतौ पंचणा० असादा० मिच्छ० सोलसक० तिण्णिग० इति पाठः । २. ता० प्रतौ होंति होंति (?) जहण्णेण इति पाठः । ३. ता० प्रतौ सव्वद्धा (द्धा) इति पाठः । ४. ता० आ० प्रत्योः बंधगा लो० असंखेज्ज० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०६. एइंदिएसु तिरिक्खाउ०-उज्जो० उ० ज० ए०, उ० आवलि० असंखे०। अणु० सव्वद्धा। मणुसाउ० ओघो। सेसाणं दोपदा सव्वद्धा। एवं बादरतिगाणं।

किया गया है। उसमें भी ओघसे प्रत्येक प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट बन्धकाल कितना है, इसका सर्वप्रथम निर्देश किया गया है। कुल बन्ध प्रकृतियाँ १२० हैं। उनमेंसे पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल किसीका एक समय और किसीका दो समय बतलाया है। अब यदि नाना जीव निरन्तर इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करें तो कितने काल तक करेंगे, इसीप्रश्नका यहाँ उत्तर दिया गया है। जैसा कि बन्धस्वामित्वके देखनेसे विदित होता है कि इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि होते हैं और वे असंख्यात हैं, अतः यह भी सम्भव है कि नाना जीव एक समय तक इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करें और यह भी सम्भव है कि लगातार एकके बाद दूसरा निरन्तर उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते रहें। इस प्रकार निरन्तर यदि बन्ध करें भी तो वह सब काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं हो सकता। यही कारण है कि यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धकोंका काल सर्वदा है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि ऐसा कोई समय नहीं है जब इन प्रकृतियोंके बन्धक जीव न हों अर्थात् वे सर्वदा पाये जाते हैं। दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं, अतः उनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा कहा है। नरकायुके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट बन्धकाल तो ज्ञानावरणके समान ही है। इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धकके कालमें अन्तर है। बात यह है कि एक आयुका बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। उसमें भी अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्धकाल कमसे कम एक समय है। यह सम्भव है कि नाना जीव एक समय तक अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने लगें और उस दूसरे समयमें एक भी जीव अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध न करे, इसलिए तो नरकायुके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय कहा है और निरन्तर अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्तके क्रमसे यदि नाना जीव नरकायुका बन्ध करते रहें, तो इस सब कालका योग पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होगा। इसीलिए नरकायुके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। अब रहीं मनुष्यायु और देवायु सो इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है। मात्र असंख्यात संख्यावाली राशियोंमें चार आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धकोंके कालके ओघसे अन्तर है। अतः उसे प्रकृतिबन्धके समान जानने की सूचना की है। सो प्रकृतिबन्धके अनुसार उसे समझ लेना चाहिए।

४०६. एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चायु और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धकोंका काल सर्वदा है। मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके दोनों पदोंके बन्धक

१. ता० प्रतौ सव्वद्धा० (द्धा) इति पाठः। ता० प्रतौऽग्रेऽप्येवमेव बहुलतया पाठो निबद्धः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वसुहुमाणं दोआउ० एइंदियभंगो। सेसाणं दोपदा सव्वद्धा।

४०७. अवगद०-सुहुमसं० सव्वपग० उ० ज० ए०, उ० संखेंज्ज० अणु० ज० ए०, उ० अंतो०[1]। सेसाणं णिरयगदीणं याव सण्णि त्ति एसिं परिमाणेण संखेंज्ज० तेसिं उ० ज० ए०, उ० संखेंज्जस०। एसिं परिमाणेण असंखेंज्जा तेसिं० उक्क० ज० ए०, उ० आवलिगा० असंखें०। णवरि बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्जत्ता० आउगवज्जाणं सव्वासिं पगदीणं दोपदा सव्वद्धा त्ति। तिरिक्खाउ० उक्क० णिरयाउभंगो। अणुक्क० सव्वद्धा। मणुसाउ० ओघो। एसिं परिमाणे अणंता तेसिं सव्वद्धा। अणुक्क० अणुभागबंधो सव्वेसिं अप्पप्पणो पगदि-कालो एदेण बीजेण याव अणाहारए त्ति णेदव्वं।

एवं उक्कस्सकालो समत्तो।

४०८. जह० पगदं। दुवि० ओघे०—आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०--सत्तणोक०-आहारदुग०--अप्पसत्थ०४–उप०–तित्थ० पंचंत० ज० ज० ए०,

---

जीव सर्वदा हैं। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। सब सूक्ष्म जीवोंमें दो आयुओंका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंके दो पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है।

विशेषार्थ—यहाँ एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चायु और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात होनेसे उनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इसी प्रकार सब काल घटित कर लेना चाहिए।

४०७. अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। नरकगतिसे लेकर संज्ञी-मार्गणा तक शेष जितनी मार्गणाएँ हैं, उनमेंसे जिनका परिमाण संख्यात है उनमें उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। जिनका परिमाण असंख्यात है, उनमें उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त और बादर वनस्पति-कायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके दो पदोंके बन्धक जीव सर्वदा हैं। मात्र तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल नरकायुके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तथा मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है। तथा जिनका परिमाण अनन्त है, उनमें सर्वदा काल है। सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल अपने-अपने प्रकृतिबन्धके कालके समान है। इस प्रकार इस बीजके अनुसार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ।

४०८. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, आहारकद्विक, अप्रशस्त

---

१. ता० प्रतौ अणु० उ० ज० ए० संखेज्ज० अणु० ज० ए० उ० [एतच्चिन्हान्तर्गतः पाठोऽधिकः प्रतीयते] अंतो०, आ० प्रतौ अणु० ज० ए०, उ० संखेज्ज०, अणु० ज० ए०, उ० अंतो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ० संखेंज्ज०। अज० सव्वद्धा। सादासाद०-तिरिक्खाउ०-मणुस०-चदुजा०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग०-उच्चा० ज० अजह० सव्वद्धा। इत्थि०-णवुंस०-तिण्णिगदि-पंचिं०-चदुसरीर-दोअंगो०-पसत्थ०४-तिण्णिआणु०-अगु०३-आदाउज्जो०-तस०४-णिमि०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० आवलि० असं०। अजह० सव्वद्धा। तिण्णिआउ० ज० ज० ए०, उ० आवलि० असं०। अजह० ज० ए०, उ० पलिदो० असंखे०। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा०-आहारए त्ति।

४०६. णिरयादि याव अणाहारए त्ति एसिं संखेज्जजीविगा तेसिं ज० ज० ए०, उ० संखेंज्ज०। अज० सव्वद्धा। एसिं असंखेंज्जजीविगा तेसिं ज० ज० ए०, उ० आवलि० असंखे०। अज० सव्वद्धा। एसिं अणंतरासी० तेसिं ज० सव्वद्धा। सव्वाणं अजहण्णं० अणुभागबंधकाले अप्पप्पणो पगदिकालो कादव्वो। एदेण बीजेण णेदव्वं जहण्णुक० काले० पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेयाणं च किंचि

वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तीन गति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तीन आयुओंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

४०६. नरकगतिसे लेकर अनाहारक मार्गणा तक जिनके संख्यात संख्यावाले स्वामी हैं, उनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। जिनके असंख्यात जीव स्वामी हैं, उनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। जिनके अनन्त जीव स्वामी हैं, उनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तथा सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल अपने-अपने प्रकृतिबन्धके कालके समान करना चाहिए। इस बीजपदके अनुसार जघन्य और उत्कृष्ट काल जान लेना चाहिए। किन्तु पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें

१. ता० प्रतौ एसं (सिं) इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसेसो साधेदव्वं । बादरअपज्जत्तएसु ज० अज० सव्वद्धा ।

एवं कालो समत्तो ।

२२ अंतरपरूवणा

४१०. अंतरं दुविधं—जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सादा०-जस०-उच्चा० उ० अणुभागबंधंतरं[1] ज० ए०, उ० छम्मासं० । अणु० णत्थि अंतरं । सेसाणं सव्वेसिं उ० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । अणुक्क० णत्थि अंतरं । णवरि तिण्णं आउगाणं अणुक्क० ज० ए०, उ० चदुवीसं मुहुत्तं ।

४११. एइंदिएसु सव्वपगदीणं उ० अणु० णत्थि अंतरं । दोआउ०-उज्जो० ओघं । एवं बादरपज्जत्तापज्जत्त० । सव्वसुहुम--सव्ववणप्फदि--णियोद०-बादरपुढ०-

कुछ विशेष साध लेना चाहिए। बादर अपर्याप्तकोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का काल सर्वदा है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

२२ अंतरप्ररूपणा

४१०. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि तीन आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त है।

विशेषार्थ—सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है। अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है। यद्यपि देवगति आदि अन्य प्रकृतियोंका भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, पर सातावेदनीय आदिके समान सब जीवोंके उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो ही ऐसा कोई नियम नहीं है; इसलिए उनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर परिणामोंके अनुसार कहा है। अनुभागबन्धके योग्य कुल परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। जिनमेंसे उत्कृष्ट अनुभागबन्धके योग्य परिणाम एक समय के अन्तरसे भी हो सकते हैं और क्रमसे सब परिणामोंका अन्तर देकर भी हो सकते हैं। इसलिए यहाँ शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। नरकायु, मनुष्यायु और देवायु इन तीन आयुओंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध अन्य प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके समान निरन्तर नहीं होता। उस-उस गतिमें उत्पन्न होनेका जो अन्तर है, वही यहाँ इन आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर है। यही देखकर यहाँ इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त कहा है।

४११. एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। दो आयु और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार बादर, बादर पर्याप्त और बादर अप०

१. ता० प्रतौ अणुभागं तं ज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरपत्ते०अपज्जत्तगाणं च दोआउ० ओघं । सेसाणं णत्थि अंतरं । पुढवियादिचदुण्णं तेसिं बादर०--बादरपत्तेय० दोआउ० ओघं । सेसाणं दोपदा ओघं आभिणि०भंगो । एवमेदेसिं बादरपज्जत्तगाणं च । णवरि तिरिक्खाउ० अणुक्क० पगदिअंतरं । एवं ओघभंगो णेरइग-तिरिक्ख-मणुस--देव--विगलिंदि०-पंचिं०-तस०२--पंचमण०--पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-वेउव्वि०-वेउ०मि०-आहार०-आहारमि०-कम्मइ०--इत्थि०-पुरिस०--णवुंस०-अवगद०--कोधादि०४--मदि०-सुद०-विभंग०-आभिणि०-सुद०--ओधि०-मणपज्ज०--संजद-सामाइ०छेदो०--परिहार०-सुहुमसं०-संजदासंजद०-असंज०-चक्खु[1]०--अचक्खु०--ओधिदं०--छल्लेस्सि०--भवसि०-अब्भवसि०-सम्मादि०--खइग०--वेदग०--उवसम०-सासण०--सम्मामि०-मिच्छा-सण्णि-असण्णि-आहार०-अणाहारए त्ति। णवरि सव्वाणं अणुक्क०अणुभागबंधंतरं अणुक्कस्सट्ठिदिबंधंतरं अणुक्कस्सट्ठिदिबंधभंगो। णवरि अवगद०-सुहुमसं०-[सादा०-]जस०-उच्चा० उ० अणु० अणुभाग० ज० ए०,उ० छम्मासं०। सेसाणं उ० ज० ए०,उ० वासपुधत्तं। अणु० ज० ए०, उ० छम्मासं० । उवसम० सादा०-जस०-उच्चा० उ० ज० ए०,उ० वासपुधत्तं[2] ।

एवमुक्कस्समंतरं समत्तं[3] ।

र्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। सब सूक्ष्म, सब वनस्पतिकायिक, निगोद, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंमें दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। पृथिवी आदि चार, उनके बादर और बादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवोंमें दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके दो पदोंका भङ्ग ओघसे कहे गये आभिनिबोधिकज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार इनके बादर पर्याप्तकोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यश्चायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान है। इस प्रकार ओघके समान नारकी, तिर्यश्च, मनुष्य, देव, विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, अपगतवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, संयतासंयत, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, छह लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सबके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरका भङ्ग अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरके समान है। इतनी और विशेषता है कि अपगतवेदी, और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका

१. ता० प्रतौ संजदासंजद० चक्खु० इति पाठः। २. ता० प्रतौ उच्चा० उ० वासपुधत्तं इति पाठः। ३. ता० प्रतौ एवं उक्कस्समंतरं समत्तं इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१२. जह० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० छम्मासं० । अज० णत्थि अंतरं । पंचदंस०-मिच्छ०-बारसक०-अट्ठणोक०-तिण्णिआउ०-तिण्णिगदि-पंचिं०-पंचसरीर-तिण्णिअंगो०-पसत्थापसत्थ०४–तिण्णिआणु०-अगु०४–आदाउज्जोव-तस०४–णिमि०-तित्थ०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । अज० णत्थि अंतरं । णवरि तिण्णिआऊणं अज० अणु०भंगो । सादासाद०-तिरिक्खाउ०-मणुसग०-चदुजा०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थावरादि०४–थिरादिछयुग०-उच्चा० ज० अज० णत्थि अंतरं । एवं ओघभंगो कायजोगि–ओरालि०--णवुंस०–कोधादि०४—अचक्खु०--भवसि०--आहारए त्ति ।

४१३. मणुस०३--पंचिं०-तस०४-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-आभि०-

जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें साता-वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर समाप्त हुआ ।

४१२. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, आठ नोकषाय, तीन आयु, तीन गति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, तीन आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थङ्कर और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । इतनी विशेषता है कि तीन आयुओंके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है। अतः जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है । चार दर्शनावरण आदिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय, जघन्य अनुभागबन्ध एक समयके अन्तरसे सम्भव है, इसलिए कहा है और परिणामोंकी दृष्टिसे उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है । तीन आयुओंके अजघन्य अनुभागबन्धकी विशेषता अनुत्कृष्टके समान है । कारण कि नरकगति आदिमें उत्पत्तिका जो अन्तर है,वही इन आयुओंके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर जानना चाहिए । तथा सातावेदनीय आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध किसी न किसीके निरन्तर होता रहता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है । आगे भी इसी प्रकार अन्तर घटित कर लेना चाहिए ।

४१३. मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद--सामाइ०-छेदोव०-चक्खु०-ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइय०-उवसम०-सण्णीसु पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पुरिसं०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० छम्मासं०। अज० णत्थि अंतरं। सेसाणं पगदीणं उक्कस्सभंगो। अवगद०-सुहुमसं० पंचणा०--चदुदंस०--चदुसंज०--पुरिसवेद--पंचंतं० ज० अज० ज० ए०, उ० छम्मासं०। [णवरि सुहुमसं० चदुसंज०-पुरिसवे० वज्ज०।] सादा०-जस०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० वासपुध०। अज० ज० ए०, उ० छम्मासं०।

४१४. एइंदिएसु मणुसाउ०-तिरिक्ख०३ ओघं। सेसाणं ज० अज० णत्थि अंतरं। बादरएइंदिय-पज्जत्तापज्जत्त-सव्वसुहुमाणं मणुसाउ० ओघं। सेसाणं ज० अज० णत्थि अंतरं। एवं पंचण्णं कायाणं अप्पज्जत्तगाणं वणप्फदि-णियोदाणं च। अवसेसाणं णिरय-तिरिक्खादीणं जासिं दोण्हं पदा सव्वद्धा तासिं णत्थि अंतरं। एसिं ण सव्वद्धा तेसिं उक्कस्सभंगो। एदेण बीजेण णेदव्वं याव अणाहारए त्ति। णवरि ओधिणा०-इत्थि०-णवुंस०-ओधिदं०-उवसम० वासपुधत्तं।

एवं अंतरं समत्तं[3]।

पुरुषवेदी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें चार संज्वलन और पुरुषवेदको छोड़कर कहना चाहिए। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है।

४१४. एकेन्द्रियोंमें मनुष्यायु और तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त व अपर्याप्त और सब सूक्ष्म जीवोंमें मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार पाँच स्थावरकाय, उनके अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए। अवशेष नरक और तिर्यञ्चगति आदिमें जिनके दोनों पदोंका काल सर्वदा है, उनका अन्तर काल नहीं है और जिनका सर्वदा काल नहीं है, उनका उत्कृष्टके समान भङ्ग है। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी, स्त्रीवेदी, नपुंसकवेदी, अवधिदर्शनी

१. आ० प्रतौ चदुदंस० पुरिस० इति पाठः। २. ता० प्रतौ चदुदंस० पुरिसवेद० चदुसवेद० [?] चदुसंज० पंचंत०, आ० प्रतौ चदुदंस० पुरिसवेद० चदुसवेद० चदुसंज० पंचंत० इति पाठः। ३. ता० प्रतौ एवं अंतरं समत्तं इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३ भावपरूवणा

४१५. भावं दुवि०—ज० उ०। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे०आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं उक्कस्साणुक्कस्सअणुभागबंधए त्ति को भावो? ओदइगो भावो। एवं याव अणाहारए त्ति।

४१६. जह० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं ज० अज० अणुभागबंधए त्ति को भावो? ओदइगो भावो। एवं याव अणाहारए त्ति।

एवं भावं समत्तं[1]।

२४ अप्पाबहुअपरूवणा

४१७. अप्पाबहुगं दुवि०—सत्थाणअप्पाबहुगं चेव परत्थाणअप्पाबहुगं चेव। सत्थाणअप्पाबहुगं दुविधं—जह० उक्क० च। उक्क० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सव्वतिव्वाणुभागं केवलणाणावरणीयं। आभिणि० अणंतगुणहीणं। सुद० अणंतगु०। ओधि० अणंतगु०। मणपज्जव० अणंतगुणहीणं।

और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें वर्षपृथक्त्वप्रमाण अन्तर है।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

२३ भावप्ररूपणा

४१५. भाव दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कौन भाव है? औदयिक भाव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

४१६. जघन्य दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धकोंका कौन भाव है? औदयिक भाव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जीवके औपशमिक आदि अनेक भाव हैं। उनमें बन्धका प्रयोजक एकमात्र औदयिक भाव है; अन्य सब नहीं, यही इससे सिद्ध होता है।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ।

२४ अल्पबहुत्वप्ररूपणा

४१७. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्वस्थान अल्पबहुत्व और परस्थान अल्पबहुत्व। स्वस्थान अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे केवलज्ञानावरण सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे श्रुतज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अवधिज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।

१. ता० प्रतौ एवं भावं समत्तं इति पाठो नास्ति। २. ता० प्रतौ -बहुगे (गं) चेति परत्थाण- इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१८. सव्वतिव्वाणुभागं केवलदंस० । चक्खु० अणंतगु० । अचक्खु०[1] अणंतगु०। ओधिदं० अणंतगुण० । थीणं० अणंतगु० । णिद्दाणिद्दा० अणंतगु० । पचला-पचला० अणंतगु० । णिद्दा० अणंतगु० । पचला० अणंतगु० ।

३१६. सव्वतिव्वाणुभागं साद० । असाद० अणंतगु० ।

४२०. सव्वतिव्वाणु० मिच्छ०। अणंताणुबंधिलो० अणंतगु०। माया० विसेसा०। कोधे विसे० । माणो विसे० । संजलणाए लोभो अणंतगु० । माया० विसे० । कोधे विसे० । माणो विसे० । एवं पच्चक्खाण०४—अपच्चक्खाण०४ । णवुंस० अणंतगु० । अरदि० अणंतगु०। सोग० अणंतगु० । भय० अणंतगु०। दुगुंच्छ० अणंतगु०। इत्थि० अणंतगु० । पुरिस० अणंतगु० । रदि० अणंतगु० । हस्स० अणंतगु० ।

४२१. सव्वतिव्वाणुभागं देवाउ० । णिरयाउ० अणंतगु० । मणुसाउ० अणंतगु० । तिरिक्खाउ० अणंतगु० ।

४२२. सव्वतिव्वाणुभागं देवगदि० । मणुस० अणंतगु० । णिरय० अणंतगु० ।

---

४१८. केवलदर्शनावरण सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे चक्षुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे अचक्षुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे अवधि-दर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे निद्रानिद्राद्रिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है ।

४१६. सातावेदनीय सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे असातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है ।

४२०. मिथ्यात्व सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे अनन्तानुबन्धी लोभका अनु-भाग अनन्तगुणा हीन है । इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष हीन है । इससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है । इससे अनन्तानुबन्धी मानका अनुभाग विशेष हीन है । इससे संज्वलन लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे संज्वलन मायाका अनुभाग विशेष हीन है । इससे संज्वलन क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है । इससे संज्वलन मानका अनुभाग विशेष हीन है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण चार और अप्रत्याख्यानावरण चारका अनुभाग सम्बन्धी अल्पबहुत्व कहना चाहिए । इससे नपुंसक-वेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे जुगुप्सा-का अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे स्त्रीवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे पुरुष-वेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे रतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है ।

४२१. देवायु सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे नरकायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है ।

४२२. देवगति सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा

---

१. ता० आ० प्रत्योः अणंतगु० थीचा० अचक्खु० इति पाठः । २ ता० प्रतौ थि (थी) ण० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्ख० अणंतगु० । सव्वतिव्वाणुभागं पंचिंदिय० । एइंदि० अणंतगुणही० । बेइंदि० अणंतगु० । तेइंदि० अणंतगु० । चदुरिंदि० अणंतगु० । सव्वतिव्वाणुभागं कम्मइ० । तेजा० अणंतगु० । आहार० अणंतगु० । वेउव्वि० अणंतगु० । ओरालि० अणंतगु० । सव्वतिव्वाणुभागं समचदु० । हुंड० अणंतगु० । णग्गोद० अणंतगु० । सादि० अणंतगु० । खुज्ज० अणंतगु० । वामण० अणंतगु० । सव्वतिव्वाणुभागं आहार-अंगो० । वेउव्वि० अणंतगु० । ओरालि०अंगो० अणंतगु० । संघडणं संठाणभंगो । सव्वतिव्वाणुभागं पसत्थवण्ण०४ । अप्पसत्थ०४ अणंतगुणही० । यथा गदी[1] तथा आणुपु० । [सव्वतिव्वाणु० अगुरु० । उस्सास० अणंतगुणही० । परघाद० अणंत-गुणही० । उप० अणंतगुणही० ।] एत्तो सव्वयुगलाणं सव्वतिव्वाणि पसत्थाणि । अप्पसत्थाणि पडिपक्खाणि अणंतगुणही० ।

४२३. सव्वतिव्वाणुभागं विरियंत० । हेट्ठा दाणंतरा[2]० अणंतगु० ।

४२४. णिरएसु यत्तियाओ[3] पगदीओ अत्थि तत्तियाओ मूलोघो । एवं सत्तसु

हीन है । इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्त-गुणा हीन है । पञ्चेन्द्रियजातिका अनुभाग सबसे तीव्र है । इससे एकेन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे द्वीन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे त्रीन्द्रिय जातिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे चतुरिन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । कार्मणशरीर सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे आहारकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे वैक्रियिकशरीरका अनुभाग अनन्त-गुणा हीन है । इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । समचतुरस्रसंस्थान सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे हुण्डकसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे न्यग्रोध-परिमण्डल संस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे स्वातिसंस्थानका अनुभाग अनन्त-गुणा हीन है । इससे कुब्जकसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे वामन-संस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । आहारकआङ्गोपाङ्ग सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे औदारिक आङ्गोपाङ्गका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । छह संहननोंका अल्पबहुत्व छह संस्थानोंके समान है । प्रशस्त वर्णचतुष्क सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे अप्रशस्त वर्णचतुष्कका अनुभाग अनन्त-गुणा हीन है । चार आनुपूर्वियोंके अनुभागका अल्पबहुत्व चार गतियोंके समान है । अगुरुलघु सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे उच्छ्वासका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे परघातका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे उपघातका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । यहाँ सब युगलोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग सबसे तीव्र है । इससे अप्रशस्त प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है ।

४२३. वीर्यान्तराय सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे पूर्व दानान्तरायतक क्रमसे प्रत्येकका अनुभाग अनन्तगुणा हीन,अनन्तगुणा हीन है ।

४२४. नारकियोंमें जितनी प्रकृतियाँ हैं,उनका अल्पबहुत्व मूलोघके समान है । इसी प्रकार

१. ता० प्रतौ० पगदि इति पाठः । २. ता० प्रतौ हेट्ठाहु दंडायां (दाणं) तरा, आ० प्रतौ हेट्ठा हुंडं दाणंतरा इति पाठः । ३. आ० प्रतौ एत्तियाओ इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुढवीसु। तिरिक्खेसु सव्वतिव्वाणुभागं णिरयाउ०। देवाउ० अणंतगु०। मणुसाउ० अणंतगु०। तिरिक्खाउ० अणंतगु०। सव्वतिव्वाणुभागं देवग०। णिरयग० अणंतगु०। तिरिक्खग० अणंतगु०। मणुसग० अणंतगु०। सेसं मूलोघं। एवं सव्वतिरिक्खाणं। पंचिं० तिरि०अपज्ज० णेरइगभंगो। एवं सव्वअपज्जत्तगाणं सव्वएइंदि० सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचकायाणं च[1]। मणुस०३ गदीओ तिरिक्खभंगो। सेसं मूलोघं। देवाणं मूलोघं। पंचिं[2]०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजो०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-चक्खु०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-सण्णि०-आहारए त्ति मूलोघं। णवरि मदि०--सुद०विभंग०--असंज०-किण्णले[3]०--अब्भवसि०--मिच्छा०-सण्णीसु[4] तिरिक्खभंगो। ओरालि० मणुसि०भंगो। ओरालियमि० तिरिक्खोघं। वेउव्वि०-वेउव्वि०मि० देवगदिभंगो। आहार०-आहारमि० सव्वट्ठ०भंगो। कम्मइ० ओरालियमिस्स०भंगो। एवं अणाहार०। अवगद० ओघं। एवं सुहुमसंप०। आभिणि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०--संजद-सामाइ०-छेदो०-ओधिदं[5]०--सुक्कले०--सम्मादि०-खइग०-उव--सम[6]०

सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। तिर्यञ्चोंमें नरकायु सबसे तीव्र अनुभागवाली है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। देवगति सबसे तीव्र अनुभागवाली है। इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। शेष भङ्ग मूलोघके समान है। इसी प्रकार सब तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और सब पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए। मनुष्यत्रिकमें चार गतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चोंके समान है। शेष भङ्ग मूलोघके समान है। देवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंमें तिर्यञ्चोंके समान अल्पबहुत्व है। औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिके समान भङ्ग है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें

---

१. आ० प्रतौ सव्वएइंदि० विगलिंदिय-पंचकायाणं च इति पाठः। २. आ० प्रतौ सेसं मूलोघं पंचिं० इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः तिण्णिले० इति पाठः। ४. ता० आ० प्रत्योः असण्णीसु इति पाठः। ५. ता० आ० प्रत्योः छेदो० परिहार० ओधिदं इति पाठः। ६. ता० आ० प्रत्योः खइग० वेदग० उवसम० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघं। णवरि अप्पप्पणो पगदीओ णादव्वाओ।

४२५. परिहार०-संजदासंज०-वेदग० सव्वट्ठभंगो। णील-काऊणं सव्वतिव्वाणुभागं देवग०। मणुसग० अणंतगु०। तिरिक्ख० अणंतगु०। णिरय० अणंतगु०। एवं आणु०। सेसाणं किण्ण०भंगो। तेउ० देवभंगो। एवं पम्माए वि। सासणे णिरयभंगो। सम्मामि० वेदग०भंगो। असण्णी० तिरिक्खभंगो।

एवं उक्कस्ससत्थाणअप्पाबहुगं समत्तं।

४२६. जह० पग०। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे सव्वमंदाणुभागं मणपज्ज०। ओधिणा० अणंतगुणब्भहियं[1]। सुद० अणंतगुणब्भ०। आभिणि० अणंत०ब्भहि०। केवल० अणंतगु०।

४२७. सव्वमंदाणुभागं ओधिदं०। अचक्खु० अणंतगु०। चक्खु० अणंतगु०। केवलदं० अणंतगु०। पचला० अणंतगु०। णिद्दा० अणंतगु०। पचलापचला० अणंतगु०। णिद्दाणिद्दा० अणंतगु०। थीणगिद्धि० अणंतगु०।

४२८. सव्वमंदाणुभागं असादा०। सादा० अणंतगुणब्भहि०।

ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए।

४२५. परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है। नील और कापोत लेश्यामें देवगतिका अनुभाग सबसे तीव्र है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार चार आनुपूर्वियोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। पीतलेश्यामें देवगतिके समान भङ्ग है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। सासादनमें नारकियोंके समान भङ्ग है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान भङ्ग है। असंज्ञी जीवोंमें तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

४२६. जघन्य अल्पबहुत्वका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मनःपर्ययज्ञानावरण सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे अवधिज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे श्रुतज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवलज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४२७. अवधिदर्शनावरण सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे अचक्षुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे चक्षुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवलदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्रानिद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४२८. असातावेदनीय सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

---

१. ता० आ० प्रत्योः अणंतगुणब्भदियं इति पाठः। २. आ० प्रतौ सुद० अणंतगुणब्भ० दुगुं अणंतगुणब्भ० आभिणि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२९. सव्वमंदाणुभागं लोभसंजल० । मायासंज० अणंतगु० । माणसंज० अणंतगु० । कोधसंज० अणंतगु० । पुरिस० अणंतगु० । हस्स० अणंतगु० । रदि० अणंतगु० । दुगुं० अणंतगु० । भय० अणंतगु० । सोग० अणंतगु० । अरदि० अणंतगु० । इत्थि० अणंतगु० । णवुंस० अणंतगु० । पच्चक्खाणमाण० अणंतगु० । कोधे विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । एवं अपच्चक्खाणचदुक्क-अणंताणु'०४ । मिच्छ० अणंतगु० ।

४३०. सव्वमंदाणुभागं तिरिक्खाउ० । मणुसाउ० अणंतगु० । णिरयाउ० अणंतगु० । देवाउ० अणंतगु० ।

४३१. सव्वमंदाणुभागं तिरिक्ख० । णिरय० अणंतगु० । मणुस० अणंतगु० । देव० अणंतगु० । सव्वमंदाणुभागं चदुरिं० । तीइंदि० अणंतगु० । बेइंदि० अणंतगु० । एइंदि० अणंतगु० । पंचिं० अणंतगु० । सव्वमंदाणुभागं ओरालि० । वेउव्वि० अणंतगु० । तेज० अणंतगुण० । कम्मइ० अणंतगु० । आहार० अणंतगु० । सव्वमंदाणुभागं

---

४२९. लोभ संज्वलन सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे मायासंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मानसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्रोध-संज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे रतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्रीवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नपुंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रत्याख्यानमानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रत्याख्यान क्रोधमें विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान लोभका अनुभाग विशेष अधिक है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण चार और अनन्तानुबन्धी चारका कहना चाहिए। अनन्तानुबन्धी लोभके अनुभागसे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४३०. तिर्यञ्चायुका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नरकायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४३१. तिर्यञ्चगतिका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। चतुरिन्द्रियजातिका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे त्रीन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे द्वीन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे एकेन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे पञ्चेन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। औदारिकशरीर सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे वैक्रियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे आहारकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। न्यग्रोध-

---

१. आ० प्रतौ अपच्चक्खाणचदुक्कं अणंतगु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णग्गोद० । सादि० अणंतगु० । खुज्ज० अणंतगुणब्भ० । वामण० अणंतगु० । हुंड० अणंतगु० । समचदु० अणंतगु० । सव्वमंदाणुभागं ओरा०अंगो० । वेउव्वि०अंगो० अणंतगु० । आहार०अंगो० अणंतगु० । संघडणं संठाणभंगो । सव्वमंदाणुभागं अप्पसत्थ०४ । पसत्थवण्ण०४ अणंतगु० । यथा गदी तथा आणुपु० । सव्वमंदाणु० उप० । पर० [अणंतगु० ।] उस्सास० अणंतगु० । अगुरु० अणंतगु० । सव्वमंदाणु० अप्पसत्थवि० । पसत्थवि० अणंतगु० । तसादिदसयुगल० सादासादभंगो ।

४३२. सव्वमंदाणु० णीचा० । उच्चा० अणंतगु० । सव्वमंदाणु० दाणंतरा० । एवं परिवाडीए उवरिमाणं अणंतगुणब्भहियं५ ।

४३३. णिरएसु सव्वमंदाणु० पचला० । णिद्दा० अणंतगु० । ओधिदं अणंतगु० । अचक्खु० [अणंतगु०] । चक्खु० अणंतगु० । केवलदंस० [अणंतगु०।] पचलापचला० अणंतगु० । णिद्दाणिद्दा अणंतगु० । थीणगि० अणंतगु० । सव्वमंदाणु० हस्स० । रदि० अणंतगु० । दुगुं० अणंतगु० । भय० अणंतगु० । पुरिस० अणंतगु० । संजलणकोध० अणंतगु० । माणो विसे० । माया० विसे० । लोभो विसे० । सोगो अणंतगु० । अरदि० अणंतगु० ।

परिमण्डल संस्थान सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे स्वातिसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे कुब्जक संस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे वामनसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे हुण्डक संस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे समचतुरस्रसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे आहारक आङ्गोपाङ्गका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। संहननोंका भङ्ग संस्थानोंके समान है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे प्रशस्त वर्णचतुष्कका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। चार गतियोंके समान चार आनुपूर्वी जाननी चाहिए। उपघात सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे परघातका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे उच्छ्वासका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अगुरुलघुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। अप्रशस्त विहायोगतिका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे प्रशस्त विहायोगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। त्रस आदि दस युगलोंका भङ्ग सातावेदनीय-असातावेदनीयके समान है।

४३२. नीचगोत्र सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे उच्चगोत्रका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। दानान्तराय सबसे मन्द अनुभागवाला है। इस प्रकार क्रमसे आगेकी प्रकृतियोंका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४३३. नारकियोंमें प्रचला सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अवधिदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अचक्षुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे चक्षुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवलदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्रानिद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। हास्य सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे रतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे संज्वलनक्रोधका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मानसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मायासंज्वलनका अनुभाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्थि० अणंतगु० । णवुंस० अणंतगु० ! अपच्चक्खाण०४–पच्चक्खाण०४–अणंताणुबं०४ संजलणाए भंगो । मिच्छ० अणंतगु० । सव्वमंदाणु० तिरिक्खाउ० । मणुसाउ० अणंतगु० । सव्वमंदाणु० तिरिक्खग० । मणुसग० अणंतगु० । सेसाणं पगदीणं मूलोघं। एवं सत्तसु पुढवीसु० ।

४३४. सव्वतिरिक्खा णेरइयभंगो । णवरि मोहस्स पच्चक्खाण०४ पुव्वं कादव्वं । सव्वअपज्जत्तयाणं देवाणं सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचकायाणं च णेरइग-भंगो । किंचि विसेसो साधेदव्वो ।

४३५. मणुस०३–पंचिं०-तस०२–पंचमण०-पंचवचि०--कायजोगि--ओरालि०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० ओघं । अवगदं०-कोधादि०४–आभिणि०-सुद०-ओधि०-मण-पज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-सुहुमसं०-चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०-सुक्ले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारए त्ति मूलोघं । ओरालियमि०--कम्मइ०-मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०--तिण्णिले०--अब्भवसि०--मिच्छा०-अणाहारएसु दंसणा-वरणीयं मोहणीयं णेरइगभंगो। सेसाणं मूलोघं। वेउव्वि०-वेउव्वियमि० देवभंगो। आहार०-आहारमि०-परिहार०-संजदासंज०-सम्मामिच्छादि० सव्वट्ठभंगो । तेउले०-पम्मले०

विशेष अधिक है। इससे लोभसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्रीवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नपुंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। अप्रत्याख्यानावरण चार, प्रत्याख्यानावरण चार और अनन्तानुबन्धी चारका भङ्ग संज्वलनके समान है। अनन्तानुबन्धी लोभके अनुभागसे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। तिर्यञ्चायुका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। तिर्यञ्चगतिका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए।

४३४. सब तिर्यञ्चोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि मोहनीयमें प्रत्याख्यानावरण चारको पहले करना चाहिए। सब अपर्याप्त, देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। कुछ विशेषता साध लेनी चाहिए।

४३५. मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अपगतवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और अनाहारकोंमें दर्शनावरणीय और मोहनीयका भङ्ग नारकियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवोंके समान भङ्ग है। आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और सम्यग्मिथ्यादृष्टि

१. ता० प्रतौ पुरिस० णपुंस० । अवगद०, आ० प्रतौ पुरिस० ओघं । अवगद० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणा०-मोह० तिरिक्ख०भंगो। सेसं देवभंगो। वेदग० दंसणा०-मोह० तिरिक्खगदिभंगो। सेसाणं सव्वट्ठभंगो। सासणे णिरयभंगो। असण्णीसु सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो। णामाणं तिरिक्खभंगो।

एवं जहण्णसत्थाणअप्पाबहुगं समत्तं।

४३६. एत्तो परत्थाणअप्पाबहुगं पगदं। दुविधं—ज० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० उक्कस्सओ चदुस्सट्ठिपदिददंडओ कादव्वो भवदि। तं जहा—सव्वतिव्वाणुभागं सादा०। जस०-उच्चा० दो वि तु० अणंतगुणहीणा। देवगदि० अणंतगु०। कम्मइ० अणंतगुण०। तेज० अणंतगु०। [आहार० अणंतगुणही०।] वेउव्वि० अणंतगु०। मणुस० अणंत०। ओरालि० अणंत०। मिच्छ० अणंत०। केवलणा०-केवलदं०-असाद०-विरियंतरा० चत्तारि वि तुल्ला० अणंतगु०। अणंताणु०लोभ० अणंतगु०। माया विसे०। कोधो विसे०। माणो विसे०। संजलणाए लोभ० अणंतगु०। माया विसे०। कोधो विसे०। माणो विसे०। एवं पच्चक्खाण०४-[अपच्चक्खाण०४-]। आभिणि०-परिभो० दो वि तु० अणंतगु०। चक्खु० अणंतगु०। सुद०-अचक्खु०-

---

जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है। पीतलेश्या और पद्मलेश्यामें दर्शनावरण और मोहनीयका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। शेष भङ्ग देवोंके समान है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें दर्शनावरण और मोहनीयका भङ्ग तिर्यञ्चोंके समान है। शेष कर्मोंका भङ्ग सर्वार्थसिद्धिके समान है। सासादनमें नारकियोंके समान भङ्ग है। असंज्ञियोंमें सात कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चोंके समान है।

इस प्रकार जघन्य स्वस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

४३६. इससे आगे परस्थान अल्पबहुत्वका प्रकरण है। वह दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे उत्कृष्ट चौंसठ-पदवाला दण्डक करना चाहिए। यथा—सातवेदनीयका अनुभाग सबसे तीव्र है। इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे आहारकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैक्रियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्य-गतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणाहीन है। इससे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शना-वरण, असातावेदनीय और वीर्यान्तरायके अनुभाग चारों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अनन्ता-नुबन्धी मानका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे संज्वलन मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन मानका अनुभाग विशेष हीन है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण चारका अल्पबहुत्व है। अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोगंतरा० तिण्णि वि तुल्ला० अणंतगु० । ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंतरा० तिण्णि वि तुल्ला० अणंतगु० । मणपज्ज०-थीणगिद्धि०-दाणंतरा० तिण्णि वि तुल्ला० अणंतगु० । णवुंस० अणंत० । अरदि० अणंत० । सोग० अणंत० । भय० [अणंत०] । दुगु० अणंत० । णिद्दाणिद्दा० अणंत० । पचलापचला० अणंत० । णिद्दा० अणंत० । पयला० अणंत० । अजस०-णीचा० दो वि तु० अणंत० । णिरयग० अणंत० । तिरिक्ख० अणंत० । इत्थि० अणंत० । पुरिस० अणंत० । रदि० अणंत० । हस्स० अणंत० । देवाउ० अणंत० । णिरया० अणंत० । मणुसाउ० अणंत० । तिरिक्खाउ० अणंत० । एवं ओघभंगो पंचिं०--तस०२--पंचमण०--पंचवचि०--कायजोगि०--इत्थि०--पुरिस०-णवुंस०--अवगद०--कोधादि०४--मदि०--सुद०--विभंग०--असंज०--चक्खु०--अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-सण्णि-आहारए त्ति ।

४३७. णिरयगदीए सव्वतिव्वाणुभागं सादा० । जस०-उच्चा० अणंतगु० । मणुस० अणंत० । कम्म० अणंत० । तेज० अणंत० । ओरालि० अणंत० । मिच्छ० अणंत० । केवलणा०-केवलदं०-आसादा०-विरियंत० चत्तारि वि तुल्ला० अणंतगु० ।

चक्षुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं । इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं । इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धि और दानान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं । इनसे नपुंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे निद्रानिद्राका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे अयशःकीर्ति और नीचगोत्रका अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं । इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे स्त्रीवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे रतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे नरकायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इस प्रकार ओघके समान पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, अपगतवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

४३७. नरकगतिमें सातावेदनीय सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, असाता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंताणु०लोभो अणंतगु० । माया विसे० । कोधो विसे० । माणो विसे० । संजलण-लोभो अणंतगु० । माया विसे० । कोधो विसे० । माणो विसे० । एवं पञ्चक्खाण०४-अपञ्चक्खाण०४ । आभिणि०-परिभोग० दो वि तुल्ला० अणंतगु० । चक्खु० अणंत-गु० । सुद०-अचक्खु०-भोग० तिण्णि वि तुल्ला० अणंत० । ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तुल्ला० अणंतगु० । मणपज्जव०-थीणगि०-दाणंतरा० तिण्णि वि तुल्ला० अणंत० । णवुंस० अणंत० । अरदि० अणंत० । सोग० अणंत० । भय० अणंत० । दुगुं० अणंत० । णिद्दाणिद्दा० अणंत० । पचलापचला० अणंतगु०ही० । णिद्दा० अणंत० । पचला[1]० अणंत० । णीचा०-अजस० दो वि तु० अणंतगु० । तिरिक्ख० अणंतगु० । इत्थि० अणंत० । पुरिस० अणंत० । रदि० अणंत० । हस्स० अणंत० । मणुसाउ० अणंत० । तिरिक्खाउ० अणंतगु० । एवं सत्तसु[2] पुढवीसु । णवरि [सत्तमीए] मणुसाउ० णत्थि[3]० ।

४३८. तिरिक्खेसु सव्वतिव्वाणु० सादा० । जस०-उच्चा० अणंतगु० । देव-

वेदनीय और वीर्यान्तरायके अनुभाग चारों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी मानका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे संज्वलन मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन मानका अनुभाग विशेष हीन है। इसी प्रकार क्रमसे प्रत्याख्यानावरण चार और अप्रत्याख्यानावरण चारका अल्पबहुत्व है। अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे चक्षुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धि और दानान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे निद्रानिद्राका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे नीचगोत्र और अयशःकीर्तिके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे स्त्रीवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे रतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें मनुष्यायु नहीं है।

४३८. तिर्यञ्चोंमें सातावेदनीय सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्र

१. आ० प्रतौ णिद्दाणिद्दा० अणंत० पचला० इति पाठः। २. ता० प्रतौ सत्तसेसु (सत्तसु) इति पाठः। ३. आ० प्रतौ मणुसाउ० इत्थि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गदि० अणंत० । कम्मइ० अणंत० । तेज० अणंत० । वेउव्वि० अणंत० । मिच्छ० अणंत० । सेसं ओघं याव णिरयग० अणंतगु० । मणुसग० अणंतगु० । ओरालि० अणंतगु० । तिरिक्ख० अणंतगु० । सेसं ओघं याव हस्स० अणंतगु० । णिरयाउ० अणंतगु० । देवाउ० अणंतगु० । मणुसाउ० अणंतगु० । तिरिक्खाउ० अणंतगु० । एवं पंचिंदियतिरिक्ख०३–मणुस०३ ।

४३९. पंचिं०तिरि०अपज्जत्तगेसु सव्वतिव्वाणुभागं मिच्छ० । सादा० अणंतगु० । जस०-उच्चा० दो वि तु० अणंतगु० । मणुसग० अणंत० । कम्मइ अणंत० । तेज० अणंत० । ओरा० अणंत० । केवलणा०-केवलदं०-असादा०-विरयंत० चत्तारि वि तु० अणंतगु० ; उवरि ओघं याव मणुसाउ० अणंतगु० । तिरिक्खाउ० अणंत० । एवं सव्वअपज्जत्तगाणं सव्वएइंदि०-सव्वविगलिंदि०-पंचकायाणं च ।

४४०. देवाणं णिरयभंगो । ओरालि० मणुसभंगो । ओरा०मि० सव्वतिव्वाणुभा० साद० । जस०-उच्चा० दो वि० अणंत० । देवग० अणंत० । कम्मइ० अणंत० । तेज० अणंत० । वेउव्वि० अणंत० । मिच्छ० अणंत० । सेसं पंचिंदि०तिरि०भंगो ।

के अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं । इनसे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे वैक्रियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । शेष भङ्ग नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।इस स्थानके प्राप्त होने तक ओघके समान है । आगे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । शेष भङ्ग, हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इस स्थानके प्राप्त होने तक ओघके समान है । आगे नरकायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिक और मनुष्यत्रिकके जानना चाहिए ।

४३९. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, असातावेदनीय और वीर्यान्तरायके अनुभाग चारों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं । आगे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।इस स्थानके प्राप्त होनेतक ओघके समान भङ्ग है । इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए ।

४४०. देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सातावेदनीय सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं । इनसे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे तैजस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थि ।

४४१. वेउव्वि० णेरइगभंगो । एवं वेउव्वियमि० । आहार०-आहारमि० सव्व-तिव्वाणु० साद० । जस०-उच्चा० अणंत० । देव० अणंत० । कम्म० अणंत० । तेज० अणंत० । वेउव्वि० अणंत० । केवलणा०--केवलदंस०-असाद०-विरियंत० चत्तारि वि अणंतगु० । संजलणलोभो अणंत० । माया विसे० । कोधो विसे० । माणो विसे० । आभिणि०--परिभोग० दो वि तु० अणंत० । चक्खु० अणंत० । सुद०--अचक्खु०-भोगंत० तिण्णि वि तु० अणंत० । ओधिणा०–ओधिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तु० अणंत० । मणपज्ज०--दाणंत० दो वि तु० अणंत० । पुरिस० अणंत० । अरदि० अणंत० । सोग० अणंत० । भय० अणंत० । दुगुं० अणंत० । णिद्दा० अणंत० । पचला० अणंत० । अजस० अणंत० । रदि० अणंत० । हस्स० अणंत० । देवाउ० अणंत० । एवं मणपज्ज०-संज०-सामाइय-च्छेदो०-परिहार० । एदेसु आहारसरीरं अत्थि । संजदासंजद० परिहारभंगो । णवरि पचक्खाण०४ अत्थि ।

शरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैक्रियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। शेष भङ्ग पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है। इस मार्गणामें इतना ही अल्पबहुत्व है।

४४१. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्र-काययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें साता-वेदनीय सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणाहीन है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैक्रियिकशरीरका अनु-भाग अनन्तगुणा हीन है। इससे केवलज्ञानावरण,केवलदर्शनावरण,असातावेदनीय और वीर्यान्तरायके अनुभाग चारों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे संज्वलन लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे संज्वलन मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन मानका अनुभाग विशेष हीन है। इससे आभिनिबोधिक ज्ञानावरण और परि-भोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इससे चक्षुदर्शनावरणका अनु-भाग अनन्तगुणा हीन है। इससे श्रुतज्ञानावरण,अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण,अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अयशः-कीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे रतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इनमें आहारकशरीर है। संयतासंयत जीवोंका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें प्रत्याख्यानावरण चार हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४२. कम्मइ० ओघं। णवरि चदुआउ० णिरयगदिदुगं आहारसरीरं वज्ज सेसं कादव्वं। एवं अणाहार०। आभिणि०-सुद०-ओधि०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सासण०--सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ओघं। णवरि अप्पप्पणो पगदिविसेसो णादव्वो। तेउ० ओघं। णवरि णिरयगदिदुगं वज्ज। एवं पम्माए। सुक्काए ओघं। णवरि दोआउ० णिरयगदिदुगं तिरिक्खगदितिगं च वज्ज। असण्णीसु सव्वतिव्वाणुभागं मिच्छ०। साद० अणंत०। जस०-उच्चा० अणंत०। देव० अणंत०। कम्म० अणंत०। तेज० अणंत०। वेउव्वि० अणंत०। उवरि तिरिक्खोघं।

एवं उक्कस्सपरत्थाणअप्पाबहुगं समत्तं।

४४३. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सव्वमंदाणु० लोभसंज०। [मायासंजल०] अणंतगुणब्भहियं। माणसंज० अणंतगु०। कोधसंज० अणंतगु०। मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० अणंतगु०। ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तु० अणंतगु०। सुदणा०-अचक्खु०-भोगंतरा० तिण्णि वि तु० अणंतगु०। चक्खु० अणंत०। आभिणि०-परिभो० दो वि तु० अणंतगु०। विरियंत० अणंत०।

---

४४२. कार्मणकाययोगी जीवोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें चार आयु, नरकगतिद्विक और आहारकद्विकको छोड़कर शेषका अल्पबहुत्व कहना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतिविशेष जान लेना चाहिए। पीतलेश्यामें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि नरकगतिद्विकको छोड़कर कहना चाहिए। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। शुक्ललेश्यामें ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि दो आयु, नरकगतिद्विक और तिर्यञ्चगतित्रिकको छोड़कर कहना चाहिए। असंज्ञी जीवोंमें मिथ्यात्व सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैक्रियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। आगे सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट परस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

४४३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे लोभसंज्वलन सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे मायासंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मानसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्रोधसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण, और भोगान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे चक्षुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे वीर्यान्तरायका अनुभाग अनन्तगुणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरिस० अणंत० । हस्स० अणंत० । रदि० अणंत० । दुगुं० अणंत० । भय० अणंत० । सोग० अणंत० । अरदि० अणंत० । इत्थि० अणंत० । णवुंस० अणंत० । केवलणा०-केवलदं० दो वि तु० अणंत० । पयला० अणंत० । णिद्दा० अणंत० । पच्चक्खाणमाणो अणंत० । कोधो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । एवं अपच्चक्खाण०४ । पचलापचला अणंतगु० । णिद्दाणिद्दा अणंतगु० । थीणगि० अणंत० । अणंताणु०माणो अणंतगु० । कोधो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । मिच्छ० अणंत० । ओरा० अणंत० । वेउव्वि० अणंत० । तिरिक्खाउ० अणंत० । मणुसाउ० अणंत० । तेजा० अणंत० । कम्मइ० अणंत० । तिरिक्ख० अणंत० । णिरय० अणंत० । मणुस० अणंत० । देवग० अणंत० । णीचा० अणंत० । अजस० अणंत० । असाद० अणंत० । जस०-उच्चा० दो वि तु० अणंत० । साद० अणंत० । णिरयाउ० अणंत० । देव० अणंत० । आहार० अणंत० ।

अधिक है । इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे रतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे स्त्रीवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे नपुंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं । इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण मायाका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण लोभका अनुभाग विशेष अधिक है । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण चारके अनुभागका अल्पबहुत्व है । आगे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे निद्रानिद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे अनन्तानुबन्धी मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे अनन्तानुबन्धी लोभका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे वैक्रियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे नीचगोत्रका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे अयशःकीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे असातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं । इससे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे नरकायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे आहारकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४४. णिरएसु सव्वमंदाणु० हस्स० । रदि० अणंत० । दुगुं० अणंत० । भय० अणंत० । पुरिस० अणंत० । माणसंज० अणंत० । कोधसंज० विसे० । मायासंज० विसे० । लोभसंज० विसे० । सोग० अणंत० । अरदि० अणंत० । इत्थि० अणंत० । णवुंस० अणंत० । पचला० अणंत० । णिद्दा० अणंत० । मणपज्जव०-दाणंत० दो वि० तु० अणंत० । ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तु०अणंत० । सुद०-अचक्खु०-भोगंत० तिण्णि वि तु० अणंत० । चक्खु० अणंत० । आभिणि०-परिभोग० दो वि तु० अणंत० । अपच्चक्खाणमाणो अणंत० । कोधो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । एवं पच्चक्खाणा०४ । विरियंत० अणंत० । केवलणा०-केवलदंस० दो वि तु० अणंत० । पचला-पचला अणंत० । णिद्दाणिद्दा० अणंत० । थीणगि० अणंत० । अणंताणु०माणो अणंत० । कोधो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । मिच्छ० अणंत० । ओरालि० अणंत० । तेज० अणंत० । कम्मइ० अणंत० । तिरिक्ख० अणंत० । मणुस० अणंत० ।

४४४. नारकियोंमें हास्य सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे रतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मानसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्रोधसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे माया संज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे लोभसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्रीवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नपुंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे चक्षुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका अनुभाग विशेष अधिक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अल्पबहुत्व है। प्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागसे वीर्यान्तरायका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्रानिद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी लोभ का अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णीचा० अणंत० । अजस० अणंत० । असाद० अणंत० । जस०-उच्चा० दो वि तु० अणंत० । साद० अणंत० । तिरिक्खाउ० अणंत० । मणुसाउ० अणंत० । एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि छसु उवरिमासु णीचा अजस० ऍक्कदो भाणिदव्वं ।

४४५. तिरिक्खेसु पढमपुढविभंगो याव आभिणि०-परिभोगंतरा० दो वि तु० अणंत० । पच्चक्खाणमाणो अणंत० । कोधो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । विरियंत० अणंत० । केवलणा०-केवलदं० दो वि तु० अणंत० । अपच्चक्खाण०माणो अणंत० । कोधो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । उवरि ओघं । एवं पंचिं०-तिरि०३ । णवरि एदेसु णीचा० अजस० ऍक्कदो भाणिदव्वा ।

४४६. पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्जत्त-विगलिंदि०-पंचिंदि०-तस०अपज्ज० तिण्हं[1] कायाणं च पढमपुढविभंगो । णवरि दोआउ० ओघं । एवं एइंदियाणं पि । णवरि तिरिक्खोघं णीचा० अणंत० । अजस० अणंत० । एवं तेउ-वाउणं पि । णवरि मणुसगदिचदुक्कं वज्ज । देवाणं णेरइगभंगो । मणुस०३--पंचिंदि०--तस०२--पंचमण०-

---

अधिक है । इससे नीचगोत्रका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे अयशःकीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे असातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य हो कर अनन्तगुणे अधिक हैं । इनसे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि पहलेकी छह पृथिवियोंमें नीचगोत्र और अयशःकीर्ति को एकसाथ कहना चाहिए ।

४४५. तिर्यञ्चोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तराय के अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इस स्थानके प्राप्त होने तक पहली पृथिवीके समान भंग है । इससे प्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण मायाका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण लोभका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे वीर्यान्तरायका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे आगे ओघके समान भंग है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें नीचगोत्र और अयशःकीर्ति एकसाथ कहने चाहिए ।

४४६. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्त, मनुष्यअपर्याप्त, विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियअपर्याप्त, त्रस-अपर्याप्त और तीन स्थावर कायिक जीवोंमें प्रथम पृथिवीके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि इनमें दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार एकेन्द्रियोंमें भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान नीचगोत्रका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे अयशःकीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें मनुष्यगतिचतुष्कको छोड़कर कहना चाहिए । देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों

---

1. ता० आ० प्रत्योः चदुण्हं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचवचि०--कायजोगि–ओरालि० ओघं। णवरि मणुसेसु णीचा०--अजस० एक्कदो भाणिदव्वं।

४४७. ओरालियमि० णेरइगभंगो याव ओरा० अणंत०। तिरिक्खाउ० अणंत०। मणुसाउ० अणंत०। तेजा० अणंत०। कम्म० अणंत०। तिरिक्ख० अणंत०। मणुस० अणंत०। णीचा० अणंत०। अजस० अणंत०। असाद० अणंत०। जस०-उच्चा० दो वि तु० अणंत०। साद० अणंत०। वेउव्वि० अणंत०। देव० अणंत०।

४४८. वेउव्वि०-वेउव्वियमि० णिरयोघं। आहार०-आहारमि० सव्वट्ठभंगो। णवरि अट्ठक० णत्थि। कम्मइ० ओरालियमिस्सभंगो। इत्थि०-पुरिस० सव्वमंदाणु० कोधसंज०। माणसंज० [विसे०]। मायासंज० विसे०। लोभसंज० विसे०। मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० अणंत०। उवरि ओघं। णवुंसगे ओघं। णवरि संजलणाए इत्थि०भंगो। अवगद० ओघं। साद० अणंत०।

४४९. कोध० [सव्व०-] मंदाणु० कोधसंज०। माणो विसे०। माया

मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्योंमें नीचगोत्र और अयशःकीर्ति एकसाथ कहने चाहिए।

४४७. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इस स्थानके प्राप्त होने तक नारकियोंके समान भङ्ग है। इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नीचगोत्रका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अयशःकीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे असातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे वैक्रियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४४८. वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य नारकियोंके समान भङ्ग है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें आठ कषाय नहीं हैं। कार्मणकाययोगी जीवोंमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवों क्रोधसंज्वलन सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे मानसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मायासंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे लोभसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। आगे ओघके समान भङ्ग है। नपुंसकवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनोंका भङ्ग स्त्रीवेदीके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। मात्र सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है,यहाँ तक कहना चाहिए।

४४९. क्रोधकषायमें क्रोधसंज्वलन सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे मानसंज्वलनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसे० । लोभो विसे० । मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० अणंत० । उवरि ओघं । माणे सव्वमंदाणु० माणसंज० । मायासंज० विसे० । लोभसं० विसे० । कोधसं० अणंतगुण० । मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० अणंत० । उवरि ओघं । मायाए सव्वमंदाणु० मायासंज० । लोभसंज० वि० । माणसंज० अणंत० । कोधसंज० अणंत० । मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० अणंत० । उवरि ओघं । लोभे ओघं । मदि०-सुद० णेरइयभंगो याव मिच्छत्तं । उवरि ओघं । एवं विभंग०-असंज०-किण्ण-णील-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि त्ति । आभिणि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-उवसम० ओघभंगो । णवरि सम्मत्तपाओग्गाओ संजमपाओग्गाओ च पगदीओ णादव्वाओ। परिहार० आहार०भंगो। णवरि आहारसरीर० सव्वुवरि अणंत० । सुहुमसंप० अवगद०भंगो । संजदासंज० णेरइगभंगो याव आभिणि०-परिभो० दो वि तु० अणंत० । पच्चक्खाणमाणो अणंत० । उवरि ओघं । चक्खु०-अचक्खु०-सुक०-भवसि०-सण्णि०-आहारए त्ति ओघं ।

४५०. तेउ० देवभंगो याव आभिणि०-परिभो० दो वि तु० अणंत० । पच्च-

अनुभाग विशेष अधिक है । इससे मायासंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे लोभसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं । आगे ओघके समान है । मानकषायमें मानसंज्वलन सबसे मन्द अनुभागवाला है । इससे मायासंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे लोभसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे क्रोधसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । मायाकषायमें मायासंज्वलन सबसे मन्द अनुभागवाला है । इससे लोभसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे मानसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे क्रोधसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं । आगे ओघके समान है । लोभकषायमें ओघके समान है । मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्वके स्थानके प्राप्त होने तक नारकियोंके समान भङ्ग है । आगे ओघके समान है । इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वप्रायोग्य और संयमप्रायोग्य प्रकृतियाँ जाननी चाहिए । परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें आहारककाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि इनमें आहारकशरीरके अनुभागको सबके ऊपर अनन्तगुणा अधिक कहना चाहिए । सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है । संयतासंयत जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं । इस स्थानके प्राप्त होने तक नारकियोंके समान भङ्ग है । इनसे प्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । आगे ओघके समान भङ्ग है । चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है ।

४५०, पीतलेश्यामें आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खाणमाणो अणंत० । कोधो विसे० । माया० विसे० । लोभो विसे० । विरियंत० अणंत० । केवलणा०-केवलदं० दो वि तु० अणंत० । अपच्चक्खाणमाणो अणंत० । कोधो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । पचला अणंत० । णिद्दा अणंत० । उवरि ओघं । एवं पम्माए । वेदग० तेउ०भंगो । एवं सम्मामि० । सासणे णेरइगभंगो । असण्णीसु तिरिक्खोघं । अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं अप्पाबहुगं समत्तं ।

एवं चदुवीसमणियोगद्दारं समत्तं ।

भुजगारबंधो

४५१. एत्तो भुजगारबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—जाणि एण्हिं अणुभागफद्दगाणि बंधदि अणंतरोसक्काविदविदिक्कंते समए अप्पदरादो बहुदरं बंधदि त्ति एसो भुजगारबंधो णाम० । अप्पदरबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—जाणि एण्हिं अणुभागफद्दगाणि बंधदि अणंतरउस्सक्काविदविदिक्कंते समए बहुदरादो अप्पदरं बंधदि त्ति एस अप्पदरबंधो

तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं।इस स्थानके प्राप्त होने तक देवोंके समान भङ्ग है । इनसे प्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण मायाका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण लोभका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे वीर्यान्तिरायका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । आगे ओघके समान भङ्ग है । इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए । वेदकसम्यक्त्वमें पीतलेश्याके समान भङ्ग है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वमें जानना चाहिए । सासादनसम्यक्त्वमें नारकियोंके समान भङ्ग है । असंज्ञियोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है । अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए ।

भुजगारबन्ध

४५१. इससे आगे भुजगारबन्धका प्रकरण है । उसमें यह अर्थपद है—जो इनके अनुभागस्पर्धकोंको बांधता है, वह जब अनन्तर व्यतिक्रान्त समयमें बँधनेवाले अल्पतरसे इस समयमें बहुतरको बाँधता है, तब वह भुजगारबन्ध कहलाता है । अल्पतरबन्धके विषयमें यह अर्थपद है—इनके जो अनुभागस्पर्धक बाँधता है, वह जब अनन्तर पिछले समयमें बँधनेवाले बहुतरसे

१. ता० प्रतौ अणंत० । केवलदं० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाम०। अवट्ठिदबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—जाणि एण्हिं अणुभागफद्दगाणि बंधदि अणंतरओसक्काविद-उस्सक्काविदविदिक्कंते समए तत्तियाणि चेव बंधदि त्ति एसो अवट्ठिदबंधो णाम०। अवत्तव्वबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—अबंधादो बंधदि त्ति एसो अवत्तव्वबंधो णाम०। एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा—समुक्कित्तणा याव अप्पाबहुगे त्ति।

समुक्कित्तणाणुगमो

४५२. समुक्कित्तणाए दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वपगदीणं अत्थि भुजगारबंधो अप्पद० अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधो य। एवं ओघभंगो मणुस०३—पंचिं०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरा०-आभिणि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मा०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारए त्ति।

४५३. णेरइएसु धुविगाणं अत्थि भुज० अप्पद० अवट्ठि०। सेसाणं ओघभंगो। ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारएसु धुवियाणं देवगदि०४-तित्थ० अवत्तव्व० णत्थि। वेउव्वि०-वेउव्वियमि० तित्थयं० अवत्तव्वया णत्थि धुवियाणं च। इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० अवत्तव्वगा वज्ज० तिण्णिपदा,

---

इस समयमें अल्पतरको बाँधता है, तब अल्पतरबन्ध कहलाता है। अवस्थितबन्धके विषयमें यह अर्थपद है—इनके जो अनुभाग स्पर्धक बाँधता है,वह जब अनन्तर पिछले और अगले समयमें उतने ही बाँधता है,तब वह अवस्थितबन्ध कहलाता है। अवक्तव्यबन्धके विषयमें यह अर्थपद है—जो अबन्धसे बन्ध करता है, वह अवक्तव्यबन्ध कहलाता है। इस अर्थपदके अनुसार यहाँ ये तेरह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। यथा—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक।

समुत्कीर्तनानुगम

४५२. समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंका भुजगारबन्ध है, अल्पतरबन्ध है, अवस्थितबन्ध है और अवक्तव्यबन्ध है। इसी प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

४५३. नारकियोंमें ध्रुव प्रकृतियोंका भुजगारबन्ध, अल्पतरबन्ध और अवस्थितबन्ध है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतियोंका अवक्तव्यबन्ध नहीं है। वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यबन्धक जीव नहीं हैं। तथा ध्रुवप्रकृतियोंके भी अवक्तव्यबन्धक जीव नहीं हैं। स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और

---

१. ता० प्रतौ वेउव्वियमि० वेउव्वियमि० (?) तित्थय० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसाणं चत्तारिपदा। अवगद० सव्वाणं अत्थि भुज०-अप्पद०-अवत्तव्वबंधगा य। कोधे इत्थि०भंगो। माणे पंचणा०-चदुदंस०-तिण्णिसंज०-पंचंत० अत्थि तिण्णि पदा। एवं मायाए। णवरि दोसंज०। सेसं ओघं। लोभे पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० अत्थि तिण्णिपदा। सेसं ओघं। सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चदुदंस०-लोभसंज०-उच्चा०-पंचंत० अत्थि तिण्णिपदा। सेसं ओघं। सुहुमसं० सव्वाणं अत्थि भुज०-अप्पद०। सेसाणं णिरयभंगो। किंचि विसेसो णादव्वो।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता[1]।

सामित्ताणुगमो

४५४. सामित्ताणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदु-संज०-भय-दु०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० कस्स०? अण्ण०। अवत्तव्वबंधो कस्स? अण्ण० उवसामणादो पडि-पदमाणस्स मणुसस्स वा मणुसिणीए वा पढमसमयदेवस्स वा। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-तिण्णिपदा णाणावरणभंगो। अवत्तव्व० कस्स? अण्ण० असंजमसम्म-

नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यबन्धको छोड़कर तीन पद हैं तथा शेष प्रकृतियोंके चार पद हैं। अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगारबन्धक, अल्पतरबन्धक और अवक्तव्यबन्धक जीव हैं। क्रोधकषायमें स्त्रीवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। मानकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, तीन संज्वलन और पाँच अन्तरायके तीन पद हैं। इसी प्रकार मायाकषायमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ दो संज्वलन कहने चाहिए। शेष भङ्ग ओघके समान है। लोभकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके तीन पद हैं। शेष भङ्ग ओघके समान है। सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभ संज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पद हैं। शेष भङ्ग ओघके समान है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपद हैं। शेष मार्गणाओंका भङ्ग नारकियोंके समान है। किञ्चित् विशेषता है, वह जान लेनी चाहिए।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

स्वामित्वानुगम

४५४. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर जीव स्वामी है। अवक्तव्य बन्धका स्वामी कौन है? उपशमश्रेणिसे गिरनेवाला अन्यतर मनुष्य, मनुष्यिनी या प्रथम समयवर्ती देव स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञाना-वरणके समान है। इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर जीव असंयतसम्यक्त्वसे,

१. ता० प्रतौ एवं समुक्कित्तिणा समत्ता इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्तादो संजमादो संजमासंजमादो सम्मामिच्छत्तादो वा परिवदमाणयस्स पढमसमयमिच्छा-दिट्ठिस्स वा सासणसम्मा० वा। णवरि मिच्छा० असंजमादो[1] संजमासंजमादो संज-मादो[2] वा सासण० सम्मामि० वा परिवदमा० पढमसमयमिच्छादि०। सादासाद०-सत्तणोक०--चदुगदि--पंचजादि--दोसरीर--छस्संठा०--दोअंगो०--छस्संघ०--चदुआणु०-दोविहा०-तसथावरादिदसयुग०-दोगो० तिण्णिपदा णाणावरणभंगो। अवत्तव्व० कस्स०? अण्ण० परियत्तमाणयस्स पढमसमयबंधमाणयस्स। अपच्चक्खाण०४ तिण्णिपदा णाणा०-भंगो। अवत्त० कस्स०? अण्ण० संजमादो वा संजामासंज० परिवद० पढमसम० मिच्छादि० सासण० सम्मामि० असंजदसम्मा०। पच्चक्खाण०४ तिण्णिपदा णाणा०-भंगो। अवत्त० कस्स०? अण्ण० संजमादो परिवद० पढमस० मिच्छा० सासण० सम्मामि० असंजद० संजदासंजदस्स वा। चदुआउ०-आहारदुग-पर०-उस्सा०-उज्जो०-तित्थय० तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० कस्स०? अण्ण० पढमसमयबंधगस्स। एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-लोभक०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि-आहारए त्ति। णवरि मणुस०-मण०-वचि०-

संयमसे, संयमासंयमसे और सम्यग्मिथ्यात्वसे गिरकर प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि सासादन-सम्यग्दृष्टि जीव है, वह उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यबन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है? असंयमसे, संयमासंयमसे, संयमसे, सासादनसे और सम्यग्मिथ्यात्वसे गिरकर जो प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि है, वह मिथ्यात्वके अवक्तव्यबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, चार गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और दो गोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है? जो परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला प्रथम समयमें इनका बन्ध करता है, वह इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है? संयम या संयमासंयमसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि अन्यतर जीव इनके अवक्तव्य-बन्धका स्वामी है। प्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है? संयमसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत अन्यतर जीव इनके अवक्तव्य-बन्धका स्वामी है। चार आयु, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत और तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है? प्रथम समयमें बन्ध करनेवाला अन्यतर जीव इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक-काययोगी, लोभकषायी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मनुष्य, मनोयोगी, वचनयोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें

१. ता० आ० प्रत्योः सम्मा० वा मिच्छा० णवरि असंजमादो इति पाठः। २. ता० प्रतौ असंज-मादो संजमादो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरालि० पढमदंड० अवत्त० कस्स०? अण्ण० उवसमणादो परिवद० पढमस० मणुसस्स वा मणुसणीए वा।

४५५. णेरइएसु धुविगाणं भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० कस्स० ? अण्ण० । थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अणंताणु०४ तिण्णिपदा ओघं । अवत्त० कस्स० ? अण्ण० सम्मत्त० सम्मामि० परिवद० पढमसम० मिच्छा० सासण०। णवरि मिच्छा० अवत्त० कस्स०? अण्ण० सम्म० सासण० सम्मामि० वा परिवद० पढमस० मिच्छा० । सेसा० ओघं । एवं सव्वणेरइगाणं । णवरि सत्तमाए तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०--णीचा० थीणगि०-भंगो । मणुस०-मणुसाणु०--उच्चा० तिण्णिपदा णाणा०भंगो । अवत्त० कस्स० ? अण्ण० पढम० असंज० सम्मामि० ।

४५६. तिरिक्खेसु धुविगाणं णेरइगभंगो । सेसं ओघं । णवरि संजमो णत्थि। सेसाणं सव्वाणं अणाहारए त्ति ओघं। कायाणं साधेदव्वं । णवरि तेउलेस्साए इत्थि०-पुरिस० भुज०-अप्प०--अवट्ठि०--अवत्त० कस्स० ? अण्णद० तिगदियस्स० । णवुंस० तिण्णिपदा अवत्त० कस्स०? अण्ण० देवस्स । तिरिक्खगदि-मणुसगदि० तासिं आणु० तिण्णिपदा देवस्स० । अवत्त० क० ? अण्ण० देवस्स परियत्तमाणयस्स । ओरालि०

प्रथम दण्डकके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है? उपशमश्रेणीसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती अन्यतर मनुष्य और मनुष्यिनी प्रथम दण्डकके अवक्तव्यबन्धका स्वामी है।

४५५. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित बन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर नारकी स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके तीन पदोंका भंग ओघके समान है। अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है? सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वसे गिरनेवाला अन्यतर प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है? सम्यक्त्व, सासादनसम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वसे गिरनेवाला अन्यतर प्रथमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि नारकी मिथ्यात्वके अवक्तव्यबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार सब नारकियोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर प्रथम समयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी है।

४५६. तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। शेष भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके संयम नहीं है। अनाहारक मार्गणा तक शेष सबका भङ्ग ओघके समान है। पाँच स्थावरकायवालोंका साध लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पीतलेश्यामें स्त्रीवेद और पुरुषवेदके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है। अन्यतर तीन गतिका जीव स्वामी है। नपुंसकवेदके तीन पदोंका और अवक्तव्यपदका स्वामी कौन है? अन्यतर देव स्वामी है। तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और उनकी आनुपूर्वियोंके तीन पदोंका स्वामी देव है। अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णिपदा अण्णदर० । अवत्त० कस्स० ? अण्ण० पढमस० देवस्स । एवं पम्माए वि । सुक्कलेस्साए तिण्णिवेदाणं अवत्त० कस्स० ? अण्ण० देवस्स ।

एवं सामित्तं समत्तं ।

कालाणुगमो

४५७. कालाणु० दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सव्वपगदीणं भुज०-अप्प०-बंधगा केवचिरं कालादो होदि ? जह एगसम०, उ० अंतो० । अवट्ठि० केव० ? ज० ए०, उ० सत्तट्ठ सम० । णवरि चदुआउ० अवट्ठि० ज० ए०, उ० सत्त सम० । अवत्त० सव्वपगदीणं एग०, एवं अणाहारए त्ति णेदव्वं । एवं णिरयादिसु अवट्ठिद-कालो अट्ठसमया भवंति । कम्मइ०-अणाहारएसु तिण्णि समया भवंति ।

एवं कालं समत्तं[1] ।

अन्यतर देव अवक्तव्यबन्धका स्वामी है । औदारिकशरीरके तीन पदोंका अन्यतर देव स्वामी है । अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रथम समयवर्ती देव स्वामी है । इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए । शुक्ललेश्यामें तीन वेदोंके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव स्वामी है ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ ।

कालानुगम

४५७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थित पदके बन्धक जीवका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात व आठ समय है । इतनी विशेषता है कि चार आयुके अवस्थित पदके बन्धक जीवका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है । सब प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए । इसी प्रकार नरकादिमें अवस्थितबन्धका काल आठ समय होता है । मात्र कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें तीन समय होता है ।

विशेषार्थ—अनुभागबन्धमें वृद्धि और हानिके छह-छह स्थान हैं । उनमेंसे यद्यपि पाँच वृद्धियों और पाँच हानियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । पर अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीसे यहाँ सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । अवस्थित अनुभागबन्धके कारणभूत परिणाम कम से कम एक समय तक और अधिकसे अधिक सात-आठ समय तक होते हैं, इसलिए अवस्थित अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सात-आठ समय कहा है । पर आयुकर्मके अवस्थित अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल सात समय ही है, क्योंकि आयु-कर्मके अवस्थित अनुभागबन्धके योग्य परिणाम इतने कालसे अधिक समय तक नहीं होते । सब

१. ता० प्रतौ एवं कालं समत्तं इति पाठो नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतराणुगमो

४५८. अंतराणु० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४—अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प० बंधंतरं केव० होदि? ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा। अवत्त० ज० अंतो०, उ० अद्धपो०। थीणगि०--मिच्छ०--अणंताणु०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० बेछावट्ठि० देसू०। अवट्ठि०-अवत्त० णाणा०भंगो। सादासाद०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० ज० उ० अंतो०। अट्ठक० भुज०—अप्प० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। अवट्ठि०—अवत्त० णाणा०भंगो। इत्थि० अवत्त० ज० अंतो०, उ० बेछावट्ठि० दे०। सेसाणं पदाणं थीणगिद्धिभंगो। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थवि०-दुस्सर-अणादे० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तिण्हं पि बेछावट्ठिसाग० सादि० तिण्णि पलि० देसू०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। पुरिस० भुज०--अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० बेछावट्ठि० सादि०। तिण्णिआउ[1]०-

प्रकृतियोंके अवक्तव्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, यह स्पष्ट ही है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

अन्तरानुगम

४५८. अन्तरानुगम दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरबन्धका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, और अनन्तानुबन्धी चारके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागरप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इनके अवक्तव्यबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। स्त्रीवेदके अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागरप्रमाण है। शेष पदोंका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनों ही का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छियासठ सागरप्रमाण है। अवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पुरुषवेदके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरण

१. ता० आ० प्रत्योः सादि० तिण्णिआउ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वियछ० भुज०-अप्प० अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० चदुण्णं पि अणंतकालं०। तिरिक्खाउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०[1], उ० सागरोवमसदपुध०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु० भुज०--अप्प० ज० ए०, उ० तेवट्ठि०सा०सदं०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० असंखेंज्जा लोगा। मणुस०--मणुसाणु०--उच्चा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० सव्वाणं असंखेंज्जा लोगा। चदुजा०--आदाव०-थावरादि०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं। अवट्ठि० णाणा०-भंगो। पंचिं०-पर०-उस्सा०-तस०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं। ओरा० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० सादि०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० अणंतका०। आहार०२ भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० अद्धपोंग्गल०। समचदु०-पसत्थवि०--सुभग-सुस्सर-आदें० तिण्णि पदा

के समान है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छियासठ सागरप्रमाण है। तीन आयु और वैक्रियिक छहके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और चारों ही पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तिर्यञ्चायुके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनों ही पदोंका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण है। अवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागरप्रमाण है। अवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, और उच्चगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है। अवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है। औदारिकशरीरके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। अवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। आहारकद्विकके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके तीन पदोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियजातिके समान है। अवक्तव्यबन्धका

१. ता० प्रतौ अवत्त० अंतो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदियजादिभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० बेछावट्ठिसा० सादि० तिण्णि पलि० देसू०। ओरालि०अंगो०-वज्जरि० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ओरालि०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं सा० सादि०। उज्जो० तिण्णि पदा तिरिक्खगदिभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेवट्ठि०सदं। तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं सा० सादि० दो पुव्वकोडीओ दोहि वासपुधत्तेहि ऊणियाओ सादिरेयं। णीचा० भुज०--अप्प०--अवट्ठि० णवुंसगभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० असंखेज्जा लोगा।

जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छियासठ सागरप्रमाण है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका भङ्ग औदारिकशरीरके समान है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। उद्योतके तीन पदोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर दोनों पदोंका दो वर्षपृथक्त्व कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। नीचगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

विशेषार्थ—ओघसे सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कह आये हैं, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंके इन पदोंका यह अन्तर कहा है,वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। यतः भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य काल और जघन्य अन्तर एक समय कहा है।अतः अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय बन जाता है तथा अनुभागबन्धके योग्य कुल परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। अतः अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है; क्योंकि सब परिणामोंके होनेके बाद अवस्थितबन्धके योग्य परिणाम अवश्य प्राप्त होते हैं, ऐसा नियम है। आगे जिन प्रकृतियोंके इस पदका यह अन्तर कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। जो दो बार उपशमश्रेणिपर चढ़कर दो बार इन प्रकृतियोंका अबन्धक होकर पुनः बन्ध करता है, उसके इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यबन्धका अन्तर प्राप्त होता है। किन्तु उपशमश्रेणि पर आरोहण अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे भी सम्भव है और कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनके अन्तरसे भी सम्भव है। अतः इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदिका प्रकृतिबन्धसम्बन्धी उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागरप्रमाण है। इसलिए इन प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है, क्योंकि इतने काल तक इन प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे भुजगार आदि पद कैसे सम्भव हो सकते हैं? तथा इनके अवस्थित और अवक्तव्यबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है सो यहाँ अवक्तव्यबन्धका अन्तर अन्तर्मुहूर्त और कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनके अन्तरसे दो बार सम्यक्त्वपूर्वक मिथ्यात्वमें ले जाकर लाना चाहिए। सातावेदनीय आदि सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और इनके प्रकृतिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। फिर भी यहाँ इनके अवक्तव्यबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह प्रतीत होता है कि इनमेंसे किसी एक प्रकृतिका दो बार अबन्धपूर्वक बन्ध अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे ही होता है। आठ कषायोंके प्रकृतिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है, इसलिए यहाँ इनके भुजगार और अल्पतरबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। इनके अवस्थित और अवक्तव्यबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है सो अवक्तव्यबन्धका अन्तर लाते समय वह अन्तर्मुहूर्त और अर्धपुद्गल परावर्तन कालके अन्तरसे दो बार संयमासंयम और संयमपूर्वक असंयममें ले जाकर लाना चाहिए। स्त्रीवेदके अवक्तव्यबन्धके जघन्य अन्तरका खुलासा सातावेदनीयके समान कर लेना चाहिए तथा किसी जीवने स्त्रीवेदका अवक्तव्यबन्ध करके कुछ कम दो छियासठ सागर काल तक उसका बन्ध नहीं किया। पुनः मिथ्यात्वमें आकर उसका अवक्तव्यबन्ध किया यह सम्भव है, इसलिए इसके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर प्रमाण कहा है। नपुंसकवेद आदिका बन्ध कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छियासठ सागर काल तक नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। पुरुषवेदका यदि निरन्तर बन्ध हो तो साधिक दो छियासठ सागर काल तक होता है। इसके बाद ऐसे जीवके मिथ्यादृष्टि होने पर अन्य वेदोंका भी बन्ध सम्भव है, अतः इसके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। यहाँ प्रारम्भमें और अन्तमें अवक्तव्यबन्ध कराकर यह अन्तर लाना चाहिए। जो निरन्तर एकेन्द्रिय पर्यायमें रहता है, उसके अनन्तकाल तक तीन आयु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध नहीं होता, अतः इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल प्रमाण कहा है। तिर्यञ्चायुका बन्ध अधिकसे अधिक सौ सागर पृथक्त्व काल तक नहीं होता, अतः इसके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व काल तक कहा है। तिर्यञ्चगतिद्विकका बन्ध १६३ सागर तक नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतरबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर प्रमाण कहा है। तथा अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके निरन्तर इन दो प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है और इनकी कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है, अतः इनके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके नहीं होता, अतः इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। चार जाति आदिका बन्ध अधिकसे अधिक एक सौ पचासी सागर तक नहीं होता, अतः इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर प्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका निरन्तर बन्ध एक सौ पचासी सागर तक होता रहता है, अतः इनके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर प्रमाण कहा है। औदारिकशरीरका साधिक तीन पल्यतक बन्ध नहीं होता, अतः इसके भुजगार और अल्पतरबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है और एकेन्द्रियोंमें अनन्त काल तक निरन्तर इसीका बन्ध होता है, अतः इसके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। आहारकद्विकका अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक बन्ध न हो यह सम्भव है, अतः इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। समचतुरस्रसंस्थान आदिका निरन्तरबन्ध कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छियासठ सागर काल तक होता रहता है, अतः इनके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। औदारिकआङ्गोपाङ्ग आदिका निरन्तर बन्ध साधिक तेतीस सागर काल तक होता रहता है, अतः इसके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। उद्योतका बन्ध एक सौ त्रेसठ सागर काल तक नहीं होता, इसलिए इसके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। एक पर्यायमें अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे दो बार उपशमश्रेणीपर आरोहण करनेवालेके तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे उक्तप्रमाण कहा है और साधिक तेतीस सागरके अन्तरसे दो बार उपशमश्रेणिपर आरोहण करने वालेके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर प्राप्त होनेसे उक्तप्रमाण कहा है। इसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५६. णिरएसु धुविगाणं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० दे०। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-दोगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-अप्पस०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-दोगो० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० दे०। दोवेदणी०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियु० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू०। अवत्त० जहण्णु० अंतो०। पुरिस०-समच०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० साद०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० देसू०। दोआयु० तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० छम्मासं दे०। तित्थ० भुज०-अप्पद० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तिण्णि-साग० सादि०। अवत्त० णत्थि अंतरं। एवं सत्तमाए। छसु उवरिमासु मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० पुरिस०भंगो।

अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी यही है, क्योंकि तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल इससे अधिक नहीं है। शेष कथन सुगम है। आगे आदेशसे भी जिस मार्गणामें अन्तरका विचार करना हो, उस मार्गणाके काल आदिको जानकर वह घटित कर लेना चाहिए। ग्रन्थविस्तार और पुनरुक्त होनेके भयसे हम उस पर अलग-अलग विचार नहीं करेंगे।

४५६. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और दो गोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर हैं। दो वेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-बन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। दो आयुओंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। तीर्थङ्करके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है। अवक्तव्यबन्धका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भङ्ग पुरुषवेदके समान है।

विशेषार्थ—जो तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला मनुष्य मिथ्यादृष्टि होकर नारकियोंमें उत्पन्न होता है, उसके इसका अवक्तव्यबन्ध तो होता है, पर दूसरी बार अवक्तव्यबन्ध सम्भव -

१. आ० प्रतौ अवट्ठि० ज० ए० उ० अवत्त० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६०. तिरिक्खेसु धुविगाणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ओघं। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० दे०। अवट्ठि०-अवत्त० ओघं। साददंडओ ओघं। अपच्चक्खाण०४-वेउ०छ०-मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० ओघं। इत्थि० अवत्त० ज० अंतो०, उ० तिण्णिपलिदो० दे०। सेसपदा मिच्छत्तभंगो। णवुंस०-चदुजा०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-आदाउ०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादे० भुज०-अप्पद० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी देसू०। अवट्ठि० ओघं। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी दे०। पुरिस० तिण्णि-पदा सादभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तिण्णिप० दे०। तिण्णिआउ० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडितिभागा देसू०। तिरिक्खाउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी सादि०। अवट्ठि० तिरिक्ख-गदितिगं णवुंसगभंगो। अवत्तं ओघं[1]। पंचिं०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-

न होनेसे इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा प्रथमादि छह पृथिवियोंमें मनुष्यगतित्रिक का बन्धाबन्ध पुरुषवेदके समान है, अतः यहाँ इनके सब पदोंका अन्तर पुरुषवेदके समान कहा है। अवस्थित बन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी यही है, क्योंकि तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल इससे अधिक नहीं है। शेष कथन सुगम है। आगे आदेशसे भी जिस मार्गणामें अन्तरका विचार करना हो, उस मार्गणाके काल आदिको जान कर वह घटित कर लेना चाहिए। ग्रन्थ विस्तार और पुनरुक्त होनेके भयसे हम उस पर अलग-अलग विचार नहीं करेंगे।

४६०. तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका भङ्ग ओघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके भुजगार और अल्पतर-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्यप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यबन्धका अन्तर ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। अप्रत्याख्यानावरण चार, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेदके अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। शेष पदोंका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। नपुंसकवेद, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। अवस्थितबन्धका अन्तर ओघके समान है। तथा अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। पुरुषवेदके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। तथा अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्यप्रमाण है। तीन आयुओंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उक्त पदोंका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। तिर्यञ्चायुके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उक्त पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि प्रमाण है। तथा इसके अवस्थितबन्धका और तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। तथा तिर्यञ्चगतित्रिकके अवक्तव्यबन्धका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास,

१. अवत्त० अवत्त० (?) ओघं इति पाठः।

सुभग-सुस्सर-आदें० तिण्णिपदा० सादभंगो[1]। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी दे०। ओरालि० तिण्णिप० णवुंसगभंगो। अवत्त० ओघं।

४६१. पंचिं०तिरिक्ख०३ धुविगाणं भुज०-अप्प० ओघं। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० पुव्वकोडिपु०। थीणगिद्धिदंडओ तिरिक्खोघं। अवट्ठि[2]० णाणा०-भंगो। एवं अवत्त०। [णवरि ज० अंतो०]। सादासादं०-चदुणोक०-थिरादि-तिण्णियु० सव्वपदा ओघं। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अपच्चक्खाण०४ दोपदा ओघं। अवट्ठि० सादभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडिपुधत्तं०। इत्थि० मिच्छ०भंगो। णवरि अवत्त० तिरिक्खोघं। [पुरिस० अवत्त० तिरिक्खोघं।] सेसपदा सादभंगो। णवुंस० तिण्णिग०-चदुजा०-ओरा०-पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचागो० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी० दे०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० पुव्व-कोडिपुध०। चत्तारि आऊणि तिरिक्खोघं। णवरि तिरिक्खाउ० अवट्ठि० ज० ए०,

प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर और आदेयके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि-प्रमाण है। औदारिकशरीरके तीन पदोंका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। तथा अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है।

४६१. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्यप्रमाण है। स्त्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतना विशेष है कि अवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार अव-क्तव्यबन्धका अन्तर काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंका भङ्ग ओघके समान है। मात्र अवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अप्रत्याख्यानावरण चारके दो पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितबन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्य-बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। स्त्रीवेदका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यबन्धका भंग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पुरुषवेदके अवक्तव्यबन्धका भंग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है, शेष पदोंका भंग सातावेदनीय-के समान है। नपुंसकवेद, तीन गति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। तथा अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। चारों आयुओंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर

१. ता० आ० प्रत्योः तिण्णिपदा सादासादभंगो० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः अवत्त० इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः एवं अवट्ठि० सादासाद० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ० पुव्वकोडिपु० । देवग०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० साद०-भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी दे० ।

४६२. पंचि०तिरिक्ख०अप० सव्वाणं तिण्णिपदा ज० ए०, उ० अंतो० । णवरि परियत्तमाणिगाणं अवत्त० ज० अंतो०, उ० अंतो० । एवं सव्वअपज्जत्तगाणं सव्वसुहुमपज्जत्तापज्जत्ताणं च ।

४६३. मणुस०३ पंचिंदि०तिरिक्खभंगो । णवरि आहारदुगं तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडिपु० । तित्थ० दोपदा ओघं । अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी दे० । णवरि धुविगाणं अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडिपुध० ।

४६४. देवेसु धुविगाणं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज०

पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है । देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर,समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है । अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ स्त्यानगृद्धि आदिके अवस्थित बन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है, अतः स्त्यानगृद्धि आदिके अवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान जानना चाहिए–यह इस कथनका तात्पर्य है । और इनके अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अवस्थितके उत्कृष्ट अन्तरके समान होता है। अतः इसको यहाँ अवस्थितके समान कहकर जघन्य की अपेक्षा विशेषता खोल दी है । इसी प्रकार यहाँ सातावेदनीय आदिके सब पद ओघके समान कहके अवस्थित पदको ज्ञानावरणके समान कहा है सो इसका यह तात्पर्य है कि सातावेदनीय आदिके शेष पदोंका जो अन्तर ओघमें कहा है,वह यहाँ जानना चाहिए । मात्र इनके अवस्थित-पदका अन्तर जैसा यहाँ ज्ञानावरणके अवस्थित पदका कहा है,उस प्रकार जानना चाहिए । इसी प्रकार अन्य अन्तर घटित कर लेना चाहिए ।

४६२. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि परिवर्तमान प्रकृतियोंके अवक्तव्य-बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सब अपर्याप्त तथा सब सूक्ष्म और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए ।

४६३. मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि आहारक-द्विकके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके दो पदोंका अन्तर ओघके समान है । अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है । इतनी विशेषता है कि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है ।

४६४. देवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ए०, उ० तेत्तीसं० दे० । थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-पंच-संठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० एक्कत्तीसं० दे० । साददंडओ णिरयभंगो । पुरिस०-सम-चदु०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० तिण्णिपदा सादभंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० एक्कत्तीसं० देसू० । दोआउ० णिरयभंगो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० अट्ठारस साग० सादि० । मणुस०-मणुसाणु० तिण्णिप० सादभंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० अट्ठारह० सादि० । एइंदि०-आदाव-थावर० तिण्णिप० ज० ए०, [1]अवत्त० ज० अंतो०, उ० वेसाग० सादि० । पंचिं०-ओरा०अंगो०-तस० तिण्णिप० सादभंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० वेसाग० सादि० । तित्थ० तिण्णिप० णाणा०भंगो । एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो-अंतरं णेदव्वं ।

४६५. एइंदिएसु सव्वाणं पगदीणं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ओघं । बादरे अंगुलस्स असं०, बादरपज्जत्ते संखेज्जाणि वाससहस्साणि, सुहुमाणं असंखेज्जा लोगा । सव्वाणं अवत्त० ज० उ० अंतो० । तिरिक्खाउ० अवट्ठि० णाणा०भंगो । सेसपदा पगदिअंतरं । मणुसाउ० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज०

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीच-गोत्रके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग नारकियोंके समान है । पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, सुभग, प्रशस्त विहायोगति, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है । अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । दो आयुओंका भङ्ग नारकियोंके समान है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य-बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है । मनुष्य-गति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके तीन पदोंका अन्तर सातावेदनीयके समान है । अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है । एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गो-पाङ्ग और त्रसके तीन पदोंका अन्तर सातावेदनीयके समान है । अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंका अन्तर ज्ञानावरणके समान है । इसी प्रकार सब देवोंके अपना-अपना अन्तर जानना चाहिए ।

४६५. एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका अन्तर ओघके समान है । अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर बादरोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और सूक्ष्मोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है । तथा सब (परिवर्तमान) प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तिर्यञ्चायुके अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान

---

१. आ० प्रतौ मणुसाणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो०, उ० सत्तवाससह० सादि० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० ओघं । बादरे कम्मट्ठिदी०, पज्जत्ते संखेंज्जाणि वास-सहस्साणि, सुहुमाणं असंखेंज्जा लोगा । मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चा० चत्तारिपदा-ओघभंगो । एवं सुहुमाणं पि । णवरि बादरे कम्मट्ठिदी० । णवरि अवट्ठि० ज० ए०, उ० अंगुल० असं० । बादरपज्जत्ते संखेंज्जाणि वाससह० ।

४६६. बेइं०-तेइं०-चदुरिं० सव्वपगदीणं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० संखेंज्जाणि वास० । णवरि तिरिक्खाउ० भुज० अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० भवट्ठिदी० सादि०। अवट्ठि० णाणा०भंगो । मणुसाउ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त० ट्ठिदिभुजगारभंगो । पंचण्णं कायाणं सव्वपगदीणं ट्ठिदि-भुजगारभंगो कादव्वो ।

४६७. पंचिंदि०-तस०२ पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प० ओघं । अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० सगट्ठिदी० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ भुज०-अप्प० ओघं । अवट्ठि०-अवत्त० ज० ए० अंतो०, उ० णाणा०भंगो । सादादंडओ ओघ । अवट्ठि०

है । शेष पदोंका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है । मनुष्यायुके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यबन्धका अन्तर ओघके समान है । बादरोंमें कर्मस्थिति प्रमाण है, पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और सूक्ष्मोंमें असंख्यात लोक-प्रमाण है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके चारों पदोंका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार सूक्ष्म जीवोंमें भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि बादरोंमें कर्मस्थितिप्रमाण है । इतनी और विशेषता है कि अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा बादर पर्याप्तक जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है ।

४६६. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर-पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात वर्ष है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक भवस्थितिप्रमाण है । अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है । मनुष्यायुके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदका अन्तर स्थितिबन्धके भुजगारके समान है । पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग स्थितिबन्धके भुजगारके समान करना चाहिए ।

४६७. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ओघके समान है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ओघके समान है । अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणा०भंगो। अट्ठक० भुज०-अप्प० ओघं। सेसाणं णाणा०भंगो। इत्थि० भुज०-अप्प० अवत्त० ओघं। अवट्ठि० णाणा०भंगो। पुरिस० भुज०-अप्प०-अवत्त० ओघं। अवट्ठि० णाणा०भंगो। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा०, भुज०-अप्प०-अवत्त० ओघं। अवट्ठि० णाणा०भंगो। तिण्णि-आउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उक्क० सागरो०सदपुध०। अवट्ठि० कायट्ठिदी०। मणुसाउ० सव्वपदाणं सगट्ठिदी०। णिरयगदि-चदुजा०-णिरयाणु०-आदाव०-थावरादि०४ भुज०-अप्प०-अवत्त० जं० ए० अंतो०, उक्क० पंचासीदिसाग०सद०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० भुज०-अप्प०-अवत्त० ज० ए० अंतो०, उ० तेवट्ठिसा०सद०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। मणुसग०-देवग०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-दोआणु० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० दोहि मुहुत्तेहि सादिरेयं। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसंसागरो० सादिरे० पुव्वकोडि समऊणसादिरेयं। अवट्ठि० णाणा०भंगो। पंचिं०-पर०-उस्सा०-तस०४ भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पंचासीदि-साग०सदं०। ओरा०-ओरा०अंगो०-वज्ज० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णि-

सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। तथा अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। आठ कषायोंके भुजगार और अल्पतरपदका अन्तर ओघके समान है। शेष पदोंका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। स्त्रीवेदके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तर ओघके समान है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। पुरुषवेदके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्य पदका अन्तर ओघके समान है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तर ओघके समान है। अवस्थित पदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तीन आयुओंके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है। तथा अवस्थित पदका अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। मनुष्यायुके सब पदोंका अन्तर अपनी कायस्थितिप्रमाण है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर एक समय और अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। मनुष्यगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक-आङ्गोपाङ्ग और दो आनुपूर्वीके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट दो मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। अवस्थित पदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास, और त्रसचतुष्कके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और

१. आ० प्रतौ अप्प० ब० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पलि० सादि० । अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० पुव्वकोडी[1] सादि०। आहारदुगं तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० चदुण्णं पि कायट्ठिदी० । समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० पंचिंदियजादिभंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० बेछावट्ठि० सादि० दोपुव्वकोडिवासपुधत्ताणि याओ सादिरेयं तिण्णिपलिदो० देसू० अंतोमुहुत्तूणाणि । तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० दोण्हं पि तेंत्तीसं० सादि० दोपुव्वकोडीओ दोहि वासपुधत्तेहि ऊणियाओ सादि० ।

४६८. पंचमण०-पंचवचि० सव्वपगदीणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ज० ए०, उ० अंतो० । अवत्त० णत्थि अंतरं । कायजोगीसु पंचणा०–णवदंस०--मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४--अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । अवत्त० णत्थि अंतरं । सादासाद०-सत्तणोक०-पंचजा०-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-पर०-उस्सा०-आदा-उज्जो०-दोविहा०-तसथावरादिदसयु० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि०

वज्रर्षभनाराचसंहननके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है तथा चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग पञ्चेन्द्रियजातिके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक, दो वर्षपृथक्त्व कम दो पूर्वकोटि अधिक तथा अन्तमुहूर्त कम दो छियासठ सागरप्रमाण है। तीर्थङ्करप्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है तथा दोनों ही पदोंका उत्कृष्ट अन्तर दो वर्षपृथक्त्व न्यून दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है।

४६८. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है। अवक्तव्यपदका अन्तर काल नहीं है। काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति और त्रस-स्थावर आदि दस युगलके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरण

---

१. ता० प्रतौ तेत्तीसं० सेलादि (सादि०) पुव्वकोडि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणा०भंगो । अवत्त० ज० उ० अंतो० । दोआउ०-वेउव्वियछ०-आहारदुग-तित्थ० मणजोगिभंगो । तिरिक्खाउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० बावीसं वाससह० सादि० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । मणुसाउ०-मणुसगदि--मणुसाणु०--उच्चा० सव्वपदाणं ओघं । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०--णीचा० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि०-अवत्त० ओघं ।

४६६. ओरालि० णाणावरणादिदंडओ कायजोगिभंगो । णवरि अवट्ठि० ज० ए०, उ० बावीसं वाससह० देसू०[1] । सादासाद०-सत्तणोक०-दोगदि-पंचजादि-छस्संठाण-ओरालि०अंगो०--छस्संघ०--दोआणु०-पर०-उस्सा०--आदाउ०-दोविहा०-तसथावरादि दसयुग०-दोगो० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० उ० अंतो० । दोआउ०-वेउव्वियछ०-आहारदुग-तित्थ० मणजोगिभंगो । दोआउ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० सव्वपदाणं सत्तवास-सह० सादि० ।

४७०. ओरालियमि० धुवियाणं देवगदिपंचगस्स च तिण्णिप० ज० ए०, उ० अंतो० । सेसाणं तिण्णिप० ज० ए०, उ० अंतो० । अवत्त० ज० उ० अंतो० ।

के समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । दो आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है । तिर्यञ्चायुके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके सब पदोंका भङ्ग ओघके समान है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है ।

४६६. औदारिककाययोगी जीवोंमें ज्ञानावरणादिदण्डकका भङ्ग काययोगी जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि दस युगल और दो गोत्रके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । दो आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है । दो आयुओंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है ।

४७०. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों और देवगतिपञ्चकके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा अवक्तव्यपदका

---

१. ता० आ० प्रत्योः देसू० इति स्थाने सादि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि मिच्छ० अवत्त० णत्थि अंतरं। एवं वेउव्वियमि०-आहारमि०।

४७१. वेउव्वि०-आहार० धुवियाणं तिण्णिप० ज० ए०, उ० अंतो०। सेसाणं मणजोगिभंगो। कम्मइ० सव्वपगदीणं सव्वप० णत्थि अंतरं। णवरि अवट्ठि० ज० उ० ए०।

४७२. इत्थिवे० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० पलि०सदपु०। थीण०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पणवण्णं पलि० दे०। अवट्ठि०-अवत्त० णाणा०भंगो। णवरि[1] अवत्त० ज० अंतो०। णिद्दा-पयला-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० तिण्णिप० णाणा०भंगो। अवत्त० णत्थि अंतरं। सादादिदंडओ अट्ठकसा०-दंडओ सव्वपदा ओघं। णवरि कायट्ठिदी भाणिदव्वा। इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पणवण्णं पलि० दे०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। पुरिस०-पंचिं०-समचदु०-पसत्थ०-तस०-सुभग-

जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए।

४७१. वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

४७२. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पल्यपृथक्त्व प्रमाण है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरण (अवस्थितपद) के समान है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। निद्रा, प्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय आदि दण्डक और आठ कषायदण्डकके सब पदोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि कायस्थिति कहनी चाहिए। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग,

१. ता० प्रतौ अवत्त० णाणाव० अवट्ठि० (?) भंगो णवरि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुस्सर-आदें०-उच्चा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पणवण्णं पलि० देसू०। णिरयाउ० सव्वपदा मणुसभंगो। दोआउ० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० कायट्ठिदी०। देवाउ० भुज० अप्प०-[अवट्ठि] ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० अट्ठावण्णं पलि० पुव्वकोडिपुधत्तं०। अवट्ठि० कायट्ठिदी०। वेउव्वियछ०-तिण्णिजा०-सुहुम०-अपज्ज०-साधार० भुज०-अप्प०-[अवट्ठि०] ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पणवण्णं पलि० सादि०। अवट्ठि० कायट्ठिदी०। मणुस०-ओरा०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०--मणुसाणु० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० दे०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पणवण्णं पलि० दे०। णवरि ओरालि० अवत्त० [उ०] पणवण्णं पलि० सादि०। आहारदुगं सव्वपदा ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० कायट्ठि०। पर०-उस्सा०-बादर-पज्जत्त-पत्ते० तिण्णिपदा० णाणा०-भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पणवण्णं पलि० सादि०। तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। अवत्त० णत्थि अंतरं।

४७३. पुरिसेसु पढमदंडओ पंचणाणावरणादी विदियदंडओ थीणगिद्धिआदी

सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। नरकायुके सब पदोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है। दो आयुओंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। देवायुके भुजगार अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उक्त तीन पदोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक अट्ठावन पल्य है। तथा अवस्थितपदका अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। वैक्रियिक छह, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके भुजगार अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य है तथा अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकआंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम तीन पल्य है। अवस्थितपदका भंग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य है। आहारकद्विकके सब पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके तीन पदोंका भंग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। अवक्तव्यपदका अन्तर काल नहीं है।

४७३. पुरुषवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डक, स्त्यानगृद्धि आदि द्वितीय

१. ता० आ० प्रत्योः तिण्णिपलि० णाणा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदियदंडओ णिद्दादी चउत्थदंडओ सादादी पंचमदंडओ अट्ठकसा० एदे इत्थिवेदभंगो। णवरि सव्वाणं पुरिसवेदट्ठिदी णादव्वा। तदिए दंडए णिद्दादीणं[1] अवत्त० ज० अंतो०, उ० सागरो०सदपुध०। थीणगिद्धिदंडए भुज०-अप्प० ओघं। इत्थि० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० बेछावट्ठि० दे०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० ट्ठिदिभुजगारभंगो। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० बेछावट्ठि० सादि० तिण्णि-पलि० देसू० अंतोमुहुत्तूणाणि। पुरिस० तिण्णिप० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० बेछावट्ठि० दे० अंतोमुहुत्तू०। तिण्णिआउ० इत्थि०भंगो। देवाउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० सादि० पुव्वकोडितिभागेण पुव्व-कोडीए सादिरेयाणि। अवट्ठि० णाणा०भंगो। णिरयगदिदंडओ तिरिक्खगदिदंडओ दोपदा[2] ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेवट्ठिसा०सदं। अवट्ठि० णाणाभंगो। मणुसगदिपंचग० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० सादि० पुव्वकोडितिभा-गेण०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं०सादि० पुव्वकोडि-समऊणं सादि०। देवगदि०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि० अंतो०।

दण्डक, निद्रादि तृतीय दण्डक, सातावेदनीय आदि चतुर्थ दण्डक और आठ कषायरूप पाँचवें दण्डकका भंग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सबके पुरुषवेदकी स्थिति जाननी चाहिए। निद्रादिकका जो तीसरा दण्डक है, उसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरपृथक्त्व है। स्त्यानगृद्धिदण्डकके भुजगार और अल्पतरपदका भंग ओघके समान है। स्त्रीवेदके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागरप्रमाण है। अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर स्थितिबन्धके भुजगारके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्य अधिक दो छियासठ सागर है। पुरुषवेदके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम दो छियासठ सागर है। तीन आयुओंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। देवायुके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका त्रिभाग और पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। नरकगति-दण्डक और तिर्यञ्चगतिदण्डकके दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञाना-वरणके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है। अवस्थित पदका अन्तर ज्ञानावरण के समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर

१. ता० आ० प्रत्योः तदिए दंडओ णिद्दाणं इति पाठः। २. आ० प्रतौ ज० ए० उ० इति पाठः। ३. आ० प्रतौ णिरयगदिदंडओ दोपदा इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० पुव्वकोडिसमऊणं सादिगं भवदि। पंचिंदियदंडओ ट्ठिदिभुजगारभंगो। आहारदुगं पंचिंदियभंगो। समचदु०-पसत्थ०--सुभग--सुस्सर[1]--आदें०--उच्चा० तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० बेछाव० सादि० तिण्णिपलि० देसू०। [तित्थ०] भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० दोहि पुव्वकोडीहि दोहि वासपुधत्तेहि ऊणिगाहि सादिरे०। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडि० दे० वासपुधत्तेणूणाणि।

४७४. णवुंसगे पंचणाणावरणादिपढमदंडओ विदियदंडओ थीणगिद्धिआदी तदियदंडओ णिद्दादी चउत्थदंडओ सादादी इत्थि०भंगो। णवरि सव्वाणं दंडगाणं अवट्ठि०-अवत्त०ओघं। थीणगिद्धिदंडए भुज०-[अप्प०] ज० ए०, उ० तेत्तीसं० दे०। अट्ठक०-तिण्णिआउ०-वेउव्वियछ०-मणुसगदितिगं आहारदुगं ओघं। इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-आणादें० भुज०--अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० देसू०। अवट्ठि० ओघं। पुरिस०-समचदु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदें० तिण्णिपदा सादभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० दे०। देवाउ०

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। अवस्थितबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकका भङ्ग स्थितिबन्धके भुजगारके समान है। आहारकद्विकका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छियासठ सागर प्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो वर्षपृथक्त्व कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कम एक पूर्वकोटि है।

४७४. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डक, स्त्यानगृद्धि आदि द्वितीय दण्डक, निद्रादि तृतीय दण्डक और सातावेदनीय आदि चतुर्थ दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इन सब दण्डकोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका अन्तर ओघके समान है। स्त्यानगृद्धिदण्डकके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। आठ कषाय, तीन आयु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगतित्रिक और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ओघके समान है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम

१. आ० प्रतौ पसत्थ० सुस्सर इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसि०भंगो। ओरा० दोपदा० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। अवट्ठि०-अवत्त० ओघं। ओरालि०अंगो०-वज्जरि० भुज०—अप्पद० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। अवट्ठि० ओघं०। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० अंतोमुहुत्तेण सादि०। णवरि० वज्जरि० अवत्त० तेत्तीसं० दे०। तित्थ० दोपदा० ओघं। अवट्ठि० ज० एग०, उ० तिण्णिसा० सादि०। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडितिभागं देसू०।

४७५. अवगद० सव्वाणं भुज०--अप्पद०--अवत्त० णत्थि अंतरं। कोधादि०४ धुविगाणं तिण्णिपदा० ज० ए०, उ० अंतो०। सेसाणं पगदीणं तिण्णिपदा० ज० ए०, उ० अंतो०। अवत्त० णत्थि० अंतरं। णवरि सादादीणं मणजोगिभंगो अवत्त०-बंधगस्स।

४७६. मदि०-सुद० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तेजा०-क०

तेतीस सागर है। देवायुका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। औदारिकशरीरके दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अवस्थित और अवक्तव्य-पदका भङ्ग ओघके समान है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अवस्थित पदका भङ्ग ओघके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि वज्रर्षभनाराचसंहननके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके दो पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्य बन्धका जो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहा है,वह इस प्रकार घटित करना चाहिए। नरकायुके बन्धक एक नपुंसकवेदी मनुष्यने अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ किया और लघु अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध करके मिथ्यादृष्टि हुआ और मर कर नारकी हो गया। पुनः पर्याप्त होकर सम्यग्दर्शन पूर्वक उसका बन्ध करने लगा। इस प्रकार तो तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्य बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है। और एक पूर्वकोटिके नपुंसकवेदी मनुष्यने त्रिभागमें आयु बन्ध किया। पुनः सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करने लगा। और अन्तमें मिथ्यादृष्टि होकर नरकमें गया और अन्तर्मुहूर्त बाद पुनः उसका बन्ध करने लगा। इस प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण प्राप्त होता है।

४७५. अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तर काल नहीं है। क्रोधादि चार कषायोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय आदिके अवक्तव्यपदका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है।

४७६. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व,

---

१. आ० प्रतौ अ० उ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वण्ण०४–अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । सादासाद०-इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० भुज०--अप्पद०--अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० उ० अंतो० । णवुंस० पंचसंठा०--ओरालि०अंगो०--छस्संघ०--अप्पसत्थ०--दूभग--दुस्सर--अणादें० भुज०--अप्पद० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तिण्णि-पलि० दे० । अवट्ठि० ओघं । [णवरि ओरालि०अंगो० अवत्त० उ० तेंत्तीसं सादि०।] चदुआउ०-वेउव्वियछ०-मणुसगदितिगं ओघं । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० भुज० अप्प० ज० ए०, उ० ऍक्कत्तीसं० सादि० । अवट्ठि०-अवत्त० ओघं । चदुजादि-आदाव-थावर०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० सादि० । अवट्ठि० ओघं । पंचिं०-पर०-उस्सा०-तस०४ तिण्णिप० णाणाभंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० सादि० । ओरालि० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० दे० । अवट्ठि०-अवत्त० ओघं० । समचदु०--पसत्थ०--सुभग--सुस्सर--आदें० तिण्णिप० सादभंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० तिण्णिपलि० दे० । उज्जो० भुज०--अप्प० ज० ए०,

सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । अवस्थितपदका अन्तर काल ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि औदारिक आङ्गोपाङ्गके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है । तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है । अवस्थित और अवक्तव्यपदका अन्तरकाल ओघके समान है । चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है । तथा इनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अवस्थितबन्धका अन्तर ओघके समान है । पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । औदारिकशरीरके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । अवस्थित और अवक्तव्यपदका अन्तरकाल ओघके समान है । समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीय समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । उद्योतके भुजगार

१. आ० प्रतौ अजस० अप्पद० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० ज० अंतो०, उ० ऐक्कत्तीसं० सादि०। अवट्ठि० ओघं। णीचा० तिण्णि-पदा० णवुंसगभंगो। अवत्त० ओघं।

४७७. विभंगे पंचणा०--णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४—अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० दे०। सादासाद०--सत्तणोक०-तिरिक्ख०-पंचिं०-छस्संठा०-ओरा०अंगो०--छस्संघ०--तिरिक्खाणु०--उज्जो०--दोवि०--तस०--थिरादिछयु०--णीचा० तिण्णिप० णाणा०भंगो। अवत० ज० उ० अंतो०। [ओरा०] पर०-उस्सास-बादर-पज्ज०-पत्ते० तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० णत्थि अंतरं। दोआउ०-वेउव्वि०छ०-तिण्णिजादि-सुहुम०-अप०-साधा० मण०भंगो। दोआउ० णिरयभंगो। मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० ऐक्कत्तीसं० दे०। अवत्त० सादभंगो। एइंदि०-आदाव-थावर० भुज०-अप्प०-अवत्त० सादभंगो०। अवट्ठि० ज० ए०[4], उ० बेसाग० सादि०।

और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। अवस्थित पदका अन्तर ओघके समान है। नीचगोत्रके तीन पदोंका अन्तर नपुंसकवेदके समान है। अवक्तव्य पदका अन्तर ओघके समान है।

४७७. विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, छह संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थिर आदि छह युगल और नीचगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य-पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। औदारिकशरीर, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। दो आयु, वैक्रियिक छह, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। दो आयुओंका भङ्ग नारकियोंके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तर सातावेदनीयके समान है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर-के भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है।

---

१. ता० आ० प्रत्योः अंतो० अवट्ठि० ज० ए० अंतो० अवट्ठि० ज० ए० उ० तेत्तीसं इति पाठः। २. आ० प्रतौ दो वि पदा तस० इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः अंतो० मिच्छ० पर० इति पाठः। ४. आ० प्रतौ अवत्त० ज० ए० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७८. आभिणि०--सुद०--ओधि० पंचणा०-छदंस०--चदुसंज०--पुरिस०-भय-दु०--पंचिं०--तेजा०--क०--समचदु०--वएण०४--अगु०४--पसत्थवि०--तस०४--सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० भुज०-अप्पद० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० छावट्ठि० सादि०। अवत्त० ज० अंतो०, उ० छावट्ठि० सादि०। सादासाद०-चदुणोक०-थिरादितिरिणयुग० तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० ज० उ० अंतो०। अट्ठक० भुज०-अप्प० ओघं। अवट्ठि० ज० ए०,उ० छावट्ठि० सादि०। अवत्त० ज० अंतो०,उ० तेंत्तीसं० सादि०। दोआउ० भुज०-अप्प० ज० ए०,उ० तेंत्तीसं० सादि०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० छावट्ठि० सादि०। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। णवरि देवाउ० अवट्ठि० ज० ए०, उ० छावट्ठि० दे०। मणुसगदि-पंचग० भुज०-अप्प० ज० ए०,उ० पुव्वकोडी० सादि० अंतोमुहुत्तेणब्भहि०। अवत्त० ज० पलिदो० सादि० वासपुधत्तेण सादि०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। देवगदि०४--आहार०२ भुजं०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। तित्थ० ओघं। एवं ओधिदं०-सम्मा०।

४७८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थित-पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। दो आयुओंके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि देवायुके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक एक पूर्वकोटि है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्व अधिक साधिक एक पल्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

१. ता० आ० प्रत्योः आहार० भुज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७६. मणपज्ज० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-देवग०-पंचिं०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० दोण्हं पि पुव्वकोडी दे०। सादासाद०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियु० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०[1] णाणाभंगो। अवत्त० ज० उ० अंतो०। एवं आहारदुगं। देवाउ० मणुसभंगो। एवं संजदा०।

४८०. सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चदुदंसणा०-लोभसंज०-उच्चा०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। णिद्दा-पचला०-तिण्णिसंज०-पुरिस०-भय०-दु०-देवग०-पंचिं०-वेउव्वि०-तेजा०क०-समचदु०-वेउ०-अंगो०-वण्ण०४-देवाणु[2]०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० णत्थि अंतरं। सादादिदंडओ देवाउ० मणपज्जवभंगो।

४८१. परिहार० धुवियाणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० साददंडओ देवाउ०-तित्थ०

---

४७६. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित-पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके भुजगार अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार आहारकद्विकका जानना चाहिए। देवायुका भङ्ग मनुष्योंके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए।

४८०. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभसंज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। निद्रा, प्रचला, तीन संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस-चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय आदि दण्डक और देवायुका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है।

४८१. परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग, सातावेदनीय दण्डक, देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी

---

१. आ० प्रतौ भुज० अवट्ठि० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः वण्ण० देवाणु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणपज्जव०भंगो । आहारदुगं भुज०-अप्पद० ज० ए०,उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी देसू० । अवत्त० ज० उ० अंतो० । णवरि तित्थ० णत्थि अंतरं । सुहुमसंप० सव्वपगदीणं भुज०--अप्प० णत्थि अंतरं । संजदासंजद० सव्वपगदीणं परिहार०भंगो ।

४८२. असंजदे धुवियाणं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा । थीणगिद्धिदंडओ सादादिदंडओ णवुंसगभंगो । इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग--दुस्सर-अणादे० भुज०-अप्पद० ज० ए०, अवत्त० [ज०] अंतो०, उ० तेत्तीसं० दे० । अवट्ठि० ओघं । पुरिस०-समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०--सुभग--सुस्सर-आदे० तिण्णिप० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० देसू० । चदुआउ०-वेउ०छ०-मणुसगं०-मणुसाणु०-उच्चा० ओघं । चदुजादिदंडओ पंचिंदियदंडओ णवुंसगभंगो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० णवुंसगभंगो । ओरालि० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त० ओघं । ओरालि०अंगो-वज्जरि० तिण्णिपदा० ओघं । अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० अंतोमुहुत्तेण । णवरि

जीवोंके समान है । आहारकद्विकके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदका अन्तर नहीं है । सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका अन्तरकाल नहीं है । संयतासंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भंग परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है ।

४८२. असंयतोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । स्त्यानगृद्धिदण्डक और सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है । पुरुषवेद, समचतुरस्र संस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । चार आयु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भङ्ग ओघके समान है । चार जातिदण्डक और पञ्चेन्द्रियजाति दण्डकका भङ्ग नपुंसकोंके समान है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग नपुंसकोंके समान है । औदारिक शरीरके भुजगार, अल्पतर अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है । औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके तीन पदोंका भङ्ग ओघके समान है । अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है । इतनी

१. आ० प्रतौ ए० उ० अवत्त० इति पाठः । २. ता० प्रतौ वेउ० मणुसग० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्जरि० अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० दे० । तित्थ० तिण्णिप० ओघं । अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडितिभागं दे० । चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो । अचक्खु० ओघं ।

४८३. किण्णाए पंचणा०--छदंस०-बारसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४--अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-[अप्प०] ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० । थीणगि०३--मिच्छ०--अणंताणु०४--णवुंस०--हुंड०--अप्पस०--दूभग--दुस्सर--अणादें०--णीचा० दोपदा ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० दे०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० दो० अंतोमुहुत्तं सादि० पवेस-णिक्खमणे । साद०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जस० भुज०-अप्प० णाणा०भंगो । अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० मुहुत्तं सादि० णीतस्स० । अवत्त० ज० उ० अंतो० । असाद-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० सादभंगो । णवरि अवट्ठि० तेत्तीसं सादि० दोहि मुहुत्तेहिं सादिरेयं पवेस-णिक्खमणे । इत्थि०-दोग०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-उच्चा० भुज०-अप्प०-अवत्त० णवुंसगभंगो । अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० मुहुत्तेण णीतस्स । पुरिस०--समचदु०--वज्जरि०--पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० भुज०-

---

विशेषता है कि वज्रर्षभनाराचसंहननके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रस पर्याप्तकोंके समान भङ्ग है और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

४८३. कृष्णलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रवेश और निष्क्रमणके दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निर्गमकी अपेक्षा एक अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका भङ्ग सातावेदनीयके समान है, किन्तु अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर प्रवेश और निष्क्रमणकी अपेक्षा दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। स्त्रीवेद, दो गति, चार संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी और उच्चगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निर्गमनका एक अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस

---

१. ता० आ० प्रत्योः ज० ज० अंतो० इति पाठः । २. आ० प्रतौ णाणाभंगो । अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेत्तीसं सादि० दोहि मुहुत्तेहि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० एक्कमुहुत्तेण णीतस्स । अवत्त० णवुंसगभंगो । दोआउ०-दोगदि-चदुजादि-दोआणु०-आदाव०-थावरादि ४ तिण्णिपदा ज० ए०, उ० अंतो० । अवत्त० णत्थि अंतरं । दोआउ० तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० सव्वेसिं छम्मासं दे० । पंचि०-पर०-उस्सा०-तस०४ दोपदा णाणा०भंगो । अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि० दोहि मुहुत्तेहि णिक्खमण-पवेसणेहि । अवत्त० णत्थि अंतरं । ओरा०-ओरा०अंगो० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० एक्केण मुहुत्तेण णीतस्स । अवत्त० णत्थि अंतरं । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० तिण्णिप० ज० ए०, उ० बावीसं० सादि० अंतोमुहुत्तेण पवेसंतस्स । अवत्त० ज० सत्तारस साग० सादि०, उ० बावीसं सा० सादि० । एवं णील-काऊणं । णवरि मणुसगदितिगं पुरिस-भंगो । अप्पप्पणो हिदीओ भाणिदव्वाओ । णीलाए वेउ०-वेउ०अंगो० अवत्त० ज० सत्तसा० सादि०, उक्क० सत्तारस साग० सादि० । काऊए अवत्त० ज० दसवस्स-सहस्साणि सादि०, उ० सत्तसाग० सादि० । किण्ण-णीलाणं तित्थ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ज० ए०, उ० अंतो० । काउए तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० ।

सागर है । पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, और आदेयके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निकलनेके एक अन्तर्मुहूर्त सहित तेतीस सागर है । अवक्तव्य पदका भङ्ग नपुंसकोंके समान है । दो आयु, दो गति, चार जाति, दो आनुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवक्तव्य पदका अन्तरकाल नहीं है । दो आयुओंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है । पंचेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके दो पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निष्क-मण और प्रवेशके दो अन्तर्मुहूर्त सहित तेतीस सागर है । अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । औदारिकशरीर और औदारिकआङ्गोपाङ्गके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निकलनेके एक अन्तर्मुहूर्त सहित तेतीस सागर है । अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रवेशके एक अन्तर्मुहूर्त सहित बाईस सागर है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर साधिक सत्रह सागर है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस सागर है । इसी प्रकार नील और कापोत लेश्यामें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग पुरुषवेदके समान है । तथा अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए । नील लेश्यामें वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर साधिक सात सागर है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सत्रह सागर है । कापोत लेश्यामें अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर साधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात सागर है । कृष्ण और नील लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । कापोत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवट्ठि० ज० ए०, उ० तिण्णिसाग० सादि० । अवत्त० णत्थि अंतरं ।

४८४. तेऊए पंचणा०-छदंसणा०--चदुसंज०--भय-दु०--तेजा०-क०--वण्ण०४--अगु०४--बादर-पज्ज०-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि० । थीणगि०३--मिच्छ०-अणंताणु०४--इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० बेसाग० सादि० । सादासाद०--चदुणोक०--थिरादितिण्णियु० दोपदा णाणा०भंगो । अवट्ठि० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि० । अवत्त० ज० उ० अंतो० । अट्ठक०-ओरालि०-तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि० । अवत्त० णत्थि अंतरं । पुरिस०-मणुस०--पंचिं०--समचदु०--ओरा०अंगो०-वज्जरि०-मणुस०-पसत्थ०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०[1], उ० बेसाग० सादि० । अवत्त० ज० अंतो०, उ० बेसाग० सादि० । दोआउ० सोधम्मभंगो । देवाउ०--आहारदुगं तिण्णिप० ज० ए०, उ० अंतो० ।

लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है । अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है ।

४८४. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके दो पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आठ कषाय, औदारिकशरीर और तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । पुरुषवेद, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । दो आयुओंका भङ्ग सौधर्मकल्पके समान है । देवायु और आहारकद्विकके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त

१. ता० आ० मत्योः अंतो० । अवत्त० ज० ए० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० णत्थि अंतरं। देवग०४ तिण्णिप० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि०। अवत्त० णत्थि अंतरं। एवं पम्माए। णवरि सहस्सारभंगो। अट्ठक०-ओरा०--ओरा०अंगो०-तित्थ० दोपदा ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० अट्ठारससाग० सादि०। अवत्त० णत्थि अंतरं। देवग०४ तिण्णिप० ज० ए०, उ० अट्ठारससा० सादि०। अवत्त० णत्थि अंतरं। एइंदि०-आदाव-थावरं वज्ज। पंचिंदि०-तस० धुवभंगो।

४८५. सुक्काए पंचणा०--छदंस०--चदुक०--भय--दु०--पंचिं०--तेजा०--क०--वण्ण०४--अगु०४--तस०४--णिमि०--पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। अवत्त० णत्थि अंतरं। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४--इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०--दूभग-दुस्सर--अणादें०-णीचा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० ऍक्कत्तीसं० दे०। णवरि थीणगिद्धि०३--मिच्छ०--अणंताणुबं०४ अवट्ठि० ज०ए०, उ० ऍक्कत्तीसं सा० सादि० अंतोमुहुत्तेण। सादासाद०-चदुणोक०--थिरादितिण्णियु० भुज०--अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। अवत्त० ज० उ० अंतो०। अट्ठकसाईसु तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० णत्थि अंतरं। पुरिस०--समचदु०-

है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें सहस्रारकल्पके समान भङ्ग है। आठ कषाय, औदारिकशरीर, औदारिकआङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्कर प्रकृतिके दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। देवगति-चारके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरको छोड़कर अन्तरकाल कहना चाहिए। तथा पञ्चेन्द्रियजाति और त्रस प्रकृतियोंका भङ्ग ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके समान है।

४८५. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक इकतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका अन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थ०-[-सुभग-]सुस्सर-आदें०-उच्चा० तिण्णिप० सादभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० ऍक्कत्तीसं० दे०। मणुसाउ० देवभंगो। देवाउ० मणजोगिभंगो। मणुसग०-ओरा०-ओरा०अंगो०-मणुसाणु० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० दे०। अवत्त० णत्थि अंतरं। देवगदि०४ तिण्णिप० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। अवत्त० ज० अट्ठारस० सादि०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। आहार-दुगं भुज०-अप्प०-[अवट्ठि०] ज० ए०, उ० अंतो०। अवत्त० ज० उ० अंतो०। वज्जरि० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० दे०। अवत्त० ज० अंतो०, उ० ऍक्कत्तीसं० दे०। तित्थ० तिण्णिप० णाणा०भंगो। अवत्त० णत्थि अंतरं। [भवसि० ओघं।] अब्भवसि० मदि०भंगो।

४८६. खइग० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिं०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज०

काल नहीं है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है। देवायुका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकआङ्गोपाङ्ग और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर साधिक अठारह सागर है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्य पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वज्रर्षभनाराचसंहननके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। भव्योंमें ओघके समान भङ्ग है। अभव्योंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

४८६. क्षायिकसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य

१. आ० प्रतौ ज० ए० उ० अंतो० इति पाठः। २. आ० प्रतौ पसत्थ० सुभग इति पाठः।
३. आ० प्रतौ ए० उ० अवत्त० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० । एवं साददंडओ च । णवरि अवत्त० ज० उ० अंतो० । अट्ठक० दोपदा० ओघं । अवट्ठि०-अवत्त० णाण०भंगो । मणुसाउ० देवभंगो । देवाउ० मणुसि०भंगो। मणुसगदिपंच० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० दे० । अवत्त० णत्थि० अंतरं । देवगदि०४–आहारदुगं तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० ।

४८७. वेदगस० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०भय-दु०-पंचिं०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४–अगु०४-पसत्थ०-तस०४–सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० छावट्ठि० देसू० । सादंडओ णाणा०भंगो । णवरि अवत्त० ज० उ० अंतो०। अट्ठक० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे० । अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि०। दोआउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। मणुसगदिपंच० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी सादि० अंतोमुहुत्तं । अवट्ठि० ज० ए०, उ० छावट्ठि० देसू० । अवत्त० ज० पलिदो० सादि०,

अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । इसी प्रकार सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आठ कषायोंके दो पदोंका भङ्ग ओघके समान है । अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है । देवायुका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है । मनुष्यगतिपञ्चकके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है ।

४८७. वेदकसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है । सातादण्डकका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आठ कषायोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । दो आयुओंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । मनुष्यगतिपञ्चकके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक एक पूर्वकोटि है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर

१. ता० आ० प्रत्योः णवरि अट्ठक० ज० उ० अंतो०, इति पाठः । २. आ० प्रतौ ए० उ० अवत्त० इति पाठः ।

उ० तेत्तीसं० सादि० । देवगदि०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० । अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० पलिदो० सादि०, उ० तेत्तीसं० सादि० । आहारदुगं भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० । अवट्ठि० णाणा०भंगो । तित्थ० ओघं । णवरि अवत्त० णत्थि अंतरं ।

४८८. उवसमं० पंचणा०--छदंसणा०--चदुसंज०--पुरिस०--भय-दु०--मणुस०-देवग०-पंचिं०-चदुसरीर--समचदु०--दोअंगो०-वज्जरि०--वण्ण०४--दोआणु०--अगु०४--पसत्थ०-तस--४--सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०--तित्थ०--उच्चा०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ज० ए०, उ० अंतो०। अवत्त० णत्थि अंतरं । सादासाद०-अट्ठक०-चदुणोक०-आहारदुग-थिरादितिण्णियु० तिण्णिपदा धुवियाणं भंगो । अवत्त० ज० उ० अंतो० ।

४८९. सासणे धुवियाणं तिण्णिपदा ज० ए०, उ० अंतो० । सेसाणं पि एसेव भंगो । णवरि अवत्त० णत्थि अंतरं । सम्मामि० धुविगाणं तिण्णिपदा० ज० ए०, उ० अंतो० । एवं सादादीणं पि । णवरि अवत्त० ज० उ० अंतो० । मिच्छादि० मदि०भंगो ।

४९०. सण्णी० पंचिंदियपज्जत्तभंगो । असण्णीसु धुवियाणं भुज०-अप्प० ज०

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । देवगतिचतुष्कके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है ।

४८८. उपशमसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, आठ कषाय, चार नोकषाय, आहारकद्विक और स्थिर आदि तीन युगलके तीन पदोंका भङ्ग ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

४८९. सासादनसम्यक्त्वमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंका भी यही भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । मिथ्यादृष्टियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है ।

४९०. संज्ञी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान भङ्ग है । असंज्ञी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली

---

१. ता० प्रतौ सादि० उ० उ० (?) तेत्तीसं इति पाठः । २. णत्थि अंत० । देवसम० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ओघं० । दोवेदणी०--सत्तणोक०--पंचजा०--छस्संठा०-ओरालि०अंगो०--छस्संघ०—पर०--उस्सा०--आदाउज्जो०--दोविहा०--तसादिदसयु० तिण्णिप० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० उ० अंतो० । चदुआउ०-वेउव्वियछ०-मणुस०३ तिरिक्खोघं । तिरिक्ख०३ तिण्णिप० णाणा०भंगो । अवत्त० ओघं । ओरालि० तिण्णिप० सादभंगो । अवत्त० ओघं ।

४६१. आहारगेसु पंचणाणावरणादिदंडओ ओघं । णवरि अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, दोण्हं पि [उ०] अंगुल० असंखे० । थीणगिद्धिदंडओ अवट्ठि०-अवत्त० णाणा०भंगो । सेसं ओघं । सादादिदंडओ ओघं । णवरि अवट्ठि० णाणा०-भंगो । इत्थि० मिच्छ०भंगो० । णवरि तिण्णिपदा ओघं । पुरिस० ओघं । अवट्ठि० णाणा०भंगो । णवुंसगदंडओ ओघं । अवट्ठि० णाणा०भंगो । तिण्णिआउ०--वेउ--व्वियछ०-मणुसगदितिग--आहारदुगं तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० अंगुल० असंखे० । तिरिक्खाउ० ओघं । अवट्ठि० णाणा०भंगो । तिरिक्खगदितिगं अवट्ठि०-अवत्त० णाणा०भंगो । दोपदा ओघं । एइंदियादिदंडओ ओघं । अवट्ठि० णाणा०भंगो । पंचिंदियदंडओ अवट्ठि० णाणा०भंगो । सेसाणं ओघं । ओरालि०

प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है । दो वेदनीय, सात नोकषाय, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति और त्रसादि दस युगलके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चों के समान है । तिर्यञ्चगतित्रिकके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है । औदारिकशरीरके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है । अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है ।

४६१. आहारकोंमें पाँच ज्ञानावरणादि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । स्त्यानगृद्धिदण्डकके अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । शेष भङ्ग ओघके समान है । सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । स्त्रीवेदका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । इतनी विशेषता है कि तीन पद ओघके समान हैं । पुरुषवेदका भङ्ग ओघके समान है । मात्र अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । नपुंसकवेददण्डकका भङ्ग ओघके समान है । मात्र अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । तीन आयु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगतित्रिक और आहारकद्विकके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यञ्चआयुका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । तिर्यञ्चगतित्रिकके अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । तथा दो पदोंका भंग ओघके समान है । एकेन्द्रियजाति आदि दण्डकका भंग ओघके समान है । मात्र अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । पञ्चेन्द्रियजाति दण्डकके

१. आ० प्रतौ पंचणा० छस्संठा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवट्ठि०-अवत्त० णाणा०भंगो। सेसं ओघं। समचदु०दंडओ ओघं। अवट्ठि० णाणा० भंगो। सेसं ओघं। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं अंतरं समत्तं।

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो

४६२. णाणाजीवेहि भंगविचयाणु० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघेण पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०-ओरालि०--तेजा०-क०-वण्ण०४—अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०--अप्पद०--अवट्ठिदबंधगा णियमा अत्थि। सिया एदे य अवत्तगे य। सिया एदे य अवत्तगा य। सादासाद०-सत्तणोक०--तिरिक्खाउ-दुगदि-पंचजादि-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०--दोआणु०--पर०-उस्सा०--आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयु०--दोगोद० भुज० अप्प० अवट्ठि० अवत्तव्वबंधगा य णियमा अत्थि। तिण्णिआउ० सव्वपदा भयणिज्जा। वेउव्वियछ०--आहारदुग--तित्थ० भुज०--अप्प० णियमा अत्थि। अवट्ठि०-अवत्त० भयणिज्जा। एवं ओघभंगो कायजोगि०—ओरालि०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति।

४६३. णिरएसु धुविगाणं भुज०-अप्प० णिय० अत्थि। सिया एदे य अवट्ठिदगे

अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। शेष पदोंका भङ्ग ओघके समान है। औदारिकशरीरके अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। शेष पदोंका भङ्ग ओघके समान है। समचतुरस्रसंस्थानदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। मात्र अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। मात्र अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। मात्र अवस्थितपदका भंग ज्ञानावरणके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भंग है।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगम

४६२. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये अनेक जीव हैं और एक अवक्तव्यपदका बन्धक जीव है। कदाचित् ये अनेक जीव हैं और अनेक अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। तीन आयुओंके सब पद भजनीय हैं। वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। अवस्थित और अवक्तव्यपद भजनीय हैं। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

४६३. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य। सिया एदे य अवट्ठिदगा य। सेसाणं सव्वपगदीणं धुविगभंगो। णवरि अवट्ठि०-अवत्त० भयणिज्जा। दोण्इं आऊणं सव्वपदा भयणिज्जा। एवं सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरि०-देव--विगलिंदि०--पंचिं०-तस०अपज्ज०--बादरपुढ०-आउ०--तेउ०-वाउ०--बादरवण०पत्ते०पज्जत्त--वेउ०--इत्थि०--पुरिस०-विभंग०--सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंज०-तेउ०-पम्म०-वेदगसम्मादिट्ठि त्ति।

४६४. तिरिक्खेसु धुविगाणं भुज०--अप्प०--अवट्ठि० णिय० अत्थि। सेसाणं ओघं। एवं ओरालियमि०--कम्मइ०--णवुंस०--कोधादि०४--मदि०--सुद०असंज०-तिण्णिले०-अब्भव०-मिच्छा०-असण्णि-अणाहारग त्ति। णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहार० देवगदिपंचग० सव्वपदा भयणिज्जा।

४६५. मणुसेसु सव्वपगदीणं भुज०-अप्प०णिय० अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। चदुआउ० सव्वपदा भयणिज्जा। एवं सव्वमणुसाणं पंचिं०-तस०२--पंचमण-पंचवचि०-आभिणि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संज०-चक्खु०-ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मा०--खइग०-सण्णि त्ति।

४६६. मणुसअपज्ज०सव्वपगदीणं सव्वपदा भयणिज्जा। एवं वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगद०-सुहुमसं०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०।

नियमसे हैं। कदाचित् ये अनेक जीव हैं और एक अवस्थितपदका बन्धक जीव है। कदाचित् ये अनेक जीव हैं और अनेक अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं। शेष सब प्रकृतियोंका भंग ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थित और अवक्तव्यपद भजनीय हैं। दोनों आयुओंके सब पद भजनीय हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, देव, विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

४६४. तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। शेष प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके सब पद भजनीय हैं।

४६५. मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। चारों आयुओंके सब पद भजनीय हैं। इसी प्रकार सब मनुष्य, पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियपर्याप्त, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

४६६. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके सब पद भजनीय हैं। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, उपशम-

---

१. ता० प्रतौ पज्जत्ताबे (व) इति पाठः। २. आ० प्रतौ सव्वमणुसाणं पंचिं पंचिं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६७. सव्वएइंदि० पुढ०--बादर०--बादर०अप० मणुसाउ० ओघं। सेसाणं सव्वपदा णिय० अत्थि। एवं आउ०--तेउ०--वाउ०--बादर--बादरअप० तेसिं चेव सव्वसुहुम०-सव्ववण०-णिगोद०-बादरपत्ते०अपज्ज०।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समत्तं।

भागाभागाणुगमो

४६८. भागाभागाणु० दुवि०---ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०-ओरालि०--तेजा०-क०--वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुजगारबंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो? दुभागो सादिरेगो। अप्प० दुभागो देसू०। अवट्टि० सव्वजीवाणं असंखेंज्जदिभागो। अवत्त० सव्वजी० अणंतभा०। सादासाद०--सत्तणोक०--चदुआउ०--चदुगदि-पंचजादि--ओरा०--वेउव्वि०--छस्संठा०-ओरा०-वेउ०अंगो०-छस्संघ०-चदुआणु०-पर०-उस्सा०--आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादि-दसयु०-तित्थ०-दोगो० भुज० सव्वजी० दुभा० सादि०। अप्प० दुभा० देसू०। अवट्टि०-अवत्त० असंखें०भा०। एवं आहारदुगं। णवरि अवट्टि०-अवत्त० संखेंज्जदि-भा०। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि०-ओरा०-ओरा०मि०-कम्मइ०-णवुंस०-

सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

४६७. सब एकेन्द्रिय और पृथिवीकायिक तथा इनके बादर और बादर अपर्याप्त जीवोंमें मनुष्यायुका भंग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इनके बादर और बादर अपर्याप्त तथा सब सूक्ष्म, सब वनस्पतिकायिक, निगोद और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय समाप्त हुआ।

भागाभागानुगम

४६८. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगारपदके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? साधिक द्वितीय भागप्रमाण हैं। अल्पतरपदके बन्धक जीव कुछ कम द्वितीय भागप्रमाण हैं। अवस्थितपदके बन्धक जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, चार आयु, चार गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, छह संस्थान, औदारिक आंगोपांग, वैक्रियिक आंगोपांग, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल, तीर्थङ्कर और दो गोत्रके भुजगार पदके बन्धक जीव सब जीवोंके साधिक द्वितीय भागप्रमाण हैं। अल्पतरपदके बन्धक जीव कुछ कम द्वितीय भागप्रमाण हैं। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार आहारकशरीरद्विकका भंग है। इतनी विशेषता है कि अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिक-

१. ता० प्रतौ कायजोगि० ओरालि० मि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोधादि०४ –मदि०--सुद०--असंज०--अचक्खु०--तिरिणले०--भवसि०--अब्भवसि०--मिच्छादि०--असरिण०--आहार०-अणाहारग त्ति। एदेसिं किंचि० विसेसो णादव्वो। ओरालि० तित्थ० ओरालि०मि०-कम्मइ०-अणाहारएसु देवगदिपंच० आहारस०भंगो। अवत्त० णत्थि। सेसाणं णेरइगादीणं याव सरिण त्ति याओ असंखेंज्ज-अणंतजीविगाओ पगदीओ ताओ ओघं सादभंगो। याव संखेंज्जजीविगाओ पगदीओ ताओ ओघं आहार-सरीरभंगो।

एवं भागाभागं समत्तं।

परिमाणाणुगमो

४६६. परिमाणाणु० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४–अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०बंधगा केंत्तिया? अणंता। अवत्त० के०? संखेंज्जा। थीणगि०३–मिच्छ०-अट्ठक०-ओरालि० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० कें०? अणंता। अवत्त० कें०? असंखें०। दोवेदणी०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०-दोगदि--पंचजा०--छस्संठा०-ओरालि०अंगो०--छस्संघ०--दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग०-दोगो० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त० कें०? अणंता। तिण्णिआउ०-वेउ०छ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त०केत्ति०? असं-

काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इन मार्गणाओंमें जो कुछ विशेषता है वह जान लेनी चाहिए। औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका भंग आहारकशरीरके समान है। तथा अवक्तव्यपद नहीं है। शेष नरक आदिसे लेकर संज्ञी तक जो असंख्यात और अनन्त जीवोंके बँधनेवाली प्रकृतियाँ हैं, उनका भङ्ग ओघसे सातावेदनीयके समान है। तथा जो संख्यात जीवोंके बँधनेवाली प्रकृतियाँ हैं, उनका भंग ओघसे आहारकशरीरके समान है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

परिमाणानुगम

४६६. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्ण-चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-पदके बन्धक जीव कितने हैं? अनन्त हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं? संख्यात हैं। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, आठ कषाय और औदारिकशरीरके भुजगार, अल्पतर और अव-स्थितपदके बन्धक जीव कितने हैं? अनन्त हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। दो वेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकआङ्गो-पाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव अनन्त हैं। तीन आयु और वैक्रियिक छहके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेंज्जा । आहारदुगं भुज०-[अप्प०-]-अवट्ठि०-अवत्त० कें०? संखेंज्जा । तित्थ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० कें० ? असंखेंज्जा । अवत्त० कें० ? संखेंज्जा । एवं ओघभंगो काय-जोगि-ओरालि०-[णवुंस०-कोधादि०४-] अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति । णवरि ओरालि० तित्थ० संखेंज्जा ।

५००. णिरएसु मणुसाउ०सव्वपदा० तित्थय० अवत्त० कें०? संखेंज्जा । सेसाणं सव्वपदा कें० ? असंखें० । एवं सव्वणिरय--सव्वदेवा याव अपराजिदा त्ति वेउ०-वेउ०मि०--इत्थि०--पुरिस०--विभंग०-सासणसम्मादिट्ठि त्ति । णवरि इत्थि० तित्थ० संखें० ।

५०१. तिरिक्खेसु धुविगाणं तिण्णिपदा कें० ? अणंता । सेसाणं ओघं । एवं तिरिक्खोघभंगो मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णीसु । पंचिंदियतिरिक्ख०३ धुविगाणं तिण्णिपदा के० ? असंखें० । सेसाणं परियत्तमाणि-याणं चत्तारिपदा कें० ? असंखें० । एवं सव्वअपज्ज०-सव्वविगलिंदि०-पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरपत्तेग त्ति ।

५०२. मणुसेसु पंचणा०--णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०--ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४--अगु०-उप०--णिमि०--पंचंत० तिण्णिप० असंखें० । अवत्त०

कितने हैं ? असंख्यात हैं । आहारकद्विकके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षु-दर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं ।

५००. नारकियोंमें मनुष्यायुके सब पदोंके और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, देव, अपराजित विमान तकके सब देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं ।

५०१. तिर्यञ्चोंके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । शेष प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके समान मत्यज्ञानी, श्रुता-ज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंके चार पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिए ।

५०२. मनुष्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं । अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं । दो

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

संखेंज्जा। दोआउ०--वेउव्वि०छ०--आहार०२--तित्थ० चत्तारिपदा कें० ? संखेंज्जा। सेसाणं चत्तारिपदा कें० ? असंखें०। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपगदीणं सव्वपदा कॅत्तिया ? संखें०। मणुसिभंगो सव्वट्ठ०--आहार०-आहारमि०--अवगद०--मणपज्ज०-संजद०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुम०।

५०३. एइंदिएसु सव्वपगदीणं सव्वपदा कें०? अणंता। णवरि मणुसाउ० ओघं। एवं वणप्फदि-णियोद०।

५०४. पंचिंदिएसु पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-भय-दु०--तेजा०-क०-वण्ण०४--अगु०-उप०-णिमि०--तित्थय०--पंचंत० तिण्णिप० के० ? असंखें०। अवत्त० कें० ? संखें०। आहारदुगं सव्वप० कें० ? संखें०। सेसाणं चत्तारिपदा कें०? असंखें०। एवं पंचिंदियपज्ज०--तस-तसपज्ज०--पंचमण०--पंचवचि०--चक्खु०-सण्णि त्ति। ओरा०मि० कम्मइ०-[अणाहार०] तिरिक्खोघं। णवरि देवगदिपंचग० सव्वपदा संखेंज्जा।

५०५. आभिणि०--सुद०--ओधि० पंचणा०-छदंस--अट्ठक०-पुरिस०-भय-दु०-देवग०-पंचि०-वेउ०-तेजा०-क०--समचदु०-वेउ०अंगो०--वण्ण०४--देवाणु०-अगु०-पसत्थवि०-तस०४--सुभग-सुस्सर-आदें०--णिमि-तित्थ०--उच्चा०-पंचंत० तिण्णिप० के० ?

आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके चारों पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके चारों पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? संख्यात हैं। सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान भंग है।

५०३. एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? अनन्त हैं। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें जानना चाहिए।

५०४. पञ्चेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं? संख्यात हैं। आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके चारों पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इसीप्रकार पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिपञ्चकके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं।

५०५. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकआंगोपांग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखें० । अवत्त० केत्ति० ? संखें० । सादासाद०--अपच्चक्खाण०४--चदुणोक०--देवाउ०--मणुसगदिपंच०--थिरादितिण्णियु० चत्तारिप० कें० ? असंखें० । मणुसाउ०-आहारदुगं सव्वप० कें० ? संखें०। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-वेदग०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति । णवरि वेदग०-सम्मामि० धुविगाणं अवत्त० णत्थि ।

५०६. संजदासंज० धुविगाणं तिण्णिपदा परियत्तमाणियाणं चत्तारिपदा कें० ? असंखे० । तित्थ० सव्वप० के० ? संखे० ।

५०७. किण्ण--णीलाणं तित्थ० तिण्णप० कें० ? संखें० । तेउ--पम्मासु धुविगाणं[1] तिण्णिपदा कें० ? असंखें० । पच्चक्खा०४--देवगदि०४--तित्थ० अवत्त० संखेंज्जा । सेसपदा० असंखें० । सेसाणं सव्वप० असंखें० । मणुसाउ०-आहार०२ सव्वप० कें० ? संखें० । सुक्काए पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-भय-दु०-दोगदि-पंचजादि-चदुसरीर-दोअंगो०-वण्ण०४--दोआणु०-अगु०४--पसत्थवि०--तस०४--णिमि०-तित्थ०-पंचंत० तिण्णिप० कें० ? असं०। अवत्त० कें० ? संखें० । दोआउ०-आहार०२ सव्वपदा कें० ? संखें० । सेसाणं सव्वप० कें० ? असंखें० ।

५०८. खइग० पंचणा०--छदंस०--बारसक०--पुरिस०--भय-दु०-दोगदि-पंचिं०-

---

कितने हैं ? संख्यात हैं । सातावेदनीय, असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण चार, चार नोकषाय, देवायु, मनुष्यगतिपञ्चक और स्थिर आदि तीन युगलके चार पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । मनुष्यायु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं है ।

५०६. संयतासंयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके और परिवर्तमान प्रकृतियोंके चार पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।

५०७. कृष्ण और नील लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। पीत और पद्मलेश्यामें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। प्रत्याख्यानावरण चार, देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्य पदके बन्धक जीव संख्यात हैं तथा शेष पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। मनुष्यायु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, दो गति, पाँच जाति, चार शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। दो आयु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं।

५०८. क्षायिकसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय,

---

१. आ० प्रतौ धुविगाणं के० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चदुसरीर-समचदु०-दोअंगो०--वज्जरि०-वण्ण०४-दोआणु०-अगु०४--पसत्थ०-तस०४--सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० तिण्णिप० कें०? असंखें०। अवत्त० कें० ? संखें० । दोवेदणी०--चदुणोक०--थिरादितिण्णियु० सव्वपदा कें० ? असंखें० । दोआउ०-आहारदुगं सव्वप० कें० ? संखें० ।

५०९. उवसम० पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-पुरिस०-भय-दु०--दुगदि-पंचिं०-चदुसरीर-समचदु०--दोअंगो०--वज्जरि०--वण्ण०४--दोआणु०-अगु०४--पसत्थ०-तस०४--सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० तिण्णिप० के०? असंखें०। अवत्त० कें०? संखें०। आहारदुगं तित्थ० सव्वप० कें० ? संखेंज्जा। सेसाणं सव्वपदा कें० ? असंखेंज्जा ।

एवं परिमाणं समत्तं ।

खेंत्ताणुगमो

५१०. खेत्ताणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०--णवदंस०-मिच्छ०--सोलसक०-भय-दु०--ओरालि०--तेजा०-क०--वण्ण०४—अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०बंधगा केवडि खेंत्ते ? सव्वलोगे। अवत्त० कें० ? लोगस्स असंखेंज्जदिभागे । सादासाद०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०--दोगदि०-पंचजा०-छस्संठा०-

---

जुगुप्सा, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आंगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। दो वेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। दो आयु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं।

५०९. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आंगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। आहारकद्विक और तीर्थङ्करके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

क्षेत्रानुगम

५१०. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है। अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। सातावेदनीय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरा०अंगो०–छस्संघ०–दोआणु०–पर०–उस्सा०–आदाउज्जो०–दोविहा०–तसादिदसयु०-दोगो० चत्तारिप० कें० ? सव्वलोगे । तिण्णिआउ०-वेउव्वियछ०-आहार०२–तित्थ० सव्वप० कें० ? लो० असंखें० । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-ओरा०मि०–कम्म०–णवुंस०–कोधादि०४–मदि०–सुद०–असंज०–अचक्खु०–तिण्णिले०–भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि-आहार०-अणाहारए त्ति ।

५११. एइंदि०-सव्वसुहुमएइंदि० धुविगाणं तिण्णिपदा सव्वलो० । मणुसाउ० ओघं । सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वपदा कें० ? सव्वलो० । एवं पुढ०–आउ०–तेउ०-वाउ०–वणप्फदि०–णिगोद० तेसिं सव्वसुहुमाणं च । बादरएइंदि०पज्ज०–अपज्ज० धुवियाणं तिण्णिप० कें० ? सव्वलो० । सादासाद०–चदुणोक०–थिरादिदोण्णियु० सव्वप० कें० ? सव्वलो० । इत्थि०-पुरि०-तिरिक्खाउ०-चदुजा०-पंचसंठा०-ओरालि० अंगो०–छस्संघ०-आदा०–उज्जो०–दोविहा०–तस०-बादर०–सुभग०-दोसर०–आदें०-जस० चत्तारिप० कें० ? लो० संखें० । णवुंस०-एइंदि०-हुंड०-पर०-उस्सा०-थावर०-सुहुम-पज्जत्तापज्ज०-पत्ते०-साधा०-दूभग-अणादें०-अजस० तिण्णिप० कें० ? सव्वलो० । अवत्त० कें० ? लो० संखेज्ज० । मणुसाउ०-मणुसग०३ चत्तारिप० कें० ? लो०

असातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके चार पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । तीन आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके सब पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

५११. एकेन्द्रिय और सब सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है । मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है । शेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद और इन सबके सब सूक्ष्म जीवोंमें जानना चाहिए । बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि दो युगलोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, तिर्यञ्चायु, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, बादर, सुभग, दोस्वर, आदेय और यशःकीर्तिके चार पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है । नपुंसकवेद, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय, और अयशःकीर्तिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । मनुष्यायु और मनुष्यगति-

१. ता० प्रतौ छस्संघ० दोआवु० दोविहा० इति पाठः । २. आ० प्रतौ आदा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखें० । तिरिक्ख०३ तिण्णिप० केवडि० ? सव्वलो० । अवत्त० लो० असं० ।

५१२. बादरपुढ० तस्सेव अपज्ज० पंचणा०--णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०-भय०-दुगुं०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४—अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप कें० ? सव्वलो० । सादासाद०-चदुणोक०-थिराथिर--सुभासुभ० चत्तारिप० सव्वलो० । इत्थि०-पुरिस०--दोआउ०--मणुसग०--चदुजा०--पंचसंठा०--ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव०-दोविहा०-तस-बादर--सुभग-दोसर-आदें०-[जस०]-उच्चागो० चत्तारिप० लो० असं० । णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-पर०--उस्सा०-थावर०-सुहुम-पज्जत्तापज्ज०-पत्ते०-साधार०--दूभग०-अणा०-अजस०--णीचा० तिण्णिप० सव्वलो० । अवत्त० लो० असंखें० । एवं बादरआउ०--तेउ०--वाउ० तेसिं चेव अपज्ज० बादर०-पत्ते० तस्सेव अपज्ज० । णवरि बादरवाउ० जम्हि लोग० असंखें० तम्हि लो० संखें० । सेसाणं णेरइगादीणं याव सण्णि त्ति संखेज्ज--असंखेंज्जजीविगाणं सव्वपदा कें० ? लो० असंखेंज्जदिभागे ।

एवं खेत्तं समत्तं ।

त्रिकके चार पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है । तिर्यञ्चगतित्रिकके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है ।

५१२. बादर पृथिवीकायिक और उसके अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभके चार पदोंके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, बादर, सुभग, दो स्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके चार पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । इसी प्रकार बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक और उनके अपर्याप्त तथा बादर प्रत्येकशरीर और उनके अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, वहाँ पर बादर वायुकायिक जीवोंमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहना चाहिए । शेष नारकीआदिसे लेकर संज्ञी तकके संख्यात और असंख्यात संख्याक जीवोंमें सब पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है ।

इस प्रकार क्षेत्र समाप्त हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फोसणाणुगमो

५१३. फोसणाणु० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०बंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलो०। अवत्त० लो० असंखे०। थीणगिद्धि०३-अणंताणु०४ तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० अट्ठचो०। सादासाद०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०-दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-दोगो० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त० कें०? सव्वलो०। मिच्छ० तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० अट्ठ-बारह०। अपच्चक्खाण०४ तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० छचो०। णिरय-देवाउ०-आहार०२ चत्तारिप० कें०? लो० असं०। मणुसाउ० चत्तारिप० अट्ठचो० सव्वलो०। णिरय-देवग०-दोआणु० तिण्णिप० छचो०। अवत्त० खेत्त०। ओरालि० तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० बारहचो०। वेउव्वि०-वेउव्वि०-अंगो० तिण्णिप० बारह०। अवत्त० खेत्त०। तित्थयरं तिण्णिप० अट्ठ०। अवत्त० खेत्त०।

स्पर्शनानुगम

५१३. स्पर्शानुगम दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन और अनन्तानुबन्धी चारके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? सब लोकका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु और आहारकद्विकके चार पदोंके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके चार पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकका स्पर्शन किया है। नरकगति, देवगति और दो आनुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आंगोपांगके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१४. णिरएसु धुविगाणं तिण्णिप० छचों०। थीणगि०३–अणंताणु०४–तिण्णि-

पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण आदिके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपद एकेन्द्रियादि सब जीवोंके होते हैं, इसलिए इनका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा उनका अवक्तव्य पद उपशमश्रेणिसे गिरनेवाले मनुष्य और मनुष्यिनीके तथा ऐसे जीवके मरकर देव होने पर प्रथम समय में होता है, इसलिए इसका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन और अनन्तानुबन्धी चारके भुजगार आदि तीन पदोंका स्वामित्व पाँच ज्ञानावरणके समान है, इसलिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सर्व लोक कहा है। तथा इनका अवक्तव्यपद ऊपरके गुणस्थानोंसे गिरकर इनके बन्धके प्रथम समयमें होता है। ऐसे जीवोंका स्पर्शन देवोंकी मुख्यतासे कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि कुछ परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और कुछ अध्रुवबन्धिनी हैं। इनके भुजगार आदि पदोंका बन्ध एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके सम्भव है, अतः इनके सब पदोंके बन्धकोंका स्पर्शन सर्वलोक प्रमाण कहा है। मिथ्यात्वके सब पदोंका स्पर्शन स्त्यानगृद्धित्रिकके समान घटित कर लेना चाहिए। मात्र नीचे कुछ कम पाँच राजू और ऊपर कुछ कम सात राजू प्रमाण क्षेत्रमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी इसका अवक्तव्यबन्ध सम्भव है, इसलिये इस पदकी अपेक्षा इसका स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजू प्रमाण भी कहा है। अप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पद एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके सम्भव है, इसलिए इनकी अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनका अवक्तव्य पद ऊपर कुछ कम छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंके भी होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। नरकायु और देवायुका बन्ध असंज्ञी आदि मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदके बिना करते हैं और आहारकद्विकका संयत जीव करते हैं, अतः इनके चारों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है। मनुष्यायुके चारों पद देवोंके विहारादिके समय और एकेन्द्रियोंके सम्भव हैं, अतः इसके चारों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक प्रमाण कहा है। जो तिर्यञ्च और मनुष्य नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं,उनके क्रमसे नरकगतिद्विक और देवगतिद्विकके भुजगार आदि तीन पद सम्भव हैं, अतः इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। परन्तु मारणान्तिक समुद्घातके समय इनका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। औदारिकशरीरके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन ज्ञानावरणके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा नारकी और देव उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें औदारिक शरीरका अवक्तव्यबन्ध करते हैं, इसलिए इस पदकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। तिर्यञ्चों और मनुष्योंके नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय वैक्रियिक शरीरद्विकके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन कहा है,पर ऐसे मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके इनका अवक्तव्यपद नहीं होता; इसलिए इसकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। विहारादिके समय देवोंके तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद एक तो मनुष्योंके होता है और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जो मनुष्य दूसरे और तीसरे नरकमें उत्पन्न होते हैं, उनके होता है। इन सबके स्पर्शनका यदि विचार करते हैं,तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिए यह क्षेत्रके समान कहा है।

५१४. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे

वेद-तिरिक्ख०-छस्संठा०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-दोविहा०-तिण्णिमज्झिमजुग०-णीचा० तिण्णिप० छच्चों०। अवत्त० खेत्त०। सादासाद०-चदुणोक०-उज्जो०-थिरादितिण्णियु० सव्वप० छच्चों०। दोआउ०-मणुसगदितिय-तित्थ० सव्वपदा खेत्तं। मिच्छ० तिण्णि-पदा छच्चों०। अवत्त० पंचचों०। एवं सव्वणेरइगाणं अप्पप्पणो फोसणो णेदव्वो।

५१५. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप० सव्वलो०। थीणगिद्धि०३-अट्ठक०-ओरा० तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० खेत्त०। साददंडओ ओघो। दोआउ०-वेउव्वियछ०

चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, तीन वेद, तिर्यञ्चगति, छह संस्थान, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके तीन युगल और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, उद्योत, और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगतित्रिक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पद ही होते हैं। अन्यत्र भी जहाँ जो ध्रुव प्रकृतियाँ हैं, उनके यथासम्भव तीन पद ही होते हैं। और नारकियोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण है, इसलिए ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंकी अपेक्षा यह उक्तप्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धि आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके तीन पदोंकी अपेक्षा और सातावेदनीय आदिक तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके सब पदोंकी अपेक्षा भी यही स्पर्शन प्राप्त होता है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके यथायोग्य पद नारकियोंके मारणान्तिक समुद्घातके समय और उपपाद पदके समय भी सम्भव हैं। मात्र दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घातके समय या उपपादपदके समय इनमें से जो जहाँ बँधती हैं, उनका वहाँ अवक्तव्यबन्ध नहीं होता। मनुष्यगतित्रिक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका मारणान्तिक समुद्घातके समय भी बन्ध होकर मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय ही होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद छठे नरक तकके नारकियोंके मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, अतः इस अपेक्षासे कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। सब नारकियोंमें अपने-अपने स्पर्शनका विचारकर इसी प्रकार स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

५१५. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, आठ कषाय, और औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघं। मिच्छ० तिण्णिप० ओघं। अवत्त० सत्तचो०। मणुसाउ० चत्तारिप० लो० असंखे० सव्वलो०।

५१६. पंचिंदियतिरिक्ख ३ धुवियाणं तिण्णिपदा लो० असंखे० सव्वलो०। थीणगिद्धि०३-अट्ठक०-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरा०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-पर[1]०-उस्सा०-थावर०-सुहुम-पज्जत्तापज्ज०-पत्ते०-साधार०-दूभ०-अणादे०-णीचा०तिण्णिप० लो० असंखे० सव्वलो०। अवत्त० खेत्त०। सादासाद०-चदुणोक०-थिराथिर-सुभासुभ० चत्तारिप० लो० असं० सव्वलो०। मिच्छ०-अजस० तिण्णिप० लो० असं० सव्वलो०। अवत्त० सत्तचो०। इत्थि० तिण्णिप० दिवड्ढचो०। अवत्त० खेत्त०। पुरिस०-दोगदि-सम-

आयु और वैक्रियिक छहका भङ्ग ओघके समान है। मिथ्यात्वके तीन पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके चार पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चों में पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्त्यानगृद्धि आदिके तीन पद एकेन्द्रियादि सबके सम्भव हैं, इसलिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा भी सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। मात्र इनका अवक्तव्य पद जो गुणस्थानप्रतिपन्न तिर्यञ्च इनके अबन्धक होकर पुनः नीचे आकर इनका बन्ध करते हैं, उनके होता है। ऐसे तिर्यञ्चोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह क्षेत्र के समान कहा है। यहाँ सातावेदनीय दण्डक, दो आयु और वैक्रियिक छहका भङ्ग ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। मिथ्यात्वके तीन पद एकेन्द्रियादि तिर्यञ्चोंके सम्भव हैं, इसलिए इनकी अपेक्षा स्पर्शन भी ओघके समान कहा है। मात्र मिथ्यात्वका अवक्तव्य पद सब तिर्यञ्चोंके सम्भव नहीं है, किन्तु जो गुणस्थानप्रतिपन्न तिर्यञ्च मिथ्यात्व में आते हैं, उनके ही सम्भव है और सासादन से मारणान्तिक समुद्घात करते समय मिथ्यादृष्टि होकर ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें समुद्घात करते समय होता है। ऐसे जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजु प्रमाण उपलब्ध होता है, इसलिए इस अपेक्षा से यह उक्त प्रमाण कहा है। मनुष्यके चारों पदोंका बन्ध एकेन्द्रियादि जीवोंके सम्भव है, इसलिए इसके चारों पदोंकी अपेक्षा वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है।

५१६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, आठ कषाय, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभके चार पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्व और अयशःकीर्तिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया

१. आ०प्रतौ हुंड० पर० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चदु०-दोआणु०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदें०-उच्चा० तिण्णिप० छच्चों०। अवत्त० खेंत्त०। चत्तारिआउ०-मणुसगदि-तिण्णिजा०-चदुसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव० चत्तारिप० खेंत्त०। पंचिं०-वेउ०-वेउ०अंगो०-तस० तिण्णिप०[1] बारहचों०। अवत्त० खेंत्त०। उज्जो०-जस० सव्वप० सत्तचों०। बादर० तिण्णिप० तेरह०। अवत्त० खेंत्त०।

है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्र के समान है। पुरुषवेद, दो गति, समचतुरस्र-संस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। चार आयु, मनुष्यगति, तीन जाति, चार संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आतपके चार पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण होनेसे इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण अन्तकी आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय। स्त्यानगृद्धि आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उक्त प्रकारसे ही घटित कर लेना चाहिए। तथा यहाँ स्त्यानगृद्धि आदि प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद मारणान्तिक समुद्घातके समय और उपपाद पदके समय सम्भव न होनेसे इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। सातावेदनीय आदिके चारों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण और सब लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार मिथ्यात्व आदि दो प्रकृतियोंके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। तथा इन दो प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके मिथ्यात्व पदकी अपेक्षा बतला आये हैं, उस अवस्थामें ही सम्भव है; इसलिए इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। देवियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी स्त्रीवेदका बन्ध होता है, इसलिए इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है, पर ऐसी अवस्थामें इसका अवक्तव्य-पद नहीं होता; इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवोंमें और नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी पुरुषवेद आदिका यथायोग्य बन्ध होता है, अतः इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है, पर ऐसी अवस्थामें इनका अवक्तव्यबन्ध नहीं होता; इसलिए इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। चार आयु आदिके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि एक तो चार आयुओंके सब पद और शेष प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होते। और शेष प्रकृतियोंके तीन पद मारणान्तिक समुद्घातके समय होकर भी स्पर्शन लोकके असंख्या-

१. ता० आ० प्रत्योः तस०४ तिण्णिप० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१७. पंचिं०तिरिक्ख०अपज्ज० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप०लो०असं० सव्वलो०। सादासाद०-चदुणोक०-थिराथिर-सुभासुभ० चत्तारिप० लो० असंखें० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-चदुजा०-पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदें०-उच्चा० सव्वप० लो० असं०। णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-थावर०-सुहुम०-पज्जत्तापज्ज०-पत्ते०-साधा०-दूभ०-अणा०-णीचा० तिण्णिप० लो० असं० सव्वलो०। अवत्त० खेंत्त०। उज्जो०-जस० चत्तारिप० सत्तचों०। बादर० तिण्णिप० सत्तचों०। अवत्त० खेंत्त०। अज० तिण्णिप० लो० असं० सव्वलो०। अवत्त० सत्तचों०। एवं[1] सव्वअपज्ज०-सव्व-

तवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। देवोंमें और नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी पञ्चेन्द्रियजाति आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इन पदोंकी अपेक्षा इनका स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। पर ऐसे समयमें इनका अवक्तव्य पद नहीं होता, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी उद्योत और यशःकीर्तिके सब पद सम्भव हैं, इसलिए इनके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। ऊपर सात और नीचे छह इस प्रकार कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूका स्पर्शन करते समय बादर प्रकृतिके तीन पद सम्भव होनेसे इसका तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। पर ऐसी अवस्थामें इसका अवक्तव्य पद सम्भव नहीं है, इसलिए इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

५१७. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभके चार पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके चार पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयशःकीर्तिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक

१. ता० प्रतौ सव्वलो०। एवं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विगलिंदि०-बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०पज्जत्ता०बादरपत्ते०पज्जत्तगाणं च। णवरि तेउ-वाऊणं मणुसगदिचदुक्कं वज्ज। वाऊणं जम्हि लोग० असंखेंज्ज० तम्हि लोग० संखेंज्ज०।

५१८. मणुस०३ पंचणा०-णवदंस०-सोलसक[1]-णवुंस०-भय-दु०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर०-सुहुम०-पज्ज०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-दूभ०-अणादें०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० तिण्णिप० लो० असं०

पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मनुष्यगतिचतुष्कको छोड़कर यह स्पर्शन कहना चाहिए। तथा जहाँ पर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है, वहाँ वायुकायिक जीवोंमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहना चाहिए।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण बतलाया है। इस सब स्पर्शनके समय इनके ज्ञानावरणादिके तीन पद और साता-वेदनीय आदिके चार पद सम्भव होनेसे यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च-अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें और मनुष्योंमें जब मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, तब भी स्त्रीवेद आदिका यथायोग्य बन्ध होता है, पर ऐसे जीवोंका स्पर्शन भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे इनके स्त्रीवेद आदिके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ सब एकेन्द्रियोंमें यथायोग्य मारणान्तिक समुद्घात करते समय नपुंसकवेद आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए यहाँ इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। पर ऐसे समयमें इनके इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं होता, इस-लिए इसकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय इनके उद्योत और यशःकीर्तिके चार पद सम्भव हैं, इसलिए इन दो प्रकृतियोंके चार पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। इसी प्रकार बादरके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण घटित कर लेना चाहिए। पर इसका अवक्तव्य पद मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, अतः इसकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। जो पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त सब एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी अयशःकीर्तिके तीन पद सम्भव हैं, अतः इस प्रकृतिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। यहाँ सब अपर्याप्त आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ कही हैं, उनमें यह स्पर्शन बन जाता है। इसलिए उनमें यह स्पर्शन पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र अग्निकायिक और वायु-कायिक जीवोंके मनुष्यगति आदि चारका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनमें इनका स्पर्शन नहीं कहना चाहिए। तथा वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण होनेसे इनमें लोकके असंख्यातवें भागके स्थानमें उक्त स्पर्शन कहना चाहिए।

५१८. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान,

---

१. ता०प्रतौ पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक०, आ०प्रतौ पंचणा० छदंस० मिच्छ० सोलसक० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वलो० । अवत्त० खेत्त० । सादादिदंडओ मिच्छत्तदंडओ पंचिं०तिरि०भंगो । इत्थि०-पुरि०-चदुआउ०-तिगदि-चदुजा०-वेउ०-आहार०-पंचसंठा०-तिण्णिअंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-आदाव०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदें०-तित्थ०-उच्चा० चत्तारिप० खेत्तभंगो । उज्जो०-जस० चत्तारिप० बादर० तिण्णिप० सत्तचों० । अवत्त० खेत्त-भंगो ।

५१९. देवेसु धुविगाणं तिण्णिप० अट्ठ-णव० । थीणगिद्धि०३-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-दूभग०-अणादें०-णीचा० तिण्णि-प० अट्ठ-णव० । अवत्त० अट्ठचों० । सादासाद०-मिच्छ०-चदुणोकसाय-उज्जो०-थिरादि-तिण्णियु० सव्वप० अट्ठ-णव० । इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुसग०-पंचिं०-पंचसंठा०-

---

वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डक और मिथ्यात्वदण्डकका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार आयु, तीन गति, चार जाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, पाँच संस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके चार पदोंके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके चार पदोंके तथा बादरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्शन है। इनके पाँच ज्ञानावरणादिके तीन पदोंकी अपेक्षा यह स्पर्शन बन जानेसे यह उक्तप्रमाण कहा है। पर यहाँ इनका अवक्तव्य पद सब लोकप्रमाण स्पर्शनके समय सम्भव नहीं है, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। कारणका विचार कर कथन कर लेना चाहिए। सातावेदनीयदण्डक और मिथ्यात्वदण्डकका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ सातादण्डकसे सातावेदनीय, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभका तथा मिथ्यात्वदण्डकसे मिथ्यात्व और अयशःकीर्तिका ग्रहण होता है। इनमें स्त्रीवेद आदिके चारों पद यथायोग्य लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शनके समय ही होते हैं, इसलिए यह स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी इनके उद्योत और यशःकीर्तिके चार पद और बादरके तीन पद सम्भव हैं, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। पर ऐसी अवस्थामें बादर प्रकृतिका अवक्तव्यपद नहीं होता, अतः इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

५१९. देवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असाता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसर०-आदें०-उच्चा० सव्वप० अट्ठचो०। तित्थय० तिण्णिप० अट्ठचो०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं।

५२०. एइंदि०-पुढ०-आउ०[1]-तेउ०-वाउ० तेसिं चेव बादर-बादरपत्ते० तेसिं चेव अपज्ज० सव्ववणप्फदि-णियोद० सव्वसुहुमाणं च खेत्तभंगो। णवरि मणुसाउ० सव्वाणं तिरिक्खोघं। उज्जो०-जस० सव्वप० सत्तचो०। एवं बादर०। णवरि अवत्त० खेत्त०। अजस० तिण्णिपदा सव्वलो०। अवत्त० सत्तचो०।

वेदनीय, मिथ्यात्व, चार नोकषाय, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंके अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिये।

विशेषार्थ—देवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू व कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण है। ध्रुवबन्धवाली और स्त्यानगृद्धि आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा तथा सातावेदनीय आदि के चार पदोंकी अपेक्षा यह स्पर्शन बन जाता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। मात्र स्त्यानगृद्धि आदिका अवक्तव्य पद एकेद्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव न होनेसे इसकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। यहाँ ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तराय। स्त्रीवेद आदि के चारों पदोंकी अपेक्षा और तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। यहाँ जो अन्य विशेषता है, वह अलगसे जान लेनी चाहिए। सब देवोंका जो अलग-अलग स्पर्शन है, उसे समझ कर तदनुसार उनमें भी यह स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

५२०. एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इनके बादर, बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक और इन सबके अपर्याप्त, सब वनस्पतिकायिक, निगोद और सब सूक्ष्म जीवोंमें क्षेत्रके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इन सबमें मनुष्यायुका भङ्ग समान्य तिर्यञ्चोंके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार बादर प्रकृतिका जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयशःकीर्तिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ एकेन्द्रिय और पृथिवीकाय आदिके जितने प्रकार बतलाये हैं, उनमें सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन और क्षेत्रमें अन्तर नहीं होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। मात्र मनुष्यायुके सब पदोंके बन्धक जीव थोड़े होते हैं। इसलिए यहाँ इसके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहा है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पद तथा बादर

१. ता० आ०प्रत्योः एइंदि० हुंड० आउ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२१. पंचिंदि०-तस०२ पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-पज्ज०-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप० अट्ठ० सव्वलो०। अवत्त० खेत्त०। थीणगि०३-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-दूभग०-अणादें०-णीचा० तिण्णिप० लो० असं० अट्ठ० सव्वलो०। अवत्त० अट्ठ०। सादासाद०-चदुणोक०-थिराथिर-सुभासुभ० चत्तारिप० अट्ठ० सव्वलो०। [मिच्छत्त० तिण्णिपदा० अट्ठचो० सव्वलो०।] अवत्त० अट्ठ-बारह०। अपच्चक्खाण०४ तिण्णिप० अट्ठ० सव्वलो०। अवत्त० छचो०। इत्थि०-पुरिस०-पंचिं-पंचसंठा[1]-ओरा०अंगो०-चदुस्संघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदें० तिण्णिप० अट्ठ-बारह०। अवत्त० अट्ठचो०। णिरय-देवाउ०[2]-तिण्णिजा०-आहार०२ सव्वपदा खेत्तं।

के तीन पद ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव होनेसे यह स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। किन्तु बादरका अवक्तव्यपद ऐसे समयमें सम्भव नहीं है, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। अयशःकीर्तिके तीन पद उक्त जीवोंके सब अवस्थाओंमें सम्भव हैं, इसलिए इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है। पर इसके अवक्तव्यपदका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। हाँ, ये जीव जब ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, तब भी इसका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इसका भी स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है।

५२१. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभके चार पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु, तीन जाति और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके

---

१. आ० प्रतौ पुरिस० पंचं० पंचसंठा० इति पाठः। २. आ० प्रतौ अवत्त० णिरयदेवाउ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-आदाव०-उच्चा० सव्वपदा[1] अट्ठचों० । णिरय-देवगदि-दोआणु० तिण्णिप० छच्चों० । अवत्त० खेत्तं० । ओरालि० तिण्णिप० अट्ठ० सव्वलो० । अवत्त० बारह० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० तिण्णिप० बारहचों० । अवत्त० खेत्त० । उज्जो०-जस सव्वप० अट्ठ-तेरह० । बादर० तिण्णिप० अट्ठ-तेरह० । अवत्त० खेत्त० । सुहुम०-अपज्ज०[2]-साधा० तिण्णिप० लो० असं० सव्वलो० । अवत्त० खेत्त० । अजस० तिण्णिप० अट्ठचों० सव्वलो० । अवत्त० अट्ठ-तेरह० । तित्थ०तिण्णिप० अट्ठचों० । अवत्त० खेत्तं । एवं पंचिंदियभंगो पंचवचि०-चक्खु०-सण्णि त्ति । कायजोगि-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति ओघभंगो ।

समान है । दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । नरकगति, देवगति और दो आनुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । औदारिक शरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । बादरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अयशःकीर्ति के तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियोंके समान पाँचो मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए । काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षु-दर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंका विहारादिकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और मारणान्तिकपदकी अपेक्षा स्पर्शन सब लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरणादिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है । मात्र इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद इन मार्गणाओंमें ओघके समान होनेसे अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । इन मार्गणाओंमें स्त्यानगृद्धि तीन आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, विहारादिकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शन सर्वलोकप्रमाण प्राप्त होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है ।

---

१. आ० प्रतौ आदाव उज्जो० सव्वपदा इति पाठः । २. आ० प्रतौ अट्ठतेरह० अवत्त० अट्ठतेरह० अपज्ज० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ इनका अवक्तव्यपद विहारादिके समय भी सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इनके अवक्तव्य-पदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिके चारों पद विहारादिके समय और मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव होनेसे इनके चारों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण कहा है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके तीन पदोंकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिके समान घटित कर लेना चाहिये। तथा जो संयतासंयत आदि मर कर देवोंमें उत्पन्न होते हैं, उनके प्रथम समयमें इनका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इनके अवक्तव्यपदका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। देवोंमें विहारादिके समय और देवों व नारकियोंके मनुष्यों व तिर्यंचोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय स्त्रीवेद आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। किन्तु मारणान्तिक समुद्घातके समय इनका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। नरकायु आदिके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। शेष दो आयु और मनुष्यगति आदिके सब पदोंका बन्ध देवोंमें विहारादिके समय भी सम्भव होनेसे यह कुछ आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तिर्यञ्चों और मनुष्योंके नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नरकगतिद्विकके और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय देवगतिद्विकके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मात्र ऐसे समयमें इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवोंमें विहारादिके समय और सब एकेन्द्रियोंमें औदारिकशरीरके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण कहा है। मात्र मुख्यतासे जो तिर्यंच और मनुष्य मर कर नारकियों और देवोंमें उत्पन्न होते हैं, उनके प्रथम समयमें इसका अवक्तव्यपद होता है। इसलिए इसके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मनुष्यों और तिर्यंचोंके नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी वैक्रियिकद्विकके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। पर ऐसे समय में इनका अवक्तव्यपद सम्भव न होनेसे इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंका बन्ध विहारादिके समय और नीचे कुछ कम छह राजू व ऊपर कुछ कम सात राजूप्रमाण स्पर्शनके समय भी सम्भव होनेसे इनके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। इसी प्रकार बादर प्रकृतिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। मात्र ऐसे समयमें इसका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। सूक्ष्मादिके तीन पदोंकी अपेक्षा वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण होनेसे यह उक्तप्रमाण कहा है। तथा इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। विहारादिके समय और सब एकेन्द्रियोंमें अयशःकीर्तिके तीन पद सम्भव होनेसे इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण कहा है। तथा इसके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू यशःकीर्तिके समान जान लेना चाहिए। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पद विहारादिके समय सम्भव होनेसे इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा ऐसे समयमें इसका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। यहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२२. ओरालि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०- वण्णा०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप० सव्वलो० । अवत्त० खेंत्त० । णवरि मिच्छत्तस्स अवत्त० सत्तचों०। सादादिदंडओ ओघं । सेसं तिरिक्खोघं । ओरालियमि० धुविगाणं तिण्णिप० सव्वलो० । सादादिदंडओ ओघं । मणुसाउ० तिरिक्खोघं । देवगदिपंचगस्स सव्वपदा खेंत्तभंगो। मिच्छ० तिण्णिप० णाणा०भंगो। अवत्त० खेंत० ।

५२३. वेउव्वियका० धुविगाणं तिण्णिप० अट्ट-तेरह० । थीणगि०३-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-दूभ०-अणादें०-णीचा० तिण्णिप० अट्ट-तेरह० । अवत्त० अट्टचों० । सादासाद०-चदुणोक०-उज्जो०-थिरादितिण्णियु० सव्वप० अट्ट-तेरह० । मिच्छ० तिण्णिप० अट्ट-तेरह० । अवत्त०[1] अट्ट-बारह० । इत्थि०-पुरिस०-

पाँच मनोयोगी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ हैं, उनमें यह स्पर्शन अविकल बन जाता है। इसलिए उनमें पंचेन्द्रियोंके समान स्पर्शन जाननेकी सूचना की है। तथा काययोगी आदि मार्गणाओंमें ओघप्ररूपणा घटित हो जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। इसी प्रकार आगे भी मार्गणाओंमें अपने-अपने स्वामित्वको जानकर स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। जहाँ विशेषता होगी, उसका निर्देश करेंगे ।

५२२. औदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। शेष भङ्ग सामान्य तिर्यंचोंके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यंचोंके समान है। देवगतिपंचकके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

५२३. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद,

१. ता० प्रतौ अट्ठतेरह० । अवत्त० अट्ठतेरह० । अवत्त० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिं०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर-आदें० तिण्णिप० अट्ठ-बारह० । अवत्त० अट्ठचों० । दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-आदा०-उच्चा० सव्वप० अट्ठचों० । एइंदि०-थावर० तिण्णिप० अट्ठ-णव० । अवत्त० अट्ठचों०। तित्थ० ओघं। वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि० खेत्तभंगो ।

५२४. कम्मइ० धुविगाणं तिण्णिप० सव्वलो० । सेसं ओरालियमि०भंगो । णवरि मिच्छ० अवत्त० एक्कारह० ।

५२५. इत्थिवे० पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-पंचंत० तिण्णिप० लो० असं० अट्ठचों० सव्वलो० । थीणगिद्धि०३-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर-दूभग-अणादें०-णीचा० तिण्णिप० अट्ठचों० सव्वलो० । अवत्त० अट्ठचों० । णिद्दा-पयला-अट्ठक०[1]-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० तिण्णिप० अट्ठचों० सव्वलो० । अवत्त० खेत्त० । [सादासाद०-चदुणोक०-थिरा-

पुरुषवेद, पंचेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धक जीवोंका भङ्ग ओघके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

५२४. कार्मणकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—नीचे पाँच राजू और ऊपर छह राजू इस प्रकार मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजू स्पर्शन जानना चाहिए।

५२५. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर,

१. ता० प्रतौ णिद्दा पयला य० (१) अट्ठक०, आ०प्रतौ णिद्दा पयला य अट्ठक० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थिर-सुभासुभ० चत्तारिपदा० अट्ठचो० सव्वलो० ।] मिच्छ० तिण्णिप० अट्ठचो० सव्वलो० । अवत्त० अट्ठ-णव० । दोआउ०-इत्थि०-पुरिस०-मणुस०-पंचसंठा०-ओरालि०-अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु-आदाव-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० सव्वपदा अट्ठ-चो० । दोआउ०-तिण्णिजा०-आहार०२-तित्थ० सव्वप० खेत्त० । दोगदि-दोआणु० तिण्णिप० छच्चो० । अवत्त० खेत्त० । पंचिं०-अप्पसत्थ०-तस-दूसर० तिण्णिप० अट्ठ-बारह० । अवत्त० अट्ठचोद्द० । ओरालि० तिण्णिप० अट्ठ० सव्वलो० । अवत्त० दिवड्ढ-चो० । [वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० तिण्णिप० बारहचो० । अवत्त० खेत्त० ।] उज्जो०-जस० सव्वप० अट्ठ-णव० । बादर० तिण्णिप० अट्ठ-तेरह० । अवत्त० खेत्त० । सुहुम-अपज्ज०-साधार० तिण्णिप० लो० असंखे० सव्वलो० । अवत्त० खेत्त० । [अजस० तिण्णिप० अट्ठचो० सव्वलो० । अवत्त० अट्ठ-णवचो० ।] पुरिसेसु इत्थिभंगो । णवरि अपच्चक्खाण०४-ओरालि० अवत्त० लो० असं० छच्चो० । तित्थ० ओघं ।

शुभ और अशुभके चारों पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, आतप, प्रशस्त विहायगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दो गति और दो आनुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पंचेन्द्रियजाति, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस और दुःस्वरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाणक्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयशःकीर्तिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेदी जीवोंमें स्त्रीवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२६. णवुंस० पंचणा०–चदुदंस०–चदुसंज०[1]–पंचंत० तिण्णिप० सव्वलो०। पंचदंस०–बारसक०–भय–दु०–तेजा०–क–वण्ण०४–अगु०–उप०–णिमि० तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त०[2] खेंत्त०। सादादिदंडओ ओघं। मिच्छ० तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० बारह०। दोआउ०–आहार०२–तित्थ० खेंत्तभंगो। मणुसाउ०–वेउव्वियछ० तिरिक्खोघं। ओरालि० तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० छच्चों०। अवगद० सव्वपग० भुज०–अप्प०–अवत्त० खेंत्तभंगो।

किया है। तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धक जीवोंका भङ्ग ओघके समान है।

५२६. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मनुष्यायु और वैक्रियिक छहके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—नीचे छठे नरक तक के नारकी मनुष्य व तिर्यञ्चोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय तथा तिर्यञ्च और मनुष्य ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय यदि मिथ्यात्वका अवक्तव्यबन्ध करें,तो सब मिलाकर कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन प्राप्त होता है,यह देखकर यहाँ मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। पहले औदारिककाययोगमें और वैक्रियिककाययोगमें कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण यह स्पर्शन कह आये हैं सो वहाँ भी ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करा कर ले आना चाहिए। पहले कार्मणकाययोगमें यह स्पर्शन कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण कह आये हैं। ऊपर सात राजू तो स्पष्ट हैं। नीचे जो पाँच राजू कहे हैं सो उसका अभिप्राय है कि जो सातवें नरकका नारकी सम्यक्त्व या सासादनसे मिथ्यात्वमें आता है,वह मरकर उसी समय कार्मणकाययोगी नहीं हो सकता। यह पात्रता छठे नरक तक ही सम्भव है। आशय यह है कि कार्मणकाययोगके प्राप्त होनेके पूर्व समयमें सम्यग्दृष्टि या सासादनसम्यग्दृष्टि हो और कार्मणकाययोगमें मिथ्यादृष्टि हो, यह पात्रता छठे नरक तक से मरनेवाले नारकीके ही हो सकती है। यही कारण है कि नीचे यह स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। यह तो स्पष्ट है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मर कर नरकके सिवा तीन गतिमें उत्पन्न होता है और इन गतियोंमें उत्पन्न होने पर क्रमसे दो में औदारिकमिश्रकाययोग और देवोंमें वैक्रियिकमिश्रकाययोग होता है। तथा इन योगोंके रहते हुए ही मिथ्यात्व गुणस्थान प्राप्त होने पर प्रथम समयमें मिथ्यात्वका अवक्तव्यबन्ध भी होता है। यही कारण है कि इन दोनों योगोंमें

१. ता० प्रतौ चदुसं (दंस०) चदुसंज० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः तिण्णिप० अट्ठतेरह० अवत्त० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२७. मदि०-सुद० धुविगाणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० सव्वलो० । सेसं ओघं । णवरि देवगदि-देवाणु० तिण्णिप० पंचचो० । अवत्त० खेत्त० । ओरालि० तिण्णिप० सव्वलो० । अवत्त० एक्कारह० । वेउ०-वेउ०अंगो० तिण्णिप० एक्कारह० । अवत्त० खेत्त० । विभंगे धुविगाणं तिण्णिप० अट्ठ० सव्वलो० । सेसं पंचिंदियभंगो । णवरि वेउ०छ० मदि०भंगो । ओरालि० अवत्त० खेत्त० ।

५२८. आभिणि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुस०-पंचिंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-

---

मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आवश्यक समझकर यहाँ यह प्रासंगिक स्पष्टीकरण किया है।

५२७. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिक छहका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। तथा औदारिकशरीरके अवक्तव्यका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—जो तिर्यञ्च और मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके देवगतिद्विकका भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्ध सम्भव है। किन्तु यह सहस्रारकल्प तक मारणान्तिक समुद्घात करनेवालेके ही होता है, आगेके देवोंमें यह समुद्घात करनेवालेके नहीं; क्योंकि आगेके देवोंमें ऐसे मनुष्य और तिर्यञ्च ही मारणान्तिक समुद्घात करते हैं जो विशुद्ध परिणामवाले होते हैं। अतः इनके इन पदोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय देवगतिद्विकका नियमसे बन्ध होता है, अतः इनके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। सभी एकेन्द्रिय जीव औदारिकशरीरका नियमसे बन्ध करते हैं। अतः इसके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्वलोकप्रमाण कहा है। जो तिर्यञ्च और मनुष्य सासादनमें आकर मरते हैं और विग्रहगतिमें औदारिकशरीरका अवक्तव्यबन्ध करते हैं, उनके अवक्तव्य बन्धका स्पर्शन कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण उपलब्ध होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। देवगतिद्विकके समान वैक्रियिकशरीरद्विकका सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसमें नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवालोंका तीन पदोंकी अपेक्षा कुछ कम छह राजू स्पर्शन और मिला लेना चाहिए। इसी कारणसे यहाँ इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५२८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वण्ण०४–मणुसाणु०–अगु०४—पसत्थ०–तस० ४—सुभग—सुस्सर–आदें०—णिमि०–तित्थ०–उच्चा०–पंचंत० भुज०–अप्प०–अवट्टि० अट्ठचों०। अवत्त० खेंत्त०। णवरि मणुसगदिपंचग० अवत्त० छच्चों०। सादासाद०–चदुणोक०–मणुसाउ०–थिरादि–तिण्णियु० चत्तारिपदा० अट्ठचों०[1]। अपच्चक्खाण०४ तिण्णिप० अट्ठचों०। अवत्त० छच्चोंद्द०। देवाउ०–आहार०२ ओघं। देवगदि०४ तिण्णिप० छच्चों०। अवत्त० खेंत्त०। एवं ओधिदं०–सम्मादि०–वेदग०। मणपज्ज०–संजद० याव सुहुमसं० खेंत्त-भंगो।

५२९. संजदासंज० धुविगाणं सव्वप० छच्चों०। देवाउ०–तित्थ० सव्वप०

संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति-पञ्चकके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, मनुष्यायु और स्थिर आदि तीन युगलके चारों पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंसे लेकर सूक्ष्म-साम्परायसंयत तकके जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—संयत मनुष्योंके तथा संयतासंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्योंके मर कर देवोंमें उत्पन्न होने पर मनुष्यगतिपञ्चकका अवक्तव्यबन्ध होता है। यतः इनका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण उपलब्ध होता है। अतः यहाँ मनुष्यगति-पञ्चकके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर प्रथम नरकमें भी जाते हैं और ऐसे जीवोंके भी प्रथम समयमें उक्त प्रकृतियोंका अवक्तव्य बन्ध होता है, पर इससे उक्त स्पर्शनमें कोई अन्तर नहीं आता; इतना यहाँ विशेष जानना चाहिये। संयत और संयतासंयत जीवोंके मर कर देव होने पर अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कका अवक्तव्यबन्ध होता है और इनका स्पर्शन भी कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण है। अतः इनके अवक्तव्यबन्धका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। यद्यपि संयत मनुष्योंके और संयता-संयत तिर्यञ्च व मनुष्योंके असंयत सम्यग्दृष्टि होने पर भी अप्रत्याख्यानावरण चारका अवक्तव्य बन्ध होता है, पर यह स्पर्शन पूर्वोक्त स्पर्शनमें सम्मिलित है; इतना यहाँ विशेष जानना चाहिये। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५२९. संयतासंयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और तीर्थङ्करके सब

१. ता० प्रतौ चत्तारिस (पदा)० अट्ठचो०, आ० प्रतौ चत्तारिस० अट्ठचो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेत्तभंगो। सेसाणं चत्तारिप० छब्बो०। असंजदेसु धुवियाणं तिण्णिप० सव्वलो०। सेसं ओघं।

५३०. किण्ण-णील-काऊणं धुवियाणं तिण्णिप० सव्वलो०। [मिच्छत्त० तिण्णिपदा० सव्वलो०।] अवत्त० पं०-चत्तारि-वेचो०। दोआउ०-देवगदिदुगं सव्वपदा खेत्त०। मणुसाउ० तिरिक्खोघं। थीणगि०३-अणंताणु०४ तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० खेत्त०। सादादिदंडओ ओघं। णिरय०-वेउव्वि०-[1]वेउव्वि०अंगो०-णिरयाणु० तिण्णिप० छच्चत्तारि-बेचो०। अवत्त० खेत्त०। ओरालि०[2] तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० छच्चत्तारि-बेचो०। तित्थ० तिण्णिप० खेत्त०। काऊए तित्थ० णिरयभंगो।

पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके चार पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। असंयतोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष भङ्ग ओघके समान है।

५३०. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम दो बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और देवगतिद्विकके सब पदोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। नरकगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और नरकगत्यानुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम दो बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम दो बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्करप्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। कापोतलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है।

विशेषार्थ—सातवें नरकका नारकी नियमसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मरण करता है। वहाँसे मरकर अन्य गतिमें उत्पन्न होते समय मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं बन सकता। यही कारण है कि यहाँ कृष्णलेश्यामें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। नील और कापोत लेश्यामें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका स्पर्शन कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम दो बटे चौदह राजू क्रमसे पाँचवें और तीसरे नरकसे मर कर और तिर्यञ्चों व मनुष्योंमें उत्पन्न होने पर मिथ्यात्वका अवक्तव्यबन्ध करनेवालोंकी अपेक्षा कहा है। इन लेश्याओंमें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका इससे अधिक स्पर्शन अन्य प्रकार सम्भव नहीं है। इसी प्रकार औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदका स्पर्शन उक्त लेश्याओंमें ले आना चाहिये। मात्र यह स्पर्शन तिर्यञ्चों और मनुष्योंके नरकमें उत्पन्न करा कर प्रथम समयमें प्राप्त

१. आ० प्रतौ ओघं। वेउव्वि० इति पाठः। २. आ० प्रतौ अवत्त० खेत्त० ओरालि० तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० छच्चत्तारिबेचोद्द०। अवत्त० खेत०। ओरालि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३१. तेउ० धुवियाणं तिण्णिप० अट्ठ–णव०। थीणगि०३–अणंताणु०४–णवुंस०–तिरिक्ख०–एइंदि०–हुंड०–तिरिक्खाणु०—थावर–दूभग—अणादे०–णीचा० तिण्णिप० अट्ठ–णव०। अवत्त० अट्ठचो०। सादासाद०–मिच्छ०–चदुणोक०–उज्जो०–थिरादितिण्णियु० चत्तारिप० अट्ठ–णव०। अपच्चक्खाण०४–ओरालि० तिण्णिप० अट्ठ–णव०। अवत्त० दिवड्ढचो०। इत्थि०–पुरिस०–दोआउ०–मणुस०–पंचिं०–पंच–संठा०–ओरा०अंगो०–छस्संघ०—मणुसाणु०–आदा०–दोविहा०–तस०–सुभग–दोसर–आदे०–उच्चा० चत्तारिप० अट्ठचो०। देवाउ०–आहार०२–तित्थ० ओघं। देवगदि०४ तिण्णिप० दिवड्ढचो०। अवत्त० खेत्त०। एवं पम्माए वि। णवरि अपच्चक्खाण०४–ओरा०–ओरा०अंगो० अवत्त० पंचचो०। देवगदि०४ तिण्णिप० पंचचो०।

करना चाहिये। तथा जो तिर्यञ्च या मनुष्य मर कर सातवें नरकमें गमन करता है उसके भी यह स्पर्शन सम्भव है, अतः कृष्ण लेश्यामें यह कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। यद्यपि सामान्य नारकियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है फिर भी यहाँ कृष्ण और नील लेश्यामें क्षेत्रके समान और कापोत लेश्यामें नारकियोंके समान कहने का कारण यह है कि कृष्ण और नीललेश्यामें नारकियोंके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। इन लेश्याओंमें केवल मनुष्योंके ही तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है, इसलिए इन लेश्याओंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंका जो क्षेत्र कहा है उसी प्रकार यहाँ स्पर्शन कहा है। तथा कापोत लेश्यामें नारकियोंके भी तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है, इसलिए यह नारकियोंके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

५३१. पीतलेश्यामें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, चार नोकषाय, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगलके चार पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरण चार और औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्र-का स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके चार पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अप्रत्याख्यानावरण चार, औदारिकशरीर और औदारिक आङ्गोपाङ्गके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० खेत्त० । सेसाणं सव्वप० अट्ठचो० ।

५३२. सुक्काए पंचणा०–छदंस०–अट्ठक०–भय–दु०—देवग०—पंचिं०–तिण्णि–सरीर–वेउ ०अंगो०–वण्ण०४–देवाणु०–अगु०४—तस० ४–णिमि०—तित्थ०–पंचंत०

राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—जो पीतलेश्यावाले जीव ऊपर देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके उस समय स्त्यानगृद्धि तीन आदिका अवक्तव्यबन्ध नहीं होता, इसलिए इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मात्र सातावेदनीय, असातावेदनीय और मिथ्यात्व आदिका अवक्तव्यबन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यबन्धका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। यहाँ एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय अनन्तानुबन्धीका अवक्तव्यबन्ध नहीं कराया है और मिथ्यात्वका अवक्तव्यबन्ध कराया है। इससे स्पष्ट है कि सासादन गुणस्थानवाला जीव सासादनको प्राप्त करते समय प्रारम्भिक कालमें एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं करता और इसलिए वह मर कर एकेन्द्रियोंमें जन्म भी नहीं लेता। किन्तु ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि होकर प्रथम समयमें ही एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात कर सकता है-यह मिथ्यात्वके अवक्तव्यबन्धके स्पर्शनसे ही स्पष्ट है। पीतलेश्याके साथ तिर्यञ्च और मनुष्य यदि देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करें तो कुल स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण होता है। इसीसे अप्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्यपदका स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। यहाँ संयत मनुष्योंको और संयतासंयत तिर्यञ्चों और मनुष्योंको मारणान्तिक समुद्धात करनेके प्रथम समयमें असंयत कराके यह स्पर्शन लाना चाहिए। किन्तु ऐसे तिर्यञ्चों और मनुष्योंके मारणान्तिक समुद्धातके समय देवगतिचतुष्कका अवक्तव्यबन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अवक्तव्यबन्धका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है, क्योंकि जो देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके पहलेसे ही इन प्रकृतियोंका बन्ध होता रहता है। पद्मलेश्यामें कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन नहीं होता, क्योंकि इस लेश्यावाले जीव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं करते, इसलिए कुछ प्रकृतियोंको छोड़कर इस लेश्यामें शेष सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जिन प्रकृतियोंके सम्बन्धमें विशेषता है, उसका खुलासा इस-प्रकार है—अप्रत्याख्यानावरणका बन्ध नहीं करनेवाले तिर्यञ्च और मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेके प्रथम समयमें असंयत होकर इनका बन्ध करें, यह सम्भव है और ऐसे जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण है, अतः यहाँ इनके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। तिर्यञ्च और मनुष्य देवोंमें जन्म लेनेके प्रथम समयमें औदारिकद्विकका नियमसे अवक्तव्यबन्ध करते हैं और पद्मलेश्यामें ऐसे जीवोंका भी स्पर्शन कुछ कम पाँच राजूप्रमाण होता है, अतः यह भी उक्त प्रमाण कहा है। देवगतिचतुष्कके अवक्तव्यबन्धके लिए जो युक्ति पीत लेश्यामें दी है वही यहाँ भी जान लेनी चाहिए। तदनुसार इनके अवक्तव्यबन्धका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५३२. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णिप० छचों० । अवत्त० खेत्तभंगो । देवाउ०-आहार०२ सव्वपदा ओघं । सेसाणं सव्वपदा छचों० ।

५३३. अब्भवसि० मदि०भंगो । णवरि मिच्छत्तं अवत्तव्वं णत्थि ।

५३४. खइग०–उवसम० ओधि०भंगो । णवरि अपच्चक्खाण०४ अवत्त० खेत्तभंगो[1] । देवगदि०४–आहार०२ सव्वप० खेत्त० । मणुसगदिपंचगस्स य अवत्त० खेत्तभंगो । उवसमे तित्थकरं सव्वपदा खेत्तं ।

कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। देवायु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंमें से चार प्रत्याख्यानावरणको व देवगतिचतुष्कको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें प्राप्त होता है, प्रत्याख्यानावरण चारका अवक्तव्यपद संयत मनुष्यके संयतासंयत होने पर प्राप्त होता है और देवगतिचतुष्कका अवक्तव्यपद संज्ञी तिर्यञ्च और मनुष्य जीवोंके प्राप्त होता है, अतः इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। यद्यपि संज्ञी जीवोंका स्पर्शन अधिक है, परन्तु इनके देवगतिचतुष्कका अवक्तव्यपद स्वस्थानमें ही बनता है और इस अपेक्षासे इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। अतः यह भी क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५३३. अभव्योंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद उन जीवोंके होता है जो ऊपरके गुणस्थानोंसे उतरकर मिथ्यात्वमें आते हैं। किन्तु अभव्य सदा मिथ्यादृष्टि ही होते हैं, अतः इनके मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका निषेध किया है।

५३४. क्षायिकसम्यक्त्व और उपशमसम्यक्त्वमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें अप्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान है। देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकके सब पदोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्र समान है। तथा उपशमसम्यक्त्वमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—उक्त दोनों सम्यक्त्वोंमें अप्रत्याख्यानावरण चारका अवक्तव्यपद उन्हीं जीवोंके होता है जो ऊपरके गुणस्थानवाले मनुष्य अविरतसम्यग्दृष्टि होते हैं। अतः इनके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान कहा है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्यों या तिर्यञ्चोंके देव होने पर प्रथम समयमें मनुष्यगति पञ्चकका अवक्तव्यपद होता है और उपशमश्रेणिसे मरकर देव होने पर उपशमसम्यग्दृष्टि देवोंके प्रथम समयमें मनुष्यगतिपञ्चकका अवक्तव्यपद होता है। यतः इन जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतः इन दोनों सम्यक्त्वोंमें मनुष्यगति पञ्चकके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातसे अधिक नहीं होते। अतः इसके सब पदोंका भङ्ग भी क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१. आ० प्रतौ अपच्चक्खाण०४ खेत्तभंगो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३५. सासणे धुविगाणं तिण्णिप० अट्ठ-बारह०। दोआउ०-मणुसग०-मणुसाणु० उच्चा० सव्वप० अट्ठचों०। देवाउ० ओघं। देवगदि०४ तिण्णिप० पंचचों०। अवत्त० खेत्त०। सेसं सव्वपदा अट्ठ-बारह०। णवरि इत्थि०-पुरिस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोविहा०-सुभग-दूभ० दोसर-आदें०-अणादे०-णीचा० अवत्त० अट्ठचों०। ओरा०-ओरालि०अंगो० अवत्त० पंचचों०।

५३६. सम्मामि० धुविगाणं तिण्णिप० अट्ठ०। देवगदि०४ तिण्णिप० खेत्त०। सेसाणं सव्वपदा अट्ठ०।

---

५३५. सासादनसम्यक्त्वमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायुका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, पुरुषवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो विहायोगति, सुभग, दुर्भग, दो स्वर, आदेय, अनादेय और नीचगोत्रके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा औदारिकशरीर और औदारिक आङ्गोपाङ्गके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—आयुका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता। तथा सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मर कर नरकमें नहीं जाता और सासादन सम्यग्दृष्टियोंके एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय मनुष्यगतिद्विक व उच्चगोत्रका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ इन सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय देवगतिचतुष्कके तीन पदोंका ही बन्ध होता है। उसमें भी सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च सहस्रार कल्प तक ही मर कर उत्पन्न होते हैं, अतः यहाँ देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। यद्यपि सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्य सहस्रार कल्पसे आगे भी उत्पन्न होते हैं पर इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, अतः तीन पदोंकी अपेक्षा कहे गये उक्त स्पर्शनमें इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। तथा स्त्रीवेद आदिका यहाँ मारणान्तिक समुद्घातके समय या उपपादके समय अवक्तव्यबन्ध नहीं होता, अतः इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

५३६. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न तो मरते ही हैं और न ही इनमें मारणान्तिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३७. मिच्छा० मदि०भंगो। णवरि मिच्छत्तं अवत्तव्वं णत्थि। असण्णीसु धुविगाणं तिण्णप० सव्वलो०। सादादिदंडओ ओघं। दोआउ०-वेउ०छ०-ओरा०अंगो खेत्त०। मणुसाउ० तिरिक्खोघं। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं फोसणं समत्तं

कालाणुगमो।

५३८. कालाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघेण पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०बंधगा केवचिरं कालादो होदि? सव्वद्धा। अवत्त० केव०? ज० ए०, उ० संखेंज्ज सम०। थीणगि०३-मिच्छ०-अट्ठक०-ओरा० तिण्णिप० सव्वद्धा। अवत्त० ज० ए०, उ० आवलि० असंखें०। दोवेदणीय-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०-दोगदि-पंचजा०-

---

समुद्घात होता है, इसलिए इनमें देवगतिचतुष्कको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंके अपने-अपने पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। देवगतिचतुष्कका बन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं और यहाँ इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतः देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

५३७. मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं है। असंज्ञियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। दो आयु, वैक्रियिकषट्क और औदारिक आङ्गोपाङ्गका भङ्ग क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—असंज्ञियोंमें पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी जीव ही नरकायु, देवायु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध करते हैं और नारकियोंमें व देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसलिए तो इन आठ प्रकृतियोंके सब पदोंका भङ्ग क्षेत्रके समान कहा है और औदारिक आङ्गोपाङ्गका सब पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र ही सब लोक है, इसलिए स्पर्शन तो उतना होगा ही। यह देखकर इसके सब पदोंका भङ्ग भी क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

कालानुगम।

५३८. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका कितना काल है? सर्वदा काल है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कितना काल है? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, आठ कषाय और औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका सर्वदा काल है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आङ्गो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-दोगो० चत्तारिपदा सव्वद्धा। तिण्णिआउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पलिदो० असंखे०। अवट्ठि०-अवत्त० ज० ए०, उ० आवलि० असंखे०। वेउ०-छ० भुज०-अप्प० सव्वद्धा। अवट्ठि०-अवत्त० ज० ए०, उ० आवलि० असं। एवं तित्थ०। णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० संखेज्जस०। आहार०२ भुज०-अप्प० सव्वद्धा। अवट्ठि०-अवत्त० ज० ए०, उ० संखेज्जस०। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरा०-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति।

पाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि-दस युगल और दो गोत्रके चार पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तीन आयुओंके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। वैक्रियिक छहके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिकी अपेक्षा काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्य-पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। आहारक-द्विकके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षु-दर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके प्रारम्भके तीन पदोंका बन्ध एकेन्द्रियादि सब जीव करते हैं, इसलिए इनका सब काल कहा है। मात्र इनका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिसे उतरते समय होता है या उपशमश्रेणिमें मरण कर देव होने पर प्रथम समयमें होता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। यदि एक समयमें नाना जीव उपशमश्रेणि पर आरोहण करके एक साथ अवक्तव्यपदके पात्र होते हैं तो एक समय होता है और क्रमसे संख्यात समय तक उपशमश्रेणि पर आरोहण कर उसी क्रमसे अवक्तव्यबन्धके पात्र होते हैं तो संख्यात समय होता है। मात्र इन प्रकृतियोंमें प्रत्या-ख्यानावरण चार भी हैं सो इनके अवक्तव्यबन्धका काल विरत जीवोंको नीचे लाकर प्राप्त करना चाहिए। आगे जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका सर्वदा काल कहा है, उसका कहीं तो पूर्वोक्त कारण है और कहीं उनका किसी न किसीके निरन्तर बन्ध होना कारण है। इसलिए यह उस प्रकृति-के बन्ध स्वामीका विचार कर ले आना चाहिए। जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका काल न्यूनाधिक है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—पहले स्त्यानगृद्धि आदिके अवक्तव्यपदका काल एक जीव-की अपेक्षा एक समय बतला आये हैं। यदि नाना जीव इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद करें तो कमसे कम एक समय तक करते हैं, क्योंकि सासादनसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानकी राशि पल्यके असंख्यावें भागप्रमाण है। उसमेंसे कुछ जीव यदि मिथ्यात्व आदि गुणस्थानोंमें आते हैं तो एक समयमें आकर अन्तर भी पड़ सकता है, इसलिए तो इन प्रकृतियों-के अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय कहा है और यदि निरन्तर मिथ्यात्व आदि गुण-स्थानको प्राप्त होते रहें तो आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही होंगे। इसलिए इन प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। प्रत्येक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३९. तिरिक्खेसु धुविगाणं तिण्णिप० सव्वद्धा । सेसं ओघं । एवं ओरालि०मि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि-अणाहारए त्ति। णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारएसु देवगदिपंचग० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० संखेंज्जस० ।

५४०. अवगद०-सुहुमसंप० सव्वपग० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० ।

आयुका बन्ध काल अन्तर्मुहूर्त है और इसमें भुजगार आदि तीन पदोंका जघन्य काल एक समय है। साथ ही नारकी, मनुष्य और देवोंका प्रमाण असंख्यात है। यह सब देखकर नरकायु, मनुष्यायु और देवायुके दो पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा इनके अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके अन्य तीन पदोंका काल तो इसी प्रकार है, पर अवक्तव्यपदके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि जो तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले मनुष्य नरकमें उत्पन्न होते हैं या उपशमश्रेणि पर चढ़ते हैं उन्हींके तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्य बन्ध होता है। किन्तु ये कुल संख्यातसे अधिक नहीं हो सकते, अतः तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। यही युक्ति आहारकद्विकके अवस्थित और अवक्तव्यपदके कालके विषयमें जाननी चाहिए। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है।

५३९. तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। शेष भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।

विशेषार्थ—इन मार्गणाओंमें उपशमश्रेणि नहीं होती, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा कहा है। जो सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक होते हैं उन्हींके देवगतिपञ्चकका इन मार्गणाओंमें बन्ध होता है, इसलिये इनमें भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। एक साथ नाना जीव इन मार्गणाओंको प्राप्त हुए और उन्होंने एक समय तक भुजगार और अल्पतरपदका बन्ध किया तो जघन्य काल एक समय बनता है तथा निरन्तर क्रमसे यदि नाना जीव इन मार्गणाओंको प्राप्त होते रहते हैं तो इन पदोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बनता है। परन्तु ऐसे जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक संख्यात समय तक ही मार्गणाओंको प्राप्त होते हैं। अतः इन मार्गणाओंमें उक्त प्रकृतियोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि कार्मणकाययोगमें और अनाहारक मार्गणामें दो-दो समयके फरकसे जीवोंको प्राप्त करा कर भुजगार और अल्पतर पदका उत्कृष्ट काल लाना चाहिये; अन्यथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होना सम्भव नहीं है। शेष कथन सुगम है।

५४०. अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवगद० अवत्त०[1] ज० ए०, उ० संखेज्जस० ।

५४१. सव्वएइंदि०-पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं च सव्वसुहुमाणं बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं चेव अपज्ज० सव्ववणप्फदि०-णियोद०-बादरपत्ते० तस्सेव अपज्ज० मणुसाउ० तिरिक्खोघं । सेसाणं सव्वपदा सव्वद्धा । सेसाणं णिरयादि याव सण्णि त्ति जासिं णाणाजीवेहि भंगविचए भयणिज्जा तासिं अप्पप्पणो ट्ठिदिभुजगार-भंगो । अवट्ठि०-अवत्त० भयणिज्जा सेसपदा[ण] भयणिज्जा याओ ताओ ओघं णिरय-भंगो । एसिं अवत्त० संखेज्जा तासिं ओघं तित्थयरभंगो । यासिं सव्वपदा संखेज्जा आहारसरीरभंगो ।

❀ एवं कालं समत्तं ❀

अंतराणुगमो ।

५४२. अंतराणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०बंधगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णत्थि अंतरं । अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुधत्तं० । थीण-

---

अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अपगतवेदी जीवोंमें अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है ।

विशेषार्थ—इन मार्गणाओंको कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक संख्यात समय तक जीव प्राप्त होते हैं, इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । शेष कथन सुगम है ।

५४१. सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और इन पृथिवी आदि चारोंके सब सूक्ष्म, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक तथा इन चारोंके अपर्याप्त, सब वनस्पतिकायिक, निगोद, बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंमें मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । शेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । नरकगतिसे लेकर संज्ञी तक शेष मार्गणाओंमें जिनका नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय भजनीय है, उनका अपने-अपने स्थितिबन्धके भुजगारके समान काल है । जिनके अवस्थित और अवक्तव्यपद भजनीय हैं तथा शेष पद भजनीय नहीं हैं, उनका ओघसे नरकगतिके समान भङ्ग है । तथा जिनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं, उनका ओघसे तीर्थङ्कर प्रकृतिके समान भङ्ग है और जिनके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं, उनका ओघसे आहारक-शरीरके समान भङ्ग है ।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ ।

अन्तरानुगम

५४२. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्ण-चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार अल्पतर और अवस्थित-पदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? अन्तरकाल नहीं है । अवक्तव्यपदके बन्धक

---

१. आ० प्रतौ अंतो० । अवट्ठि० अवत्त० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ तिण्णिप० णत्थि अंतरं। अवत्त० ज० ए०, उ० सत्त रादिंदियाणि । सादासाद०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०-दोगदि-पंचजा०-छसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-दोगो० चत्तारिप० णत्थि अंतरं। अपच्चक्खाण०४ तिण्णिप० णत्थि अंतरं। अवत्त० ज० ए०, उ० चोद्दस रादिंदियाणि। एवं पच्चक्खाण०४। णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० पण्णारस रादिंदि०। तिण्णिआउ० भुज०-अप्प०-अवत्त० ज० ए०, उ० चदुवीसं मुहुत्तं। अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। वेउ०छ० भुज०-अप्प० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। अवत्त० ज० ए०, उ० अंतो०। एवं आहार०२। तित्थ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० देवगदिभंगो। अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुधत्तं। ओरालि० अवत्त० ज० ए०, उ० अंतो०। सेसपदाणं णत्थि अंतरं। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरा०-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति।

जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर काल वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके चारों पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन रात है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन रात है। तीन आयुओंके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त है। अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। वैक्रियिकषट्कके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार आहारकद्विकके विषय में जानना चाहिये। तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग देवगतिके समान है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके तीन पदोंका निरन्तर बन्ध एकेन्द्रियादि जीवोंके पाया जाता है, इसलिये इन पदोंके अन्तर कालका निषेध किया है। मात्र उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४३. णिरएसु तित्थ० ओघं। अथवा अवत्त० ज० ए०, उ० पलिदो० असंखे०। सेसाणं भुज०-अप्प० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा।

प्रमाण है, इसलिये इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष-पृथक्त्वप्रमाण कहा है। उपशमसम्यक्त्वमार्गणाका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात है। तदनुसार सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका भी इतना ही अन्तर है। अतः स्त्यानगृद्धि तीन आदिके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात कहा है। सातावेदनीय आदिके चारों पदोंका एकेन्द्रिय आदि जीव बन्ध करते हैं, अतः इनके चारों पदोंके अन्तरकालका निषेध किया है। अप्रत्याख्यानावरण चार और प्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंके अन्तरका निषेध ज्ञानावरणके समान जानना चाहिये। तथा प्रथमोपशमसम्यक्त्वके साथ संयतासंयत गुण-स्थानका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन-रात है। तदनुसार पाँचवें आदि ऊपरके गुणस्थानोंसे च्युत होकर जीव इतने ही काल तक अविरत अवस्थाको नहीं प्राप्त होता। अतः अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिनरातप्रमाण कहा है। इसी प्रकार उपशमसम्यक्त्वके साथ विरत जीवका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिनरात है। इसका अभिप्राय इतना है कि विरत जीव इतने ही काल तक विरताविरत गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता, इसलिए प्रत्याख्याना-वरणके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन-रात है। नरक, मनुष्य और देवगतिमें यदि कोई भी जीव उत्पन्न न हो तो कमसे कम एक समय तक और अधिक से अधिक चौबीस मुहूर्त तक नहीं उत्पन्न होता। इसके अनुसार इन आयुओंके बन्धमें भी इतना अन्तर पड़ सकता है, इसलिए इन तीन आयुओंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त कहा है। मात्र इनके अवस्थितपदका परिणामोंके अनुसार अन्तर होता है, इसलिए वह जघन्यरूपसे एक समय और उत्कृष्टरूपसे असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। वैक्रियिकषट्कके भुजगार और अल्पतरपदका बन्ध नाना जीव करते ही रहते हैं, इसलिए इनके उक्त दो पदोंके अन्तरकालका निषेध किया है। इसी प्रकार तीर्थङ्कर और औदारिकशरीरके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके अन्तरकालका निषेध घटित कर लेना चाहिए। तथा वैक्रियिकषट्कके अवस्थितपदके अन्तरकालको तीन आयुओंके समान घटित कर लेना चाहिए। वैक्रियिकषट्क और औदारिकशरीर परिवर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें व दूसरे-तीसरे नरकमें होता है। उसमें भी उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। यहाँ गिनाई गई काययोगी आदि मार्गणाओंमें यह प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है।

५४३. नारकियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। अथवा अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० ज० ए०, उ० अंतो० । थीणगिद्धिदंडओ ओघभंगो । सत्तमाए दोगदि-दो-आणु०-दोगो० थीणगिद्धिभंगो ।

५४४. तिरिक्खेसु धुविगाणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णत्थि अंतरं । सेसं ओघं ओरालियमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारए त्ति । णवरि ओरालि०मि०-कम्मइ०-अणाहारएसु देवगदिपंचग० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० मासपुध० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखें० लो० । णवरि तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० वासपुध० ।

अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। मात्र सातवीं पृथिवीमें दो गति, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है।

विशेषार्थ—हम पहले ही बतला आये हैं कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद नरकमें भी सम्भव है, इसलिए यहाँ ओघ प्ररूपणा बन जाती है। किन्तु एक उपदेश ऐसा भी है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला जीव दूसरे और तीसरे नरकमें अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक नहीं उत्पन्न होता, इसलिए इस उपदेशके अनुसार तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण कहा है। शेष प्रकृतियोंका बन्ध यहाँ निरन्तर होता है, इसलिए उनके भुजगार और अल्पतर पदके अन्तरका निषेध किया है और अवस्थितपदका अन्तर परिणामोंके अनुसार कहा है। तथा परावर्तमान या अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। सातवें नरकमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका बन्ध मिथ्यादृष्टिके तथा मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका बन्ध सम्यग्दृष्टिके होता है, इसलिए स्त्यानगृद्धिके समान भङ्ग बन जाता है।

५४४. तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। शेष भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्वप्रमाण है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्करप्रकृतिके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है।

विशेषार्थ—सम्यग्दृष्टि नारकी, मनुष्य और देव मर कर औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारकोंमें यदि अन्तरसे उत्पन्न हों तो कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक मासपृथक्त्वके अन्तरसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए इन मार्गणाओंमें देवगति-चतुष्कके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले नारकी और देव उक्त तीन मार्गणाओंमें यदि अन्तरसे उत्पन्न होते हैं तो कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे उत्पन्न होते हैं, अतः इन मार्गणाओंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४५. अवगद०-सुहुमसं० अप्पसत्थाणं भुज०-अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुध० । अप्प० ज० ए०, उ० छम्मासं० । पसत्थाणं भुज० ज० ए०, उ० छम्मासं० । अप्प०-अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुध० । सुहुमसं० अवत्त० णत्थि अंतरं ।

५४६. आभिणि०-सुद०-ओधि० मणुसगदिपंचग०-देवगदि०४ भुज०-अप्प० णत्थि अंतरं । अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । अवत्त० ज० ए०, उ० मासपुध० । णवरि ओधिणा० ज० ए०, उ० वासपुध० । एवं ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मा० खइग०-वेदग० । उवसम० एदाओ पगदीओ ज० ए०, उ० वासपुध० । सेसाणं

वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है । इसका यह अभिप्राय है कि वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे कोई न कोई जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला देव और नरक पर्यायसे आकर इस भूमण्डलको सुशोभित करता है । विदेहोंमें निरन्तर तीर्थङ्कर होते हैं, इसलिए यह असम्भव भी नहीं है । फिर भी यहाँ यह पृथक्त्व शब्द ७ और ८ का वाची न होकर बहुत्व अर्थको व्यक्त करनेवाला है, ऐसा हमें प्रतीत होता है । शेष कथन सुगम है ।

५४५. अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंके भुजगार और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व-प्रमाण है । अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । प्रशस्त प्रकृतियोंके भुजगार पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । अल्पतर और अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । मात्र सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर अप्रशस्त प्रकृतियोंका भुजगार और अवक्तव्यबन्ध उपशमश्रेणिमें उतरते समय होता है, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है । तथा क्षपकश्रेणिमें इनका अल्पतरबन्ध होता है इसलिए इस पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है । यद्यपि उपशमश्रेणिपर चढ़ते समय इन प्रकृतियोंका अल्पतर बन्ध होता है पर उपशमश्रेणिसे क्षपकश्रेणिका अन्तरकाल कम है, इसलिए यह अन्तर क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा लिया है । प्रशस्त प्रकृतियोंका अन्तर इससे भिन्न प्रकारसे लाना चाहिए । अर्थात् क्षपक-श्रेणिकी अपेक्षा प्रशस्त प्रकृतियोंके भुजगारबन्धका और उपशमश्रेणिकी अपेक्षा इनके अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तर लाना चाहिए । कारण स्पष्ट है । मात्र सूक्ष्मसाम्परायमें किसी भी प्रकृतिका अवक्तव्यबन्ध नहीं होता ।

५४६. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मनुष्यगतिपञ्चक और देवगतिचतुष्कके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्वप्रमाण है । इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी जीवोंमें जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिरयादि याव सण्णि त्ति अवत्त० अप्पप्पणो ट्ठिदिभुजगारअवत्तव्वभंगो कादव्वो। सेसपदा कालेण साधेदव्वं। तेऊए देवगदि०४ अवत्त० ज० ए०, उ० मासपुध०। ओरालि० अवत्त० ज० ए०, उ० अडदालीसं मुहुत्तं। एवं पम्माए वि। णवरि ओरालि०—ओरा०अंगो०[1] अवत्त० ज० ए०, उ० पक्खं०।

एवमंतरं समत्तं।

भावाणुगमो

५४७. भावाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं भुज०-अप्प०-

नरकगतिसे लेकर संज्ञी तक शेष मार्गणाओंमें अवक्तव्यपदका भङ्ग अपने-अपने स्थितिबंधके भुजगारके अवक्तव्य भङ्गके समान कहना चाहिए। शेष पदोंको कालके अनुसार साध लेना चाहिए। पीतलेश्यामें देवगतिचतुष्कके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्वप्रमाण है। औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अड़तालीस मुहूर्त है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीर और औदारिक आङ्गोपाङ्गके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पक्षप्रमाण है।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मनुष्यगतिपञ्चकके अवक्तव्यपदकी प्राप्ति दो प्रकारसे होती है। प्रथम तो उपशमश्रेणिसे मरकर देव होने पर और दूसरे चतुर्थ गुणस्थानसे मरकर नारकी होने पर या चतुर्थादि किसी भी गुणस्थानसे मरकर देव होने पर। इसका अभिप्राय यह है कि चतुर्थगुणस्थानमें वैक्रियिकमिश्रकायप्रयोगका जो अन्तर है वही यहाँ मनुष्यगतिपञ्चकके अवक्तव्यपदका अन्तर है। जीवस्थान अन्तर प्ररूपणामें यह जघन्य रूपसे एक समय और उत्कृष्ट रूपसे मासपृथक्त्वप्रमाण बतलाया है। इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण लिया गया है। पहले औदारिकमिश्रकाययोगमें देवगतिचतुष्कके अवक्तव्यपदका अन्तर बतला ही आये हैं। वही यहाँ घटित कर लेना चाहिए। मात्र अवधिज्ञानी जीवोंमें मनुष्यगतिपञ्चक और देवगतिचतुष्कका यह उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि कोई अवधिज्ञानी अधिकसे अधिक इतने काल तक वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी न हो यह संभव है। अवधिज्ञानीके समान ही उपशमसम्यग्दृष्टिमें यह अन्तर जानना चाहिए। पीतलेश्यामें देवगतिचतुष्कके अवक्तव्य पदका अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगीके समान ही घटित कर लेना चाहिए। परन्तु पीतलेश्यामें वैक्रियिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट अन्तर अड़तालीस मुहूर्त है, इसलिए यहाँ औदारिकशरीरके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर अड़तालीस मुहूर्त कहा है और पद्मलेश्यामें वैक्रियिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट अन्तर एक पक्षप्रमाण है, इसलिए पद्मलेश्यामें औदारिकद्विकके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर एक पक्षप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार अन्तर समाप्त हुआ।

भावानुगम

५४७. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब

---

१. ता० प्रतौ णवरि ओरालि० अङ्गो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवट्ठि०-अवत्त०बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारए त्ति ।

एवं भावं समत्तं ।

अप्पाबहुआणुगमो

५४८. अप्पाबहुगं दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० अणंतगु० । अप्प० असंखेंज्जगु० । भुज० विसे० । सादासाद०-सत्तणोक०-तिणिक्खाउ०-दोगदि-पंचजा०-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-दोगो० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अवत्त० असंखेंज्जगुणा । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । एवं तिण्णिआउ०-वेउव्वियछ० । आहार०२ सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अवत्त० संखेंज्ज०गु० । अप्प० संखें०गु० । भुज० विसे० । तित्थ० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असंखेंज्जगु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०, णवरि ओरालिए तित्थकरं आहारसरीरभंगो, अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति ।

प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ ।

अल्पबहुत्वानुगम

५४८. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगार पदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके अवस्थित पदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार तीन आयु और वैक्रियिकषट्‌कको अपेक्षा जानना चाहिए । आहारकद्विकके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार ओघके समान काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग आहारकशरीरके समान है । तथा ओघके समान ही अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४९. णिरएसु धुवियाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अप्प० असंखें०गु० । भुज० विसे० । थीणगिद्धिदंडओ ओघं । णवरि अवट्ठि० असंखेंज्जगु० । मणुसाउ० आहारसरीरभंगो । सेसाणं पगदीणं ओघं सादभंगो । एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि सत्तमाए दोगदि-दोआणु०-दोगो० थीणगिद्धिभंगो ।

५५०. तिरिक्खेसु धुविगाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । सेसं ओघं । पंचिंदियतिरिक्ख० धुविगाणं तिरिक्खोघं । सेसाणं पि एवमेव । णवरि अवट्ठि० जम्हि अणंतगुणं तम्हि असं०गुणं कादव्वं । पंचिं०तिरि०पज्जत्त-जोणिणीसु ओरालि० सादभंगो । पंचिं०तिरि०अपज्ज० धुविगाणं णेरइगभंगो । सेसाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अवत्त० असं०गु० । [अप्प० असं०गु० ।] भुज० विसे० । एवं सव्वअपज्ज०-एइंदि०-विगलिं०-पंचकायाणं च ।

५५१. मणुसेसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । दोआउ०-वेउव्वियछ०-आहार०२-तित्थ० आहार-

---

५४९. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगार पदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। स्त्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यहाँ अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मनुष्यायुका भङ्ग आहारकशरीरके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें दो गति, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ स्त्यानगृद्धिदण्डकसे स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क, ये आठ प्रकृतियाँ ली गई हैं।

५५०. तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भी इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि जहाँ अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे कहे हैं, वहाँ असंख्यातगुणे कहना चाहिए। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें औदारिकशरीरका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। पञ्चेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्तकोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

५५१. मनुष्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स०भंगो। साददंडओ ओघं। एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु। णवरि संखेँज्जं कादव्वं। एवं सव्वट्ठ०। णवरि धुवियाणं अवत्त० णत्थि। सेसाणं[1] देवाणं णेरइगभंगो।

५५२. पंचिंदि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त०। अवट्ठि० असंखेँज्जगु०। अप्प० असंखेँज्जगु०। भुज० विसे०। सेसाणं ओघं। पंचिंदियपज्जत्तएसु वि एसेव। णवरि ओरालि० सादभंगो। एवं तस०-तसपज्ज०।

५५३. पंचमण०-तिण्णिवचि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-देव०-ओरा०-वेउ०-तेजा०-क०-वेउ०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-बादर-पज्ज०-पत्ते०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त०। अवट्ठि० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। सेसाणं ओघं। दोवचि० तसपज्जत्तभंगो। ओरालि०मि० पंचिं०तिरि०-अपज्ज०भंगो। णवरि मिच्छ० अवत्त० ओघं०। देवगदि-पंचिंदि० सव्वत्थो० अवट्ठि०। अप्प० संखेँज्जगु०। भुज० विसे०। एवं कम्मइ०-अणाहार०। वेउव्वि०का० देवभंगो। णवरि तित्थ० णिरयभंगो। एवं वेउ०-मि०। आहार०-

---

बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। दो आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघसे आहारकशरीरके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संख्यात करना चाहिए। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं है। शेष देवोंका भङ्ग नारकियोंके समान है।

५५२. पञ्चेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियपर्याप्त जीवोंमें भी यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीरका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिए।

५५३. पाँचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। दो वचनयोगी जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है। तथा देवगति और पञ्चेन्द्रियजातिके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतर पदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। वैक्रियिककाययोगी

---

१. ता० प्रतौ णत्थि अंतरं। सेसाणं इति पाठः।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

आहारमि० सव्वट्ठभंगो। णवरि देवाउ०-तित्थ० मणुसि०भंगो।

५५४- इत्थिवे० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० सव्वत्थो० अवट्ठि०। अप्प०[1] असं०गु०। भुज० विसे०। पंचदंस०-मिच्छ०-बारसक०-भय०-दु०-तेजा०-क०-वण्ण-४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० सव्वत्थो० अवत्त०। अवट्ठि० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। सेसाणं सव्वत्थो० अवट्ठि०। अवत्त० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। आहारदुगं तित्थ० मणुसि०भंगो। एवं पुरिस०। णवरि तित्थ० ओघं।

५५५. णवुंसगे पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० इत्थिभंगो। पंचदंस०-मिच्छ०-बारसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण४-अगु०-उप०-णिमि० सव्वत्थो० अवत्त०। अवट्ठि० अणंतगु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। सेसाणं ओघं। अवगद० अप्पसत्थाणं सव्वत्थो० अवत्त०। भुज० संखेज्जगु०। अप्प० संखेज्जगु०।

जीवोंमें देवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है।

५५४. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यनियोंके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

५५५. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। प्रशस्त प्रकृतियोंमें अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगार

---

१. ता० प्रतौ सव्वत्थो० [अवत्त०]। अवट्ठि० अप्प० इति पाठः।

पसत्थाणं सव्वत्थो० अवत्त० । अप्प० संखेंज्जगु० । भुज० संखें०गु० । एवं सुहुमसं० । णवरि अवत्त० णत्थि ।

५५६. कोधे णवुंसगभंगो । माणे पंचणा०-चदुदंस०-तिण्णिसंज०-पंचंत० सव्वत्थो० अवट्ठि० । अप्पद० असं०गु० । भुज० विसे० । पंचदंस०-मिच्छ०-तेरसक०-भय०-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० सव्वत्थो० अवत्त० । अवट्ठि० अणंतगु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । सेसं ओघं । एवं मायाए वि । णवरि पढमदंडओ पंचणा०-चदुदंस०-दोसंज०-पंचंत० । बिदियदंडओ पंचदंस०[२]-मिच्छ०-चोद्दसक०-भयदु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० । लोभे एवं चेव । णवरि पढमदंडओ पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० सव्वत्थो० अवट्ठि० । अप्प०[३] असं०गु० । भुज० विसे० । बिदियदंडओ पंचदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु० । उवरि ओघं ।

५५७. मदि-सुदेसु धुवियाणं सव्वत्थो० अवट्ठि० । अप्प०[४] असं०गु० । भुज०

पदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ अवक्तव्यपद नहीं है।

५५६. क्रोधकषायमें नपुंसकवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। मानकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, तीन संज्वलन और पाँच अन्तरायके अवस्थित पदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, तेरह कषाय, भय, जुगुप्सा औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार मायाकषायमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डक पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, दो संज्वलन और पाँच अन्तराय रूप है। दूसरा दण्डक पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, चौदह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणरूप है। लोभकषायमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डक पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतर-पदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। दूसरा दण्डक पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्सा रूप होकर आगे यह ओघके समान है।

५५७. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थित पदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे

---

१. ता. प्रतौ सव्वत्थो० [अवत्त०] । अवट्ठि० अप्प० इति पाठः । २. ता प्रतौ बिदियदंडओ । ओघं पंचदंस०, आ. प्रतौ बिदियदंडओ ओघं । पंचदंस० इति पाठः ।३. ता प्रतौ सव्वत्थो० [अवत्त०] ।अवट्ठि० । अप्प० इति पाठः । ४. ता० प्रतौ सव्वत्थो० [अवत्त०] । अवट्ठि० अप्प० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसे० । मिच्छ० ओरालि० सेसाणं च ओघं । विभंगे धुविगाणं मदि०भंगो । मिच्छ०-देव०-ओरालि०-वेउ०-वेउ०अंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-बादर-पज्ज०-पत्ते० सव्वत्थो० अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । सेसं ओघं ।

५५८. आभिणि०-सुद०-ओधि० पंचणा०छदंस०-बारसक०-पुरि०-भय-दु०-दोगदि-पंचिं०–चदुसरीर–समचदु०–दोअंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४–दोआणु०-अगु०४– पसत्थ०–तस०४–सुभग-सुस्सर–आदें०–णिमि०–तित्थ०–उच्चा०–पंचंत० सव्वत्थो० अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । सादासाद० चदुणोक०-देवाउ०-थिरादितिण्णियु० ओघं । मणुसाउ०-आहार०२ मणुसि०भंगो । एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम० । णवरि खइगस० दोआउ० आहारसरीरभंगो । उवसम० आहार०२-तित्थ० मणुसि०भंगो । मणपज्जव० ओधिभंगो । णवरि संखेंज्जं कादव्वं । एवं संजद० ।

५५९. सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चदुदंस०-लोभसंज०-उच्चा०-पंचंत० सव्वत्थो० अवट्ठि० । अप्प० संखेंज्जगु० । भुज० विसे० । सेसं दोदंस०-तिण्णिसंज०-पुरिस०-भय-दु० सव्वत्थो० अवत्त० । उवरि मणपज्जवभंगो । एवं परिहार० । णवरि धुविगाणं

भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। मिथ्यात्व और औदारिकशरीर तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। मिथ्यात्व, देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष भङ्ग ओघके समान है।

५५८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आंगोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, देवायु और स्थिर आदि तीन युगलका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायु और आहारकद्विकका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें दो आयुका भङ्ग आहारकशरीरके समान है तथा उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। मनःपर्ययज्ञानियोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणेके स्थानमें संख्यातगुणा करना चाहिए। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए।

५५९. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभसंज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष दो दर्शनावरण, तीन संज्वलन, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। आगे मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार परिहार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० णत्थि । संजदासंज०[1] अणुदिसभंगो । देवाउ० ओघं । तित्थ० मणुसि०भंगो । असंजदे धुविगाणं तिरिक्खोघं । सेसाणं ओघं । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

५६०. किण्ण-णील-काऊणं असंजदभंगो । किण्ण०-णील० तित्थ० वेउव्वि०मि० भंगो । काउ० णिरयभंगो तित्थग० । तेउ० देवभंगो । णवरि थीणगि०३-मिच्छ०-बारसक०-देवग०-ओरालि०-वेउ०-वेउ०अंगो०-देवाणु०-तित्थ० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । दोआउ० ओघं । मणुसाउ० देवभंगो । आहारदुगं ओघं । एवं पम्माए वि । णवरि ओरा०अंगो० देवगदिभंगो ।

५६१. सुक्काए पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-दोगदि-पंचिं०-चदुसरीर-दोअंगो०-वण्ण४-दोआणु०-अगु०४-तस०-४-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सव्वत्थो० अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । दोआउ०-

---

विशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं है । संयतासंयत जीवोंमें अनुदिशके समान भङ्ग है । मात्र देवायुका भङ्ग ओघके समान है । तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है । असंयतोंमें ध्रुवबन्ध वाली प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—यहाँ सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयतमें शेष दो दर्शनावरण आदि दण्डकमें जुगुप्सा तक प्रकृतियाँ गिनाई हैं, शेष नहीं गिनाई हैं । वे ये हैं—देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्कर । इस प्रकार दो दर्शनावरणसे लेकर तीर्थङ्कर तक इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं । तथा इन प्रकृतियोंके शेष पदोंका तथा अन्य सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है । यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

५६०. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें असंयतोंके समान भङ्ग है । मात्र कृष्ण और नीललेश्यामें तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है और कापोतलेश्यामें तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है । पीतलेश्यामें देवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषाय, देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है । मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है । आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि औदारिकाङ्गोपांगका भङ्ग देवगतिके समान है ।

५६१. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, दो आङ्गोपांग, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतर पदके बन्धक

---

१. ता० प्रतौ णत्थि अंत० । संजदासंज० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहार-२ मणुसि० भंगो। सेसाणं आणदभंगो।

५६२. अब्भवसि० मदि०भंगो। णवरि मिच्छ० अवत्त० णत्थि। एवं मिच्छा०-असण्णि त्ति। सासण०-सम्मामि० देवभंगो। णवरि अप्पप्पणो धुवपगदीओ परियत्तियाओ च णादव्वाओ भवंति। सण्णी० मण०भंगो। एवं अप्पाबहुगं समत्तं।

एवं भुजगारबंधो समत्तो

पदणिक्खेवो समुक्कित्तणा

५६३. एत्तो पदणिक्खेवे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि। तं जहा—समुक्कित्तणा सामित्तं अप्पाबहुगे त्ति। समुक्कित्तणा दुविधा—जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं अत्थि उक्कस्सिया वड्ढी उक्क० हाणी उक्कस्सगमवट्ठाणं। एवं याव अणाहारए त्ति णेदव्वं। णवरि अवगद०-सुहुमसंप० अत्थि उक्क० वड्ढी उक्क० हाणी। एवं जहण्णगं पि।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता

सामित्तं

५६४. सामित्तं दुवि०—जह०—उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंस०-असाद०—मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०—अरदि-सोग—भय-दु०-

---

जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। दो आयु और आहारकद्विकका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भंग आनतकल्पके समान है।

५६२. अभव्योंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें देवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी ध्रुवप्रकृतियाँ और परिवर्तमान प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। संज्ञी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार भुजगारबन्ध समाप्त हुआ।

पदनिक्षेप समुत्कीर्तना

५६३. आगे पदनिक्षेपका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं। यथा—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट हानि है। इसी प्रकार जघन्य समुत्कीर्तना जानना चाहिए।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

स्वामित्व

५६४. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थव० ४-तिरिक्खाणु[1]०-उप०-थावर०-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? अण्णदरस्स यो चदुट्ठाणिययवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिट्ठिदिबंधमाणो अंतोमुहुत्तं अणंतगुणाए सेढीए वड्ढिदूण उक्कस्ससंकिलेसेण उक्कस्सदाहं गदो तदो उक्कस्सयं अणुभागबंधो तस्स। उक्कस्सिया हाणी कस्स ? यो उक्कस्सयं अणुभागं बंधमाणो मदो एइंदियो जादो तदो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उक्कस्सिया हाणी। उक्कस्सयमवट्ठाणं कस्स ? यो उक्कस्सगं अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उक्कस्सगमवट्ठाणं। एवं हस्स-रदीणं। णवरि तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो त्ति भाणिदव्वा। साद०-जस०-उच्चा० उक्क० वड्ढी० कस्स० ? अण्ण० खवगस्स सुहुमसं० चरिमे उक्कस्सगे अणुभागबंधे वट्टमाणगस्स तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स ? यो उवसामयो से काले अकसाई होहिदि त्ति मदो देवो जादो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स ? अण्ण० अप्पमत्तसंजदस्स अक्खवग-अणुवसमगस्स सव्वविसुद्धस्स अणंतदुगुणेण वड्ढिदूण अवट्ठिदस्स उक्कस्समवट्ठाणं। इत्थि०-पुरिस०-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-चदुसंघ०-सुहुम-अपज्ज०-साधार० उक्क० वड्ढी क० ? अण्ण० यो चदुट्ठा०यव० उवरिं अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधमाणो अंतोमुहुत्तं अणंतगुणाए सेढीए वड्ढिदूण तदो तप्पाओग्ग-

वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीच गोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिका बन्ध करनेवाला जो जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक अनन्तगुणी श्रेणिरूपसे वृद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट संक्लेशके द्वारा उत्कृष्ट दाहको प्राप्त हुआ है और तब उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया है, ऐसा अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव मरकर एकेन्द्रिय हो गया और वहाँ तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्धको प्राप्त हुआ वह उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो अन्यतर जीव साकार उपयोगसे निवृत्त होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध करने लगा है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार हास्य और रतिका स्वामित्व कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट ऐसा कहना चाहिए। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उपशामक अनन्तर समयमें अकषायी होगा कि इसी बीच मर कर देव हो गया और तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? अक्षपक और अनुपशामक अन्यतर जो अप्रमत्तसंयत सर्वविशुद्धि जीव अनन्तगुणी वृद्धिके साथ अवस्थित है वह उक्त प्रकतियोंके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, तीन जाति, चार संस्थान, चार संहनन, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक अनन्तगुणी श्रेणिरूपसे

१. ता० आ० प्रत्योः अप्पसत्थवि० ४ तिरिक्खाणु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकिलेसेण तप्पाओग्गउक्कस्सं गदो तप्पाओग्गउक्कस्सगं अणुभागं पबंधो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स? यो तप्पाओग्गउक्कस्सगं अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। णिरयाउग० उक्क० वड्ढी कस्स? यो तप्पाओग्गजहण्णगादो संकिलेसादो तप्पाओग्गउक्कस्ससंकिलेसं गदो तदो उक्क० अणुभागं पबंधो तस्स उ० वड्ढी। उक्क० हाणी क०? यो उक्क० अणुभा० बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उ० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। तिण्णिआउ०-आदा० उ० वड्ढी[1] क०? यो तप्पाओग्गजहण्णगादो विसोधीदो उक्कस्सविसोधिं गदो तदो तप्पाओग्गउक्क०अणुभागं पबंधो तस्स उक्क० वड्ढी। उ० हा० क०? यो तप्पाओग्गउक्कस्सगं अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उ० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। णिरयग०-असंप०-णिरयाणु०-अप्पस०-दुस्स० उक्क० वड्ढी क०? यो चदुट्ठा०यवमज्झ० उवरिं अंतोकोडा० बंधमाणो उक्कस्ससंकिलेसेण उक्कस्सयं दाहं गदो तदो उक्कस्सअणुभागबंधो तस्स उक्क० वड्ढी। उ० हाणी कस्स? यो उक्क० अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। मणुसगदि-

वृद्धिको प्राप्त होकर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामोंके द्वारा तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंको प्राप्त होकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, वह उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगके क्षय होनेसे निवृत्त होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध करता है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। नरकायुकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो तत्प्रायोग्य जघन्य संक्लेशसे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह नरकायुकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। तीन आयु और आतपकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो तत्प्रायोग्य जघन्य विशुद्धिसे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। नरकगति, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव उत्कृष्ट संक्लेशके द्वारा उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। मनुष्यगतिपञ्चककी उत्कृष्ट

१. ता० प्रतौ आदाउजो० उ० वड्ढी, आ० प्रतौ आदाउजो० वड्ढी इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचग० उक्क० वड्डी कस्स ? यो जहण्णगादो विसोधीदो उक्कस्सगं विसोधिं गदो तदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स ? यो उक्कस्सं अणुभा० बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। देवग०-वेउ०-आहार०-वेउ०-आहार० अंगो०-देवाणु० उक्क० वड्डी क० ? अण्ण० खवग० अपुव्वकरणपरभवियणामाणं बंधचरिमे वट्टमाणगस्स तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स ? उवसामयस्स परिवदमाणयस्स परभवियणामाणं दुसमय०बंधगस्स उक्क० हाणी। उ० अवट्ठा० क० ? अण्ण० अप्पमत्त० अखवग० अणुवसामयस्स सागार-जागार० सव्वविसुद्धस्स अंतोमुहुत्तं अणंतगुणाए सेढीए वड्डिदूण अवट्ठिदस्स तस्स उक्क० अवट्ठाणं। पंचिं०-तेजा०-क०-समच०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिपंच०-णिमि०-तित्थ० उक्क० वड्डी कस्स ? अण्ण० खवग० अपुव्वकर० परभवियणामाणं बंधचरिमे वट्टमाणगस्स तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स ? यो उवसामाणं से काले परभवियणामाणं अबंधगो होहिदि त्ति तदो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं सादभंगो। उज्जो० उक्क० वड्डी क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए णेरइगस्स मिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार-जा० सव्वविसु० अणियट्टिकरणे वट्टमाणगस्स से काले सम्मत्तं पडिवज्जिहिदि त्ति तस्स उक्क० वड्डी। उक्क०

वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, आहारकआङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो क्षपक अपूर्वकरणमें परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? गिरनेवाला जो उपशामक परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके द्वितीय समयमें स्थित है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? अक्षपक और अनुपशामक तथा साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर जो अप्रमत्तसंयत जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक अनन्तगुणी श्रेणिरूपसे वृद्धिको प्राप्त होकर अवस्थित है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि पाँच, निर्माण और तीर्थङ्करकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर क्षपक जीव अपूर्वकरणमें नामकर्मकी परभवसम्बन्धी प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उपशामक अनन्तर समयमें नामकर्मकी परभवसम्बन्धी प्रकृतियोंका अबन्धक होगा कि इसी बीचमें तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका भंग सातावेदनीयके समान है। उद्योतकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जीव अनिवृत्तिकरणमें रहते हुए तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाला है वह उत्कृष्ट वृद्धिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाणी कस्स ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए णेरइगस्स मिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्ज० पज्जत्तग० तप्पाओग्गउक्कस्सिगादो विसोधीदो पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्सगमवट्ठाणं।

५६५. आदेसेण णेरइएसु पंचणा०-णवदंस०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०-हुंड०-असंपत्त०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्ढी क० ? यो चदुट्ठा०यवमज्झस्स उवरिं अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधमाणो अंतोमुहुत्तं अणंतगुणाए सेढीए वड्ढिदूण उक्कस्सगं दाहं गदो तदो उक्क० अणुभागं पबंधो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स ? यो उक्क० अणु० बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पा०जहण्णए पदिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। साद०-मणुस०-पंचिंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-समच०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उक्क० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च ओघं मणुसगदिभंगो। इत्थि०-पुरिस०-दो आउ०-चदुसंठा०-चदुसंघ०-उज्जो० ओघभंगो। हस्स-रदि० इत्थिवेदभंगो। [एवं] सत्तमाए। उवरिमासु छसु उज्जो० तिरिक्खाउभंगो। सेसमेसेव[1]।

स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि और सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त जो अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य विशुद्धिको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है और वही तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है।

५६५. आदेशसे नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त-वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिका बन्ध करनेवाला जो जीव अन्तर्मुहूर्त तक अनन्तगुणित श्रेणिक्रमसे वृद्धिको प्राप्त होता हुआ उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामीका भङ्ग ओघसे मनुष्यगतिके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, चार संस्थान, चार संहनन और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। हास्य और रतिका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। पहलेकी छह पृथिवियोंमें उद्योतका भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है। शेष पूर्वोक्त प्रकार ही है।

---

१. आ० प्रतौ सेसमेवमेव इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६६. तिरिक्खेसु पंचणा०–णवदंस०–असादा०–मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरय०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०–णीचा०–पंचंत० तिण्णि वि णेरइयभंगो। सादा०-देवग०-पसत्थसत्तावीसं उच्चा० तिण्णि वि णेरइयसादभंगो। इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि–तिरिक्ख०–चदुजादि-चदुसंठा०-पंचसं०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ ओघं इत्थिभंगो। चदुआउ०–आदावं ओघं। मणुसगदिपंचग–उज्जो० तिरिक्खाउभंगो। अथवा बादरतेउ०-वाउ० उज्जो० उक्क० वड्डि-हाणि-अवट्ठाणं यदि कीरदि तेसिं सादभंगो तिण्णि वि। एवं पंचिंदियतिरिक्ख०३। णवरि[1] उज्जो० तिरिक्खाउभंगो।

५६७. पंचिंदि०तिरि०अप० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०–पंचणोक०–तिरिक्ख०– एइंदि०–हुंड०–अप्पसत्थ०४–तिरिक्खाणु०–उप०–थावर०४–अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्डी क०? यो तप्पाओग्गजह०संकिलेसादो उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणुभा० बंधो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स०? यो उक्क० अणुभा० बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। सादा०-मणुस०-पंचिं०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा० अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा०

५६६. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीनों ही पदोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। सातावेदनीय एक, देवगति आदि प्रशस्त सत्ताईस प्रकृतियाँ और उच्चगोत्रके तीनों ही पदोंका भङ्ग नारकियोंके सातावेदनीयके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यञ्चगति, चार जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारका भङ्ग ओघसे स्त्रीवेदके समान है। चार आयु और आतपका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चक और उद्योतका भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है। अथवा बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव उद्योतकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानको यदि करता है, तो इनके तीनों ही पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें उद्योतका भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है।

५६७. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर चतुष्क, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो तत्प्रायोग्य जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

१. ता० प्रतौ यदि किरे (कीर) दि तेसिं वि सादभंगो। तिण्णि वि एवं पंचिंदियतिरिक्ख०। ३णवरि इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

उक्क० वड्डी कस्स ? यो जह० विसोधीदो उक्क० विसोधिं गदो तदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी क० ? यो उक्क० अणुभा० बंधमाणो सागारक्खएण पडि-भग्गो तप्पाओंग्गजह० पदिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-तिण्णिजा०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० तिण्णि वि णाणावरणभंगो। णवरि तप्पाओंग्गसंकिलिट्ठो कादव्वो। दोआउ०-आदाव० ओघं। उज्जो० तिरिक्खाउभंगो। एवं सव्वअपज्जत्तगाणं एइंदि०-विगलिं०-पंचकायाणं च। णवरि एइंदिएसु तेउ-वाउकाइएसु उज्जो० सादभंगो।

५६८. मणुस०३ खवियाणं वड्डि-अवट्ठाणं ओघं देवगदिभंगो। सेसं पंचिंदि० तिरि०भंगो।

५६९. देवेसु पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-[सोलसक०-]पंचणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-थावर०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णेरइगभंगो। सेसाणं पि णेरइगभंगो। णवरि आदाउज्जो० तिरिक्खाउभंगो। भवण०-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मी० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरि०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० तिण्णि वि देवोघं। सेसाणं पि देवभंगो। णवरि

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तीन जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके तीनों ही पदोंका भंग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि तत्प्रायोग्य संक्लिष्टके कहना चाहिए। दो आयु और आतपका भंग ओघके समान है। उद्योतका भंग तिर्यञ्चायुके समान है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें उद्योतका भंग सातावेदनीयके समान है।

५६८. मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंकी वृद्धि और अवस्थानका भंग ओघसे देवगतिके समान है। शेष भंग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है।

५६९. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका भंग नारकियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भंग भी नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि आतप और उद्योतका भंग तिर्यञ्चायुके समान है। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म-ऐशान कल्पके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय-जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीनों ही पदोंका भंग सामान्य देवोंके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असं०-अप्पसत्थ०-दुस्स० इत्थिभंगो। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति पढमपुढविभंगो। आणद याव उवरिमगेवज्जा त्ति पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्डी कस्स०? यो तप्पाओंग्गजहण्णगादो संकिलेसादो उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी क०? यो उक्क० अणुभा०बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओंग्गजह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। साददंडओ णिरयभंगो। इत्थिवेददंडओ पंचिं०तिरि०अपज्ज०भंगो। [मणुसाउ० देवोघं।] अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति पंचणा०-छदंस०-असादा०-बारसक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दु०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० वड्डी कस्स? यो जह० संकि० उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हा० क०? यो उक्क० अणु० बंधमाणो सायारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओंग्गजह० पदिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। साददंडओ देवोघं। हस्स-रदि० उक्क० वड्डी क०? यो तप्पाओंग्गजह० अणुभागं बंधमाणो तप्पाओ० जह० संकिलेसादो तप्पा० उक्क० संकिलेसं गदो तप्पाओ० उक्क० अणुभागबंधो तस्स उक्क० वड्डी।

शेष प्रकृतियोंका भंग भी समान्य देवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका भंग स्त्रीवेदके समान है। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें प्रथम पृथिवीके समान भंग है। आनतकल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो तत्प्रायोग्य जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीयदण्डकका भंग नारकियोंके समान है। स्त्रीवेददण्डकका भंग तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। मनुष्यायुका भंग सामान्य देवोंके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय दण्डकका भंग सामान्य देवोंके समान है। हास्य और रतिकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य संक्लेशसे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ० हा० क० ? यो तप्पा० उक्क० अणु० बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पा० जह० पदिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। मणुसाउ० ओघं।

५७०. पंचिं०-तस०२ ओघभंगो। णवरि पंचणा०दंडओ उक्क० वड्ढी ओघं०। हाणी अवट्ठाणं सागारक्खएण पडिभग्गो त्ति भाणिदव्वं। पंचमण०-पंचवचि० खविगाणं पगदीणं मणुसिभंगो। सेसं पंचिं०भंगो। कायजोगि० ओघं। ओरालि० मणुसभंगो। णवरि उज्जो० तिरिक्ख०भंगो। ओरालियमि० पंचणाणावरणादिसंकिलिट्ठपगदीणं उक्क० वड्ढी क० ? यो से काले सरीरपज्जत्ती जाहिदि त्ति जहण्णगादो संकिलेसादो उक्कस्सगं संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उ० वड्ढी। उ० हा० क० ? यो उ० अणु० बंधमाणो दुसमयसरीरपज्जत्तिं जाहिदि त्ति सागारक्खएण पडिभग्गो तस्स उ० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। सादादीणं सव्वविसुद्धाणं उक्क० वड्ढी क० ? यो जहण्णगादो विसोधीदो उक्क० विसोधिं गदो तदो से काले सरीरपज्जत्तिं जाहिदि त्ति उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क० वड्ढी। एवं सेसाणं पि तप्पाओग्ग-संकिलिट्ठाणं तप्पाओग्गविसुद्धाणं च एसेव आलावो कादव्वो। एवं वेउव्वियमि०-आहारमिस्साणं पि। णवरि अप्पप्पणो पगदीओ कादव्वाओ। वेउव्वि० देवोघं।

तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। मनुष्यायुका भंग ओघके समान है।

५७०. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरणदण्डककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी ओघके समान है। हानि और अवस्थान जो साकार उपयोगसे प्रतिभग्न हुआ है उसके कहना चाहिए। पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष भंग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। काययोगी जीवोंमें ओघके समान भंग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग तिर्यञ्चोंके समान है। औदारिकमिश्रकाय-योगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि संक्लिष्ट प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा कि इसके पूर्व समयमें जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव दो समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा कि शरीर पर्याप्तिके समयसे दो समय पूर्व साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय आदि सर्वविशुद्ध प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर अगले समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा कि शरीरपर्याप्तिके समयसे पूर्व समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और तत्प्रायोग्य विशुद्ध जीवोंके यही आलाप करना चाहिए। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ करनी चाहिए। वैक्रियिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि उज्जो० सत्तमभंगो। आहार० सव्वट्ठभंगो।

५७१. कम्मइ० पंचणा०-णवदं०-असादा[1]०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक० तिरिक्ख[2]०-एइंदि०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्ढी क०? यो जहण्णगादो संकिलेसादो उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणुभा० पबंधो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हा० क०? यो उक्क० अणु०बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं क०? अण्ण० बादरएइंदियस्स उक्कस्सिया हाणिं कादूण अवट्ठिदस्स तस्स उ० अवट्ठाणं। सादादीणं पसत्थाणं पगदीणं मणुसगदि-पंचग० उक्कस्सवड्ढि-हाणी देवोघं। उक्क० अवट्ठाणं णाणावरणभंगो। देवगदिपंचग० अवट्ठाणं णत्थि। सेसाणं तप्पाओग्गसंकिलिट्ठाणं तप्पाओग्गविसुद्धाणं च एसेव आलावो कादव्वो। णवरि तप्पाओग्गसंकिलिट्ठ-तप्पाओग्गविसुद्ध त्ति भाणिदव्वं। एवं अणाहार०।

५७२. इत्थिवेदे पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरय०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पस०४-दोआणु०उप०-अप्पसत्थ०-थावर०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं ओघं णिरयगदिभंगो। सादा०-जस०-उच्चा० उक्क० वड्ढी क०? अण्ण० खवग० अणियट्टिबादरसांपराइगस्स

काययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग सातवीं पृथिवीके समान है। आहारककाययोगी जीवोंका भंग सर्वार्थसिद्धिके समान है।

५७१. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है? जो अन्यतर बादर एकेन्द्रिय जीव उत्कृष्ट हानि करके अवस्थित है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके और मनुष्यगतिपञ्चककी उत्कृष्ट वृद्धि और हानिका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। उत्कृष्ट अवस्थानका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। देवगतिपञ्चकका अवस्थानपद नहीं है। शेष प्रकृतियोंका तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और तत्प्रायोग्य विशुद्ध जीवोंके यही आलाप करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और तत्प्रायोग्य विशुद्ध ऐसा कहना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

५७२. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौदर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानका भङ्ग ओघसे नरकगतिके समान है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर क्षपक जीव

१. ता. प्रतौ णवदंस० सादा० इति पाठः। २. आ. प्रतौ सोलसक० तिरिक्ख० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरिमे उक्कस्सए अणुभागबंधे वट्टमाणगस्स तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी क० ? अण्ण० उवसाम० परिवद० अणियट्टिबादर०दुसमयं बंध० उ० हा०। अवट्ठाणं ओघं। सेसाणं पि खविगाणं मणुसि०भंगो। सेसाणं पगदीणं पंचिं०तिरि०भंगो। उज्जो० आदावभंगो।

५७३. पुरिसेसु साद०-जस०-उच्चा० उक्क० वड्ढी अवट्ठा० इत्थि०भंगो। उ० हा० क० ? यो उवसम०अणियट्टी से काले अबंधगो होहिदि त्ति मदो देवो जादो तस्स उ० हाणी। सेसं पंचिंदियपज्जत्तभंगो। णवरि तिरिक्खाउभंगो।

५७४. णवुंसगे पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरयग०-तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-दोआणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० तिण्णिपदा ओघं णिरयगदिभंगो। खविगाणं इत्थिभंगो। इत्थिवेददंडओ चदुजादीए घेप्पदि। उज्जो० ओघं। सेसं इत्थिभंगो।

५७५. अवगद० अप्पसत्थाणं उक्क० वड्ढी क० ? अण्ण० उवसा० परिवद० अणिय० दुचरिमे[1] बंधादो चरिमे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स से काले सवेदो होहिदि त्ति तस्स उ० वड्ढी। उक्क० हा० क० ? अण्ण० खवग० अणिय० पढमादो अणुभागबंधादो विदिए अणुभा० वट्टमा० तस्स० उ० हाणी। साद०-जस०-उच्चा० उक्क०

अनिवृत्ति बादरसाम्परायके अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो गिरनेवाला अन्यतर उपशामक जीव अनिवृत्तिकरण बादर साम्परायके द्वितीय समयमें बन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। शेष क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग भी मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। उद्योतका भङ्ग आतपके समान है।

५७३. पुरुषवेदी जीवोंमें सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उपशामक अनिवृत्तिकरण जीव अनन्तर समयमें अबन्धक होगा कि अबन्धक होनेके पूर्व समयमें मरकर देव हो गया वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। शेष भङ्ग पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके समान भङ्ग है।

५७४. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंका भङ्ग ओघसे नरकगतिके समान है। क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। स्त्रीवेददण्डकको चार जातियोंके साथ ग्रहण करना चाहिए। उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। शेष भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है।

५७५. अपगतवेदी जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो गिरनेवाला अन्यतर उपशामक अनिवृत्तिकरण जीव द्विचरम समयमें होनेवाले बन्धसे अन्तिम समयमें होनेवाले अनुभागबन्धमें अवस्थित है और जो अगले समयमें सवेदी होगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अनिवृत्तिकरण क्षपक प्रथम अनुभागबन्धसे द्वितीय अनुभागबन्धमें विद्यमान है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। साता-

१. आ. प्रतौ परिवद० दुचरिमे इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वड्ढी ओघं। उ० हा० क० ? अण्ण० उवसाम० परिवद० सुहुमसं० दुसमयबंधगस्स तस्स उ० हा०। एवं सुहुमसंपराइ०।

५७६. कोधादि०४ ओघं। णवरि सादा०-जस०-उच्चा० उक्क० वड्ढी अवट्ठाणंओघं। उ० हा० क० ? अण्ण० यो उवसाम० कोधसंजलणाए से[1] काले अबंधगो होहिदि त्ति मदो देवो जादो तप्पाओग्गजह० पदिदो तस्स उक्क० हाणी। एवं माणे मायाए। लोभे ओघं।

५७७. मदि-सुदे पढमदंडओ हस्स-रदिदंडओ ओघं। सादा० देवगदिपसत्थ-सत्तावीसं उच्चा० उक्क० वड्ढी क० ? अण्ण० मणुसस्स सागार–जागार० सव्वविसुद्ध० संजमाभिमुहस्स चरिमे समए उक्कस्सगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स तस्स उ० वड्ढी। उ० हाणी क० ? अण्णदरस्स संजमादो परिवदमाणगस्स दुसमयबंधगस्स तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं क० ? यो तप्पाओग्गउक्क० विसोधीदो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओ० जह० पदिदो तस्स उक्क० अवट्ठाणं। एवं संजमाभिमुहाणं। मणुसगदिपंच० उक्क० वड्ढी क० ? सम्मत्ताभिमुहस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी क० ? सम्मत्तादो परिवद० दुसमयबंध० तस्स उ० हाणी। अवट्ठाणं सादभंगो। सेसं

वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी ओघके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? गिरनेवाले जिस अन्यतर उपशामकने सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें दूसरे समयमें बन्ध किया है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयतके जानना चाहिए।

५७६. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर उपशामक क्रोधसंज्वलनके बन्धसे अनन्तर समयमें अबन्धक होगा कि मरा और देव होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इसी प्रकार मान और मायाकषायवाले जीवोंमें जानना चाहिए। लोभ-कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

५७७. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डक और हास्य-रतिदण्डक ओघके समान है। सातावेदनीय, देवगति आदि प्रशस्त सत्ताईस प्रकृतियाँ और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर मनुष्य साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध संयमके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? संयमसे गिरनेवाले जिस अन्यतर जीवने दो समय तक बन्ध किया है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इस प्रकार संयतके अभिमुख होकर उत्कृष्ट वृद्धिको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंका स्वामित्व जानना चाहिए। मनुष्यगतिपञ्चककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ जीव उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सम्यक्त्वसे च्युत होकर जिसने दो समय तक बन्ध किया है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। अवस्थानका भङ्ग सातावेदनीयके

---

१. आ. प्रतौ कोधसंजलणा वि से इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघं । विभंगे पसत्थाणं मदि०भंगो । सेसाणं पंचिंदियभंगो ।

५७८. आभिणि०-सुद०-ओधि० पंचणा०—छदंस०-असाद०—बारसक०—पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दु०-अप्पसत्थ०४—उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० वड्ढी क० ? अण्ण० असंज० सागार-जा० णियमा उक्क०संकिलिट्ठस्स मिच्छत्ताभिमुह० चरिमे उक्क० अणुभा० वट्टमा० तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी क० ? यो तप्पाओंग्गउक्कस्सगादो संकिलेसादो पडिभग्गो तप्पाओंग्गजह० पदिदो तस्स उ० हा० । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । हस्स-रदीणं सत्थाणे तिण्णि वि कादव्वाणि । सेसाणं ओघं । मणपज्जवे पढमदंडओ ओधिणाणिभंगो[1] । णवरि असंजमाभिमुह० । एवं हस्स-रदीणं पि । सेसं ओघं । एवं संजद-सामाइ०—छेदो० । णवरि सामा०-छेदो० साद०—जस०-उच्चा० उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं ओघं । उक्क० हाणी क० ? अण्ण० उवसाम० परिवद० विदियसमयअणियट्टि०संजदाणं । सव्वाणं हाणी मणुसिभंगो । परिहार० पढमदंडओ मणपज्जवभंगो । णवरि वड्ढी सामाइय-च्छेदोवट्ठावणाभिमुहस्स । सेसाणं सत्थाणं कादव्वं । संजदासंजदे पढमदंड० वड्ढी ओधि०भंगो । हाणी अवट्ठाणं सत्थाणे । साददंडओ वड्ढी संजमाभिमुह० । हाणी अवट्ठाणं सत्थाणे । असंजदे

समान है । शेष ओघके समान है । विभङ्गज्ञानी जीवोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है ।

५७८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि साकार-जागृत है, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख होकर अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है । उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है । हास्य और रतिके तीनों ही पद स्वस्थानमें करने चाहिए । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि असंयमके अभिमुख जीवके उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामित्व कहना चाहिए । इसी प्रकार हास्य और रतिका भी कहना चाहिए । शेष भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है । उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जिस गिरनेवाले उपशामकने अनिवृत्तिकरणमें दो समय तक बन्ध किया है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । यहाँ सब प्रकृतियोंकी हानिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है । परिहार-विशुद्धिसंयत जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि वृद्धि सामायिक और छेदोपस्थापनासंयतके अभिमुख हुए जीवके होती है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानमें करना चाहिए । संयतासंयत जीवोंमें प्रथम दण्डककी वृद्धिका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । इसकी हानि और अवस्थान स्वस्थानमें होते हैं । सातावेद-

१. ता. आ. प्रत्योः ओधिविभंगो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमदंडओ ओघं[1]। सादद‌ंडओ मदि०भंगो। णवरि असंजदसम्मादिट्ठिस्स कादव्वा। सेसं ओघं।

५७९. चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खु० ओघं। ओधिदं०-सम्मा०-खइग० ओधि०भंगो[2]। णवरि खइगे पढमदंडए वड्ढी सत्थाणे कादव्वा।

५८०. किण्णाए पढमदंडओ णवुंसगभंगो। साददंडओ णिरयभंगो। इत्थि[3]०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-थावरादि०४ णवुंसगभंगो। देवगदिपंच० उक्क० वड्ढी[4] क०? यो तप्पा०जह०विसोधिं गदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क०वड्ढी। उक्क० हा० क०? यो तप्पा०उक्क०अणुभा० बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओ० ज० पडिदो तस्स उक्क० हा०। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। सेसं ओघादो[5] साधेदव्वं।

५८१. णील-काऊणं पढमदंडओ साददंडओ इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुसंठा० चदुसंघ० णिरयभंगो। णिरय०-चदुजादि-णिरयाणु०-थावरादि०४ उक्क० वड्ढी कस्स? यो तप्पाओग्गजह०संकिलेसादो उक्क०संकिलेसं गदो तदो उ० अणुभा० पबंधो तस्स उक्क० वड्ढी। उ० हा० क०? यो उक्क० अणुभा० बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पा०

नीयदण्डककी वृद्धिका स्वामी संयमके अभिमुख हुआ जीव है। हानि और अवस्थान स्वस्थानमें होते हैं। असंयत जीवोंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टिके कहना चाहिए। शेष भङ्ग ओघके समान है।

५७९. चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें प्रथम दण्डकमें वृद्धि स्वस्थानमें कहनी चाहिए।

५८०. कृष्णलेश्यामें प्रथम दण्डकका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भंग नारकियोंके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन और स्थावर आदि चारका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। देवगतिपञ्चककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जिसने तत्प्रायोग्य विशुद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। शेष सब ओघके अनुसार साध लेना चाहिए।

५८१. नील और कापोत लेश्यामें प्रथम दण्डक, साता दण्डक तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग नारकियोंके समान है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जिसने तत्प्रायोग्य जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो

१. आ. प्रतौ संजदासंजदे पढमदंडओ ओघं इति पाठः। २. ता.आ. प्रत्योः खइग० वेदग० ओधि० भंगो इति पाठः। ३. ता. प्रतौ णिरयभंगो। देवगदिपंच० उक्क० इत्थि० इति पाठः। ४. ता. प्रतौ णवुंसकभंगो। वड्ढी क० इति पाठः। ५. आ. प्रतौ ओघेण इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० पदिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। देवगदि०५ किण्णभंगो। णवरि[1] काऊए तित्थयरं णिरयभंगो। सेसं[2] आउगादीणं ओघादो साधेदव्वं।

५८२. तेऊए पढमदंडओ सोधम्मभंगो। साद० उक्क० वड्ढी कस्स? यो तप्पा०-जहण्णगादो विसोधीदो उक्कस्सगं विसोधिं गदो तदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क० वड्ढी। उ० हाणी क०? यो उक्क० अणुभा० मदो देवो जादो तदो तप्पाओग्गजह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी। अवट्ठाणं ओघं। पंचिं०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थव०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० सादभंगो। देवगदि०-उक्क० परिहारभंगो। सेसं सोधम्मभंगो। एवं पम्माए वि। णवरि पढमदंडओ सहस्सारभंगो। उज्जो० तिरिक्खाउभंगो। सुक्काए खविगाणं ओघं। पढमदंडगादि० आणदभंगो।

५८३. भवसि० ओघं। अब्भवसि० पढमदंडओ ओघं। साददंडओ णिरयभंगो। पसत्थाणं कादव्वं। णवरि चदुगदि० सव्वविसुद्धो त्ति। उज्जो० सादभंगो। सेसं ओघं।

जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वहीं अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। देवगतिपञ्चकका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। इतनी विशेषता है कि कापोतलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है। शेष आयु आदिका भङ्ग ओघके अनुसार साध लेना चाहिए।

५८२. पीतलेश्यामें प्रथम दण्डक सौधर्मकल्पके समान है। सातावेदनीयकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जिसने तत्प्रायोग्य जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव मर कर देव हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। देवगतिकी उत्कृष्ट वृद्धिका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। शेष भङ्ग सौधर्मकल्पके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डक सहस्रारकल्पके समान है। तथा उद्योतका भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है। शुक्ललेश्यामें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। प्रथम दण्डक आदिका भङ्ग आनतकल्पके समान है।

५८३. भव्योंमें ओघके समान भङ्ग है। अभव्योंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग नारकियोंके समान है। इसी प्रकार सब प्रशस्त प्रकृतियोंका कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि चारगतिके सर्वविशुद्ध जीवके कहना चाहिए। उद्योतका भंग सातावेदनीयके समान है। शेष भंग ओघके समान है।

---

१. आ. प्रतौ देवगदि०५ णवरि इति पाठः। २. आ. प्रतौ णिरयभंगो। किण्णभंगो। सेसं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८४. वेदग० साददंडओ तेउ०भंगो। सेसं ओधि०भंगो। उवसम० ओधि०भंगो। णवरि सादा०-जस०-उच्चा० उक्क० वड्ढी क०? अण्ण० सुहुमसंप० उवसाम० चरिमे उक्क० अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वड्ढी। एवं सव्वाणं उवसामगाणं सादादीणं पसत्थाणं। सासणे पढमदंडओ सव्वसंकिलिट्ठस्स। साददंडओ सव्वविसुद्धस्स। पुरिसदंडओ तप्पाओ०संकि०। तिण्णि आऊणि ओघं। सम्मामि० पढमदंडओ उक्क० वड्ढी क०? मिच्छत्ताभिमुह० तस्स उक्क० वड्ढी। उ० हा० क०? सम्मत्ताभिमुह० चरिमसमय-बंधगस्स तस्स उक्क० हा०। अवट्ठाणं सट्ठाणे। साददंडओ उक्क० वड्ढी क०? सम्मत्ताभिमुह० तस्स उक्क० वड्ढी। उक्कस्सिया हाणी अवट्ठाणं सत्थाणे। मिच्छादिट्ठी० मदि०भंगो।

५८५. असण्णीसु अब्भव०भंगो। णवरि पढमदंडए उक्क० वड्ढी क०? यो तप्पाओँग्गजह० संकि० उक्क०संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क० वड्ढी। उ० हाणी अवट्ठाणं सागारक्खएण पडिभग्गो। आहार० ओघं।

एवं उक्कस्ससामित्तं समत्तं

५८६. जहण्णए पगदं। एत्तो जहण्णपदणिक्खेवसामित्तस्स साधणट्ठं अट्ठपद-भूदसमासलक्खणं वत्तइस्सामो। तं जहा—मिच्छादिट्ठिस्स या अणंतभागफद्दग-

५८४. वेदक सम्यक्त्वमें सातावेदनीय दण्डकका भंग पीतलेश्याके समान है। शेष भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। उपशमसम्यक्त्वमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक जीव अन्तिम अनुभागबन्धमें विद्यमान है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार सब उपशामकोंके सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका कहना चाहिए। सासादन सम्यक्त्वमें प्रथम दण्डक सर्वसंक्लिष्टके, सातावेदनीयदण्डक सर्व-विशुद्धके और पुरुषवेददण्डक तत्प्रायोग्य संक्लिष्टके कहना चाहिए। तीन आयुका भंग ओघके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वमें प्रथम दण्डककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो मिथ्यात्वके अभिमुख है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? जो सम्यक्त्वके अभिमुख होकर अन्तिम समयमें बन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थान स्वस्थानमें होता है। सातावेदनीयदण्डककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानि और अवस्थान स्वस्थानमें होते हैं। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भंग है।

५८५. असंज्ञियोंमें अभव्योंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जिसने तत्प्रायोग्य जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानि और अव-स्थानका स्वामी साकार उपयोगके क्षय होनेसे प्रतिभग्न हुआ जीव होता है। आहारकोंमें ओघके समान भंग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

५८६. जघन्यका प्रकरण है। यहाँ जघन्यपदनिक्षेपके स्वामित्वका साधन करनेके लिए अर्थपदको संक्षेपमें बतलाते हैं। यथा—मिथ्यादृष्टिकी जो अनन्तभागस्पर्द्धकवृद्धि है, संयतकी

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

परिवड्डी संजदस्स या अणंतभागफद्दगपरिवड्डी मिच्छादिट्ठिस्स या अणंतभागपरिवड्डी सा अणंतगुणा। एदेण अट्ठपदभूदसमासलक्खणेण दुवि०। ओघे० पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० जहण्णिगा वड्डी कस्स? अण्णदरस्स उवसा० परिवद० दुसमयसुहुमसं० तस्स जह० वड्डी। जह० हा० क०? अण्ण० सुहुमसंप० खवगचरिमे जह० अणु० वट्ट० तस्स जह० हाणी। जह० अवट्ठा० क०? अण्ण० अप्पमत्तसं० अक्खवग० अणुवसमग० सागार-जा० सव्वविसुद्धस्स उक्कस्सविसोधीदो पडिभग्गस्स अणंतभागेण वड्डिदूण अवट्ठिदस्स जह० अवट्ठाणं। णिद्दाणिद्दा-पचलापचला-थीणागि०-मिच्छ०-अणंताणु० जह० वड्ढी क०? अण्ण संजमादो वा संजमासंजमादो वा सम्मत्तादो वा परिवदमाणगस्स दुसमयमिच्छादिट्ठिस्स तस्स जह० वड्ढी। ज० हा० क०? अण्ण० मणुसस्स वा मणुसीए वा मिच्छादिट्ठि० सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार-जा० सव्वविसु० से काले संजमं पडिवज्जिहिदि त्ति तस्स ज० हा०। ज० अवट्ठा० क०? अण्ण० पंचिंदियस्स मिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार-जा० तप्पाओग्गउक्कस्सगादो विसोधीदो पडिभग्गस्स अणंतभागेण वड्डिदूण अवट्ठिदस्स तस्स जह० अवट्ठा०। णिद्दा-पयलाणं जह० वड्डी अवट्ठाणं णाणावरणभंगो। जह० हा० क०? अण्ण० खवग० अपुव्वकरणस्स णिद्दा-पयलाणं बंधचरिमे वट्टमा० तस्स जह० हाणी। सादासाद०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० जह० वड्ढी कस्स? अण्ण० सम्मादिट्ठिस्स वा मिच्छादिट्ठिस्स वा परियत्तमाणमज्झिम-

जो अनन्तभाग स्पर्धकवृद्धि है तथा मिथ्यादृष्टिकी जो अनन्तभागवृद्धि है वह अनन्तगुणी है। संक्षेपमें कहे गये इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? जिस गिरनेवाले अन्यतर उपशामकने सूक्ष्म साम्परायमें दो समय तक बन्ध किया है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक जीव अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित है वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है? जो अन्यतर अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव साकार-जागृत है, सर्वविशुद्ध है, उत्कृष्ट विशुद्धसे प्रतिभग्न हुआ है और अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर जीव संयमसे, संयमासंयमसे और सम्यक्त्वसे गिर कर दो समयवर्ती मिथ्यादृष्टि है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है? मिथ्यादृष्टि, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर मनुष्य या मनुष्यिनी जीव अनन्तर समयमें संयमको प्राप्त करेगा वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और साकार-जागृत जो अन्यतर पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। निद्रा और प्रचलाकी जघन्य वृद्धि और अवस्थानका स्वामी ज्ञानावरणके समान है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जीव निद्रा और प्रचलाके बन्धके अन्तिम समयमें विद्यमान है वह जघन्य हानिका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी जघन्य वृद्धि [हानि और अवस्थान] का स्वामी कौन है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणामस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एकदरत्थमवट्ठाणं। अपच्चक्खाण०४ ज० वड्ढी क० ? अण्ण० संजमादो वा संजमासंजमादो वा परिवदमाणस्स[1] दुसमयअसंजदसम्मादिट्ठिस्स तस्स जह० वड्ढी। ज० हा० क० ? अण्ण० असंज० सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार-जा० सव्वविसु० से काले संजमं पडिवज्जिहिदि त्ति तस्स [ज०] हाणी। ज० अवट्ठा० क० ? अण्ण० असंज० सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्ज० सागा० सव्वविसु० उक्क०विसोधीदो पडिभग्गस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण अवट्ठिदस्स तस्स ज० अवट्ठाणं। पच्चक्खाण०४ ज० वड्ढी क० ? अण्ण० संजमादो परिवदमाणस्स दुसमयसंजदासंजदस्स ज० वड्ढी। ज० हा० क० ? अण्ण० संजदासंजदस्स सागार-जा० सव्वविसु० से काले संजमं पडिवज्जिहिदि तस्स ज० हा०। ज० अवट्ठा० क० ? अण्ण० सागार-जा० तप्पाओग्गउक्क०विसोधीदो पडिभग्गस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण अवट्ठिदस्स[2] तस्स ज० अवट्ठाणं। चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु०-अप्पसत्थ०४–उप० ज०वड्ढी अवट्ठाणं णाणावरणभंगो। ज० हा० क० ? अण्ण० खवग० अपुव्वक० अणियट्टिस्स। णवरि अप्पप्पणो पाओग्गं णादव्वं। इत्थि०-णवुंस० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० चदुगदियस्स पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि० सागार-जा० तप्पाओ[3]० विसु० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी

जो परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव है वह अनन्तभाग वृद्धिरूपसे वृद्धि अनन्तभागहानिरूपसे हानि और इनमेंसे किसी एक जगह अवस्थानका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? संयमसे और संयमासंयमसे गिरनेवाला जो अन्यतर दो समयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि जीव है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्व विशुद्ध जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तर समयमें संयमको प्राप्त होगा वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? संयमसे गिरनेवाला जो दो समयवर्ती संयतासंयत जीव है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर संयतासंयत जीव अनन्तर समयमें संयमको प्राप्त होगा वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत जो अन्यतर जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातकी जघन्य वृद्धि और अवस्थानका स्वामी ज्ञानावरणके समान है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपक जीव जघन्य हानिका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि अपने-अपने प्रायोग्य जानना चाहिए। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो सब पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और मिथ्यादृष्टि जीव है वह अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि

१. आ० प्रतौ संजमादो परिवदमाणस्स इति पाठः। २. ता० प्रतौ वड्ढिदूण उ) अ) वड्ढिदस्स, आ० प्रतौ वड्ढिदूण उवट्ठिदस्स इति पाठः। ३. ता० आ०: प्रत्योः सागारजा० कसाओ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक्कदरत्थमवट्ठाणं। अरदि-सोग० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० पमत्त०संज० सागा० तप्पा० विसु० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक्कदरत्थमवट्ठाणं। णिरय-देवाउ० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० जहण्णिगाए पज्जत्तणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाणगस्स मज्झिमपरिणामस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक्क० अवट्ठाणं। तिरिक्ख-मणुसाऊणं ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० जहण्णियाए अपज्जत्तगणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाणगस्स मज्झिम० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक्क० अवट्ठा०। णिरयग०-देवग०ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० परियत्तमाणमज्झिम० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक्क० अवट्ठा०। एवं तिण्णिजादि-दोआणु०-सुहुम०-अपज्ज०-साधार०। मणुस०[1]-छस्संठा०-छस्संघ०-मणु०-साणु०-दोविहा०-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदें०-अणादे०-उच्चा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० चदुगदि० मिच्छादि० परिय०मज्झिम० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक्क० अवट्ठा०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए णेरइगस्स मिच्छादि० सव्वाहि पज्ज० सागार-जा० तप्पा०उक्क०-विसोधीदो पडिभग्गो अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी। तस्सेव से काले ज० अवट्ठा०। ज० हा० क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए मिच्छादि० सव्वाहि पज्ज० सागा० सव्व-

और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। अरति और शोककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध जो अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव है वह अनन्त भागवृद्धि के द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानपर अवस्थानका स्वामी है। नरकायु और देवायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तिमान और मध्यम परिणामवाला ऐसा अन्यतर जो तिर्यञ्च और मनुष्य है वह अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जघन्य अपर्याप्तक निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला जो अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य है वह अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानपर अवस्थानका स्वामी है। नरकगति और देवगतिकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार तीन जाति, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म अपर्याप्त और साधारणकी अपेक्षा स्वामित्व जानना चाहिए। मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय और उच्चगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर चार गतिका परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और साकार-जागृत ऐसा अन्यतर सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर अनन्तभागवृद्धि करता हुआ जघन्य वृद्धिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकारजागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी अनिवृत्तिकरणके

१. ता० प्रतौ साद० मणुस० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसु० अणियट्टिकरणे चरिमे ज० अणु० वट्ट० तस्स ज० हा० । एइंदि०-थावर० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिगदि० परिय०मज्झिं० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठाणं । पंचिं०-तेजा०-क०-पसत्थ४-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० चदुगदि० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि प० सागा० णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एकद० अवट्ठाणं । ओरालि०-ओरालि०-अंगो०-उज्जो० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० णेरइ० वा देवस्स वा मिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि प० सागा० णिय० उक्क० संकि० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठा० । वेउ०-वेउ०अंगो० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मणुस० पंचिं० तिरिक्ख०-जोणिणीयस्स वा सण्णि० मिच्छादि० सव्वाहि पज्ज० सागा० णियमा उक्क० संकि० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठाणं । आहार०२ ज० वड्ढी क० ? अण्ण० अप्पमत्तसं० पमत्ताभिमुह० सागार० सव्वसंकि० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठाणं । आदा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० ईसाणंतकप्प०देवस्स मिच्छा० सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्ज० सागार-जा० णिय० उक्क०-संकिलि० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठाणं । तित्थ० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मणुसस्स वा मणुसीए वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्ज०

अन्तिम समयमें जघन्य अनुभागबन्ध करता है वह जघन्य हानिका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति और स्थावरकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर तीन गतिका परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव है वह अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानमें अवस्थानका स्वामी होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जघन्य वृद्धि का स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। औदारिकशरीर, औदारिक आंगोपांग और उद्योतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानि द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानपर अवस्थानका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआंगोपांगकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनि संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिद्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिद्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानपर जघन्य अवस्थानका स्वामी है। आहारकद्विकको जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त प्रमत्तसंयतके अभिमुख अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव अनन्तभागवृद्धिद्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थान पर जघन्य अवस्थानका स्वामी है। आतपकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर ऐशानकल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थान पर जघन्य अवस्थानका स्वामी है। तीर्थङ्करप्रकृतिकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और उत्कृष्ट संक्लेशसे प्रतिभग्न हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागा०-जा० उक्कस्ससंकिलेसादो पडिभग्गस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी। तस्सेव से काले ज० अवट्ठा०। ज० हा० क०? अण्ण० असंजदसम्मादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्ज० सागा० तप्पा०संकिलि० मिच्छत्ताभिमु० चरिमसमयअसंज०[1] तस्स ज० हाणी।

५८७. आदेसेण णेरइएसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ० [४-उप०-पंचंत०] ज० वड्ढी[2] क०? अण्ण० असंजद० सव्वाहि पज्ज० सागार० सव्वविसु० अणंत०भागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक्क० अवट्ठाणं। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४ ज० वड्ढी क०? अण्ण० सम्मत्तादो परिवदमा० दुसमय-मिच्छा० तस्स ज० वड्ढी। ज० हा० क०? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि प० सागा० सव्ववि० से काले सम्मत्तं पडिवज्जिहिदि त्ति तस्स ज० हा०। ज० अवट्ठा० क०? अण्ण० मिच्छा० सागा० तप्पा०उक्कस्सिगादो विसोधिं गदो अणंतभागेण वड्ढिदूण अवट्ठिदस्स तस्स ज० अवट्ठा०। सादासाद०-थिरादितिण्णियु० ओघं। इत्थि०-णवुंस० ज० तिण्णि वि क०? अण्ण० मिच्छादि० ओघभंगो। अरदि-सोग० ज० क०? अण्ण० सम्मादिट्ठिस्स तिण्णि वि०। तिरिक्ख०-मणुसाऊणं ज० वड्ढी क०? अण्ण० मिच्छा० जहण्णिगाए पज्जत्तणिव्व० णिव्वत्तमा० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी

अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य और मनुष्यिनी अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका स्वामी है तथा वही अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अन्तिम समयमें जघन्य हानिका स्वामी है।

५८७. आदेशसे नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिद्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिद्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानपर जघन्य अवस्थानका स्वामी है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कको जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वसे गिरकर जिसे मिथ्यात्वमें दो समय हुए हैं, ऐसा अन्यतर जीव जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करेगा वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है? साकार-जागृत जो अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका भंग ओघके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य तीनों ही पदोंका स्वामी कौन है? अन्यतर मिथ्यादृष्टिके ओघके समान भंग है। अरति और शोकके तीनों पदोंका स्वामी कौन है? अन्यतर सम्यग्दृष्टि तीनों ही पदोंका स्वामी है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? जघन्य पर्याप्ति निवृत्तिसे निवृत्तमान अन्यतर मिथ्यादृष्टि अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी

१. ता० प्रतौ चरिमे समयं असंज० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः अप्पसत्थ०......ज० वड्ढी० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक० अवट्ठाणं। तिरिक्ख०३ ओघं। मणुसगदिदंडओ ओघं। पंचिं०-ओरा० तेजा०-क०-ओरा०अंगो०[1]-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० सागा०-जा० सव्वसंकि० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठाणं। एवं उज्जो०। तित्थ० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० असंज० सागा० सव्वसंकि० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठाणं। एवं छसु पुढवीसु। णवरि तिरिक्ख०३ मणुसगदिभंगो। सत्तमाए मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० असंजद० सागार-जा० तप्पाऑग्गउक्कस्ससंकिलेसादो पडिभग्गो अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी। तस्सेव से काले ज० अवट्ठाणं। ज० हा० क० ? अण्ण० असंज० मिच्छत्ताभिमु० तस्स ज० हाणी।

५८८. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंसणा०-अट्ठक०-पंचणो०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० संजदासंज० सागार-जा० सव्वविसु० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठाणं। थीणगिद्धिदंडओ ओघं। सादद्दंडओ ओघं। इत्थि०-णवुंस० ओघं। अरदि-सोग० ज० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं क० ? अण्ण०

एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार उद्योतका स्वामित्व जानना चाहिए। तीर्थङ्करप्रकृतिकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार छहों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है। सातवीं पृथिवीमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे प्रतिभग्न हुआ अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका स्वामी है तथा वही अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? मिथ्यात्वके अभिमुख हुआ अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव जघन्य हानिका स्वामी है।

५८८. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर संयतासंयत सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। स्त्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग ओघके समान है। अरति और शोककी

१. आ० प्रतौ ओरा० ओरा० अंगो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजदासंज० । अपच्चक्खाण०४ तिण्णि वि ओघं । णवरि हाणी संजमासंजमं पडिवज्जं-तस्स । चदुआउ ०-तिण्णिगदि-चदुजा०-छस्संठा०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-दोविहा०-थावरादि४-मज्झिल्लयुगलाणि तिण्णि उच्चा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मिच्छादि० परिय०मज्झिम० अणंतभागेण तिण्णि वि० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०[1]-णीचा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० बादरतेउ०-वाउ०जीवस्स सव्वाहि प० अणंतभागेण तिण्णि वि । पंचिं०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सागा० सव्वसंकि० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एकदर० अवट्ठाणं । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० पंचिं०[2] सण्णि० मिच्छा० सागा० तप्पा०संकि० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एकद० अवट्ठाणं । एवं पंचिं०तिरिक्ख०३ । णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० णिरयभंगो ।

५८९. पंचिं०तिरि०अपज्ज० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सण्णिस्स सव्वविसु० अणंत-

---

जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? अन्यतर संयतासंयत जीव उक्त तीनों पदोंका स्वामी है । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके तीनों ही पदोंका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि संयमासंयमको प्राप्त होनेवाला जीव जघन्य हानिका स्वामी है । चार आयु, तीन गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, मध्यके तीन युगल और उच्चगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव अनन्तभागवृद्धि, अनन्त-भागहानि और अवस्थानके द्वारा तीनों ही पदोंका स्वामी है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ अन्यतर बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवस्थानके द्वारा तीनों ही पदोंका स्वामी है । पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है । औदारिकशरीर, औदारिक-आङ्गोपाङ्ग, आतप और उद्योतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रा-योग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है ।

५८९. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका,

---

१. ता० प्रतौ तिण्णिवि० । तिरिक्खाणु० इति पाठः । २. ता० प्रतौ वड्ढी क० ? पंचिं० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एकद० अवट्ठा० । सादासाद०-दोगदि-पंचजा०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तसादिदसयुग०-दोगो० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० परिय०मज्झिम० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठाणं । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सण्णि० सागा० तप्पा०विसु० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठाणं । दोआउ० ओघं । ओरा०-तेजा०-क०-[ओरालि०अंगो०-]पसत्थ०४-अगु०-णिमि० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० पंचिं० सण्णि० सागा० णिय० उक० संकि० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठा० । पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सण्णि० सागा० तप्पा०संकि० अणंतभागेण तिण्णि वि । एवं सव्वअपज्ज०-[सव्वएइंदि०-] सव्व-विगलिं०-पंचकायाणं च । णवरि एइंदिएसु तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० तिरि-क्खोघं । तेउ-वाऊणं पि तिरिक्खगदितिगं णाणा०भंगो ।

५९०. मणुस०३ खविगाणं ओघं । सेसं पंचिं०तिरि०भंगो । तित्थ० ओघं० ।

५९१. देवेसु पढमदंडओ थीणगिद्धिदंडओ साददंडओ इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग०-[दो]आउ० णिरयभंगो । दोगदि-एइंदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-

---

अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी, साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्यवृद्धिका, अनन्तभाग-हानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक अवस्थित स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है । दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है । औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त जीव अनन्त-भागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक अवस्थित स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है । परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी, साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट जीव क्रमसे अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवस्थितरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है । इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीच-गोत्रका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें भी तिर्यञ्च-गतित्रिकका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है ।

५९०. मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । शेष भंग पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके समान है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका भंग ओघके समान है ।

५९१. देवोंमें प्रथम दण्डक, स्त्यानगृद्धिदण्डक, सातावेदनीयदण्डक, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक और दो आयुओंका भंग नारकियोंके समान है । दो गति, एकेन्द्रियजाति, छह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थावर०-तिण्णियुग०-दोगो० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० परियत्तमाणमज्झिम० अणंतभागेण तिण्णि वि० । पंचिं०-ओरा०अंगो०-तस० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सणक्कुमार याव उवरिमदेवस्स मिच्छा० सागा० सव्वसंकि०अणंतभागेण तिण्णि वि० । ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मिच्छा० सागा० णिय० उक्क०संकि० अणंतभागेण तिण्णि वि० । आदा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मिच्छादि० ईसाणंतदेव० सागा० सव्वसंकि० अणंतभागेण तिण्णि वि० । उज्जो० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मिच्छादि० सागा० सव्वसंकि० अणंतभागेण तिण्णि वि० । तित्थ० णिरयभंगो । भवण०-वाण०-जोदिसि० सोधम्मीसा० देवोघं । णवरि पंचिं०-तस० परि०मज्झि० अणंतभागेण तिण्णि वि० । ओरालिसरीरअंगोवंग० तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स तिण्णि वि० ।

५९२. सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति पढमपुढविभंगो । आणद याव णवगेवज्जा त्ति पढमदंडओ थीणगिद्धिदंडओ साददंडओ इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग०-मणुसाउ० देवोघं । मणुस०-पंचिं०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मिच्छादि० सागा० सव्वसं०

संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर, तीन युगल और दो गोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव क्रमसे अनन्तभागरूप वृद्धि, हानि और अवस्थान रूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है । पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकआङ्गोपाङ्ग और त्रसकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लिष्ट अन्यतर सनत्कुमारसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकका मिथ्यादृष्टि देव क्रमसे अनन्तभागवृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है । औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त जीव क्रमसे अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अवस्थानद्वारा तीनों ही पदोंका स्वामी है । आतपकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर ऐशान कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव क्रमसे अनन्तभागवृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है । उद्योतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत और सर्वसंक्लेशयुक्त देव क्रमसे अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है । तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है । भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म ऐशानकल्पके देवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसके तीनों ही पदोंका स्वामी परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला देव क्रमसे अनन्तभागवृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे होता है । औदारिकशरीर आङ्गोपांगके तीनों ही पदोंका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट देव होता है ।

५९२. सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्पतक प्रथम पृथिवीके समान भङ्ग है । आनतकल्पसे लेकर नौवें ग्रैवेयकतकके देवोंमें प्रथम दण्डक, स्त्यानगृद्धिदण्डक, सातावेदनीयदण्डक, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक और मनुष्यायुका भंग सामान्य देवोंके समान है । मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आंगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंतभागेण तिण्णि वि० । छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा० मज्झिमाणि तिण्णियुगलाणि दोगोदस्स च ज० वड्ढी कस्स ? अण्ण० मिच्छा० परिय०मज्झिम० अणंतभागेण तिण्णि वि० । [तित्थ० देवोघं ।]

५९३. अणुदिस याव सव्वट्ठ० त्ति पढमदंडओ साददंडओ अरदि-सोग-मणुसाउ० देवोघं । मणुस०-पंचिं०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सागा० सव्वसंकि० अणंतभागेण तिण्णि वि० ।

५९४. पंचिं०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि० ओघं । ओरालि० ओघं । णवरि तिरिक्खगदितिगं तिरिक्खोघं । ओरालि०मि० पढमदंडओ सम्मादिट्ठिस्स । थीणगिद्धिदंडओ पंचिं० सण्णि० सव्वविसु० । तिरिक्खगदितिगं तिरिक्खोघं । एवं सेसा० ओघभंगो । णवरि से काले सरीरपज्जत्ति[1] जाहिदि त्ति भाणिदव्वं । वेउव्वि० देवोघं । णवरि तिरिक्खगदितिगं ओघं । वेउव्वियमि० पढमदंडओ सम्मादिट्ठिस्स । थीणगिद्धिदंडओ मिच्छादि० सागा० सव्वविसु० से काले सरीरपज्जत्तिं जाहिदि त्ति अणंत-

स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर देव क्रमसे अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, मध्यके तीन युगल और दो गोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला देव क्रमसे अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। तीर्थङ्करप्रकृतिका भंग सामान्य देवोंके समान है।

५९३. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें प्रथम दण्डक, सातावेदनीय दण्डक, अरति, शोक और मनुष्यायुका भंग सामान्य देवोंके समान है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकआंगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त देव क्रमसे अनन्तभागवृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है।

५९४. पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी और काययोगी जीवोंमें ओघके समान भंग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रथम दण्डकका स्वामी सम्यग्दृष्टि जीव है। स्त्यानगृद्धिदण्डकका स्वामी पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और सर्वविशुद्ध जीव है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि जो अनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा वह स्वामी है ऐसा कहना चाहिए। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग ओघके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रथम दण्डकका स्वामी सम्यग्दृष्टि जीव है। जो मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत और सर्वविशुद्धि जीव अनन्तर

१. ता० प्रतौ सेसा० । ओघि० ओघं णवरि सेस (से) काल (ले) सरीरपजत्तिं, आ० प्रतौ सेसा० ओघिभंगो । णवरि से काले सरीरपज्जत्ति इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

भागेण तिण्णि वि० । सेसं देवोघभंगो । आहार०-आहारमि० सव्वट्ठभंगो । कम्मइ० पढमदंडओ ज० वड्डी क० ? अण्ण० चदुगदि० सम्मादि० । सेसाणं देवभंगो । एवं अणाहारए त्ति ।

५९५. इत्थिवेदे पढमदंडओ अणियट्टिखवग० । थीणगिद्धिदंडओ ओघं । साद-दंडओ तिगदियस्स । अट्ठक० ओघं । इत्थि०-णवुंस० तिगदि० । अरदि-सोगं ओघं । चदुआउ-दोगदि-तिण्णिजा०-दोआणु०-थावरादि०४—आहार२-तित्थ० ओघं० । दोगदि-एइंदि०-छस्संठाण-[छस्संघ०-दोआणु०-] दोविहा०—मज्झिल्लतिण्णियु०-दोगो० तिगदि० । पंचिं०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-तस० ज० वड्डी क० ? अण्ण० दुगदिय० सव्वसंकि० । ओरा०-[ओरालि०अंगो०-] आदाउज्जो० ज० वड्डी क० ? अण्ण० देवीए संकिलिट्ठ० । तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० ज० वड्डी क० ? अण्ण० तिगदिय० तप्पा०संकिलि० । [सेसं ओघं ।] पुरिसेसु पढमदंडओ इत्थिवेदभंगो । सेसं पंचिंदियभंगो । णवरि तिरिक्खगदितिगं मणुसिभंगो ।

५९६. णवुंसगे पढमदंडओ इत्थिभंगो । दोगदि-चदुजादि-दोआणु०-थावरादि४-

---

समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा वह अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अनन्तर अवस्थानरूपसे स्त्यानगृद्धिदण्डकके तीनों ही पदोंका स्वामी है । शेष भंग सामान्य देवोंके समान है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भंग है । कार्मणकाययोगी जीवोंमें प्रथम दण्डककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है । शेष प्रकृतियोंका भंग देवोंके समान है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

५९५. स्त्रीवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डकका स्वामी अनिवृत्तिकरण क्षपक जीव है । स्त्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है । सातावेदनीयदण्डकका स्वामी तीन गतिका जीव है । आठ कषायोंका भङ्ग ओघके समान है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका स्वामी तीन गतिका जीव है । अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है । चार आयु, दो गति, तीन जाति, दो आनुपूर्वी, स्थावर आदि चार, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है । दो गति, एकेन्द्रियजाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके तीन युगल और दो गोत्रके तीनों पदोंका स्वामी तीनों गतिका जीव है । पञ्चेन्द्रियजाति वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग और त्रसकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लिष्ट अन्यतर-दो गतिका जीव तीनों पदोंका स्वामी है । औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप और उद्योतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लिष्ट अन्यतर देवी तीनों पदोंकी स्वामी है । तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट अन्यतर तीन गतिका जीव तीनों पदोंका स्वामी है । शेष भङ्ग ओघके समान है । पुरुषवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । शेष भंग पञ्चेन्द्रियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग मनुष्यिनियोंके समान है ।

५९६. नपुंसकवेदी जीवोंमें प्रथमदण्डकका भंग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । दो गति, चार जाति, दो आनुपूर्वी और स्थावर आदि चारके तीनों पदोंके स्वामी परिवर्तमान मध्यम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुगदिय० तिरिक्ख० मणुस० परिय०मज्झिम०[1]। मणुसगदिदंडओ तिगदिय०। तिरिक्ख०३ ओघं। पंचिं०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-तस४-णिमि० तिगदियस्स सव्वसंकि०। ओरालि०-ओरा०अंगो० उज्जो० णेरइग० सव्वसंकि०। वेउ०-वेउ० अंगो० ओघं। आदावं दुगदिय०। सेसं ओघं।

५९७. अवगदवेदे पढमदंडओ ओघं। साद०-जस०[2]-उच्चा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० विदियसमयअवगदवेदे०। ज० हा० क० ? अण्ण० उवसाम० परिवद० दुसमय०[3]सुहुमसंप०। एवं सुहुमसंप०। कोधादि०४ पढमदंडओ इत्थिभंगो। सेसं ओघं।

५९८. मदि०-सुद० पढमदंडओ ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मणुसस्स संजमादो परिवदमाणस्स दुसमयबंधस्स तस्स ज० वड्ढी। ज० हा० क० ? अण्ण० मणुसस्स सागा० सव्वविसु० संजमाभिमु० चरिमे अणु० वट्ट० तस्स ज० हाणी। ज० अवट्ठा० कस्स० ? अण्ण० पंचिं० सण्णि० सव्वाहि प० तप्पा०उक्क०विसोधीदो परिभग्गस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण अवट्ठिदस्स तस्स ज० अवट्ठा०। सादादिदंडओ ओघं चदुगदियस्स। सेसाणं पि ओघं। एवं विभंग०।

परिणामवाले दो गतिके तिर्यञ्च और मनुष्य हैं। मनुष्यगतिदण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके तीनों पदोंका स्वामी सर्वसंक्लिष्ट तीनों गतिका जीव है। औदारिकशरीर, औदारिक आंगोपांग और उद्योतके तीनों पदोंका स्वामी सर्वसंक्लिष्ट नारकी है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआंगोपांगका भंग ओघके समान है। आतपके तीनों पदोंका स्वामी दो गतिका जीव है। शेष भङ्ग ओघके समान है।

५९७. अपगतवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर द्वितीय समयवर्ती अपगतवेदी जीव जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर उपशमश्रेणिसे गिरनेवाला द्वितीय समयवर्ती सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक जीव जघन्य हानिका स्वामी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। क्रोध आदि चार कषायवाले जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। शेष भङ्ग ओघके समान है।

५९८. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? संयमसे गिर कर द्वितीय समयमें बन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत सर्वविशुद्ध और संयमके अभिमुख होकर अन्तिम समयमें अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न हुआ जो अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीव अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग चार गतिके जीवके ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भी ओघके समान है। इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी जीवोंमें जानना चाहिए।

---

१. ता० आ० प्रत्योः मणुस० ३ परिय०मज्झिम० इति पाठः। २. ता० आ०-प्रत्योः ओघं। सुद० जस० इति पाठः। ३ आ०प्रतौ अण्ण० उवसमपढम० दुसमय० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९९. आभिणि०-सुद०-ओधि० पढमदंडओ ओघं। सादासाद०-थिरादितिण्णियु० चदुगदि०। सेसाणं पि संजमाभिमुहाणं ओघं। मणुसगदिपंचग० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सागा० तप्पा०उक्कस्ससंकिलेसादो पडिभग्गस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण अवट्ठिदस्स। तस्सेव से काले ज० अवट्ठाणं। ज० हा० क० ? अण्ण० सागा० उक्क०संकि० मिच्छत्ताभिमु० चरिमे अणु० वट्ट० तस्सेव ज० हाणी। मणुसाउ० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० देव-णेरइ० जहण्णियाए पज्जत्तणिव्वत्तीए ज० परिय०मज्झिम० [अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी] हाइदूण हाणी एक्कद० अवट्ठाणं। देवाउ० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० ज० पज्जत्तणिव्व० ज० परिय०मज्झिम०। देवगदि०४ ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुसस्स मणुसगदिभंगो। पंचिं०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० चदुगदि० तिण्णि वि मणुसगदिभंगो। एवं ओधिदंसणि-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति। णवरि खइगे पसत्था० सत्थाणे ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सव्वसंकि० अणंतभागेण तिण्णि वि०। मणपज्जव० खविगाणं ओघं। सेसाणं ओधिभंगो। एवं संजद-सामाइ०-

५९९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलके तीनों पदोंका स्वामी चारों गतिका जीव है। शेष संयमके अभिमुख प्रकृतियोंका भी भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे प्रतिभग्न हुआ अन्यतर देव और नारकी जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख हुआ जो अन्यतर जीव अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित है वह जघन्य हानिका स्वामी है। मनुष्यायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निर्वृत्तिसे निर्वृत्तमान तथा परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर देव और नारकी अनन्तभागवृद्धिके साथ जघन्य वृद्धिका स्वामी है, अनन्तभागहानिके साथ जघन्य हानिका स्वामी है तथा इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। देवायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निर्वृत्तिसे निर्वृत्तमान और जघन्य परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य यथायोग्य तीनों पदोंका स्वामी है। देवगतिचतुष्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्यके मनुष्यगतिके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर चारों गतिका जीव तीनों ही पदोंका स्वामी है जो मनुष्यगतिके समान भङ्ग है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यक्त्वमें प्रशस्त प्रकृतियोंकी स्वस्थानमें जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर सर्वसंक्लिष्ट जीव अनन्तभाग वृद्धि, हानि और तदनन्तर अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छेदो०-परिहार०-संजदासंज०। णवरि किंचि विसेसो णादव्वो।

६००. असंजदेसु पढमदंडओ मणुसस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स। सेसं मदि०भंगो ओघो व। चक्खु० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खु० ओघं।

६०१. किण्णाए पढमदंडओ णिरयोघं। एवं विदियदंडओ। सादादिदंडओ तिगदिय०। इत्थि०-णवुंस० तिगदिय०। अरदि-सोग० णेरइगस्स सम्मादि०। चदु०-आउ० ओघं। दोगदि-चदुजा०-दोआणु०-थावरादि०४दंडओ णवुंसगभंगो। तिरिक्खगदितियं ओघं। मणुसगदिदंडओ तिगदियस्स। पंचिं०दंडओ तिगदियस्स संकिलेसं०। ओरा०-ओरा०अंगो०-उज्जो० णेरइ० मिच्छादि० सव्वसंकि०। वेउ०-वेउ०अंगो० दुगदियस्स मिच्छा० उक्क०संकि०। आदावं दुगदिय० तप्पा०संकि०। तित्थ० ओघं। णील-काऊणं किण्णभंगो। णवरि तिरिक्खगदितिय० एइंदियभंगो। पंचिंदियदंडओ णिरयभंगो। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-आदाव० ज० दुगदिय० तप्पा०संकि०। दोगदि-चदुजादि-दोआणु०-थावर०४-णवुंसग-मणुसगदिदंडओ तिगदियस्स कादव्वं।

६०२. तेउले० पढमदंडओ परिहारभंगो। विदियदंडगादिसंजमाभिमुहाणं

है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इनमें जो कुछ विशेषता है वह जान लेनी चाहिए।

६००. असंयतोंमें प्रथम दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य है। शेष भङ्ग मत्यज्ञानी जीवों और ओघके समान है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

६०१. कृष्ण लेश्यामें प्रथम दण्डकका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। इसी प्रकार दूसरे दण्डकका भङ्ग जानना चाहिए। सातावेदनीय आदि दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके तीनों पदोंका स्वामी तीनों गतिका जीव है। अरति और शोकके तीनों पदोंका स्वामी सम्यग्दृष्टि नारकी है। चारों आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। दो गति, चार जाति, दो आनुपूर्वी और स्थावर आदि चार दण्डकका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिदण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकके तीनों पदोंका स्वामी संक्लिष्ट तीनों गतिका जीव है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और उद्योतके तीनों पदोंका स्वामी सर्वसंक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि नारकी है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके तीनों पदोंका स्वामी उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त मिथ्यादृष्टि दो गतिका जीव है। आतपके तीनों पदोंका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट दो गतिका जीव है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। नील और कापोत लेश्यामें कृष्णलेश्याके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है। पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकका भंग नारकियोंके समान है। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकआंगोपांग और आतपके तीनों पदोंका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट दो गतिका जीव है। दो गति, चार जाति, दो आनुपूर्वी, स्थावर चतुष्क, नपुंसकवेददण्डक और मनुष्यगतिदण्डकके तीनों पदोंका स्वामित्व तीन गतिके जीवोंके कहना चाहिए।

६०२. पीतलेश्यामें प्रथम दण्डकका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयतोंके समान है। द्वितीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघं। साददंडओ तिगदिय०। इत्थि०-णवुंस० देव० तप्पा०विसु० तिण्णि वि। अरदि-सोग० ओघं[1]। दोगदि-दोजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तस-थावरादितिण्णियु० देवस्स। देवगदि०४ ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सव्वसं०। ओरालि० याव णिमि० त्ति सोधम्मभंगो[2]। ओरा०अंगो० देवस्स तप्पा०संकिलि०। तित्थ० देवस्स। एवं पम्माए वि। णवरि पंचिंदियदंडओ सहस्सारभंगो।

६०३. सुक्काए खविगाणं संजमाभिमुहाणं च ओघं। साददंडओ तिगदिय०। सेसाणं पि आणदभंगो। देवगदि०४ पम्मभंगो।

६०४. भवसि० ओघं। अब्भवसि० पढमदंडओ ज० क० ? अण्ण० चदुग० सव्वविसु०। सेसाणं ओघं। सासणे पढमदंडओ चदुग० सव्वविसु०। सादादिदंडओ चदुग०। पंचिं०-ओरा०दंडओ चदुग० सव्वसंकि०। तिरिक्खगदितियं सत्तमाए सव्वविसु०। मिच्छादि० मदि०भंगो। असण्णी० पढमदंडओ सव्वविसु०। सेसं ओघं। आहार० ओघं। एवं जहण्णयं समत्तं।

एवं सामित्तं समत्तं।

दण्डक आदि संयमके अभिमुख प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके तीनों ही पदोंका स्वामी तत्प्रायोग्य विशुद्ध देव है। अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है। दो गति, दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति और त्रस व स्थावर आदि तीनों युगलोंके तीनों पदोंका स्वामी देव है। देवगतिचतुष्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर सर्वसंक्लिष्ट तिर्यञ्च और मनुष्य यथायोग्य तीनों पदोंका स्वामी है। औदारिकशरीरसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका भंग सौधर्म कल्पके समान है। औदारिक आंगोपांगके तीनों पदोंका स्वामी यथायोग्य तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट देव है। तीर्थङ्करप्रकृतिका स्वामी देव है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकका भंग सहस्रार कल्पके समान है।

६०३. शुक्ललेश्यामें क्षपक और संयमके अभिमुख प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है। सातावेदनीय दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। शेष प्रकृतियोंका भी भंग आनत कल्पके समान है। देवगतिचतुष्कका भंग पद्मलेश्याके समान है।

६०४. भव्योंमें ओघके समान भंग है। अभव्योंमें प्रथम दण्डकके तीनों जघन्य पदोंका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है। सासादनसम्यक्त्वमें प्रथम दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी सर्वविशुद्ध चारों गतिका जीव है। सातावेदनीय आदि दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी चारों गतिका जीव है। पञ्चेन्द्रियजाति और औदारिकशरीरदण्डकके तीनों पदोंका स्वामी सर्व संक्लिष्ट चारों गतिका जीव है। तिर्यञ्चगतित्रिकके तीनों पदोंका स्वामी सातवीं पृथिवीका सर्व-विशुद्ध नारकी है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भंग है। असंज्ञी जीवोंमें प्रथम दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी सर्वविशुद्ध जीव है। शेष भंग ओघके समान है। आहारक जीवोंमें ओघके समान भंग है। इस प्रकार जघन्य स्वामित्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

---

१. आ० प्रतौ तिण्णि वि ओघं इति पाठः। २. आ. प्रतौ णिमि० इत्थि० सोधम्मभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पाबहुअं

६०५. अप्पाबहुगं दुवि०—जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०—णवदंसणा०—असादा०—मिच्छ०—सोलसक०—सत्तणोक०—तिरिक्ख०—एइंदि०-हुंड-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०—उप०—थावर—अथिरादिपंच०—णीचा०—पंचंत० सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी । उक्क० अवट्ठा० विसेसाधिया । उक्क० हाणी विसे० । सादा० देवग०-पंचिं०-वेउव्वि०-आहार०-तेजा०—क०—समचदु०—दोअंगो०—पसत्थ०४—देवाणु०-अगु०३—पसत्थवि०—तस०४—थिरादिछ०—णिमि०—तित्थ०—उच्चा० सव्वत्थो० उक्क० अवट्ठा० । उक्क० हाणी अणंतगु० । उक्क० वड्ढी अणंतगु० । इत्थि०-पुरिस०—चदु-आउ०—दोगदि—तिण्णिजादि—ओरालियसरीर—चदुसंठा०—ओरालि०अंगो०—छस्संघ०—दोआणु०-आदा०-अप्पसत्थ०-सुहुम[1]०—अपज्ज०—साधार०-दुस्सर० सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी । उ० हाणी अवट्ठाणं च दो वि तुल्लाणि विसेसा० । उज्जो० उक्क० हाणी अवट्ठा० दो वि तुल्लाणि थोवाणि । उ० वड्ढी अणंतगु० ।

६०६. णेरइएसु सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा उ० वड्ढी । उ० हा० अवट्ठाणं च दो वि तुल्लाणि विसे० । उज्जो० ओघं । एवं सत्तमाए । उवरिमासु छसु उज्जोवं इत्थि-भंगो । सेसा एवमेव । सव्वतिरिक्ख-सव्वअपज्ज०-सव्वदेवस्स एइंदि०-विगलिं०-पंचकायाणं ओरालियमि०—वेउ०—आहार[2]०—आहारमि०—पंचले०—अब्भव०—सासण०—

अल्पबहुत्व

६०५. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट अवस्थान विशेष अधिक है । इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है । सातावेदनीय, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आंगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट हानि अनन्तगुणी है । इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार आयु, दो गति, तीन जाति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और दुःस्वरकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं । उद्योतकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर सबसे थोड़े हैं । इनसे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है ।

६०६. नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे थोड़ी है । इससे उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं । उद्योतका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । पहलेकी छह पृथिवियोंमें उद्योतका भंग स्त्रीवेदके समान है । शेष प्रकृतियोंका भंग भी इसी प्रकार है । सब तिर्यञ्च, सब अपर्याप्त, सब देव, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाय-

१. आ० प्रतौ अप्पसत्थ०४ सुहुम० इति पाठः । २. ता० प्रतौ पंचकायाणं च । ओरालियमि० वेउ० वेउ०मि० आहार० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असण्णि० णेरइगभंगो। णवरि दोण्हं मिस्साणं आउ० ओघं। सेसाणं सव्वत्थो० उ० हाणी अवट्ठाणं च। उक्क० वड्ढी अणंतगु०। एवं वेउव्वियमि०। एदेसिं उज्जोवं जाणिदव्वं।

६०७. मणुस०३–पंचिं०–तस०२–पंचमण०-पंचवचि०–ओरा[१]०-इत्थि०-पुरिस०–णवुंस०-चक्खुदं०-सुक्क०-सण्णि० खविगाणं ओघं। सेसाणं णिरयभंगो। उज्जो० ओघं। णवरि मणुस०-[३] इत्थि०-पुरिस०वज्जेसु। कायजोगि-कोधादि०४–मदि०-सुद०-विभंग०–असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छादि०-आहारए त्ति ओघभंगो। कम्मइ० देवगदिपंचग० सव्वत्थो० वड्ढी। हाणी विसे०। सेसाणं पगदीणं सव्वत्थो० अवट्ठा०। वड्ढी अणंतगु०। हाणी विसेसाधिया। अवगद० सव्वाणं सव्वत्थो० उ० हाणी। उ० वड्ढी अणंतगु०। एवं सुहुमसं०। आभिणि०–सुद०–ओधि० मिच्छत्ताभिमुहाणं सव्वत्थो० उ० हाणी अवट्ठाणं च। उ० वड्ढी अणंतगु०। खविगाणं ओघं। एवं मणपज्जव[२]०-संज०-सामा०-छेदो०-परिहार०–संजदासंज०–ओधिदं०–सम्मा०–खइग०–वेदग०-उवसम०-सम्मामि०। णवरि खइगे अप्पसत्थ० ओघं इत्थिवेदभंगो।

एवं उक्कस्सं समत्तं।

योगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, पाँच लेश्यावाले, अभव्य, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि दो मिश्रयोगोंमें आयुका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इनके उद्योत भी जानना चाहिए।

६०७. मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, चक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले और संज्ञी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिक, स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंको छोड़कर कहना चाहिए। काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चककी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है। इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है। अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें जानना चाहिए। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्वके अभिमुख प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है। क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग ओघसे स्त्रीवेदके समान है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

---

१. आ० प्रतौ पंचमण० ओरा० इति पाठः। २. ता० प्रतौ ओघं। मणपज्ज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०८. जह० पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०—णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रदि—भय-दु०—अप्पसत्थव०४—उप०—पंचंत० सव्वत्थो० ज० हा० । ज० वड्ढी[1] अणंतगु० । सादासाद०-चदुणोक०-चदुआउ०—तिगदि-पंचजा०-पंचसरीर—छस्संठा०—तिण्णिअंगो०-छस्संघ०—पसत्थ०४—तिण्णिआणु०-अगुरु०३—आदा—उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-[णिमि०] उच्चा[2]० ज० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च तिण्णि वि तुल्लाणि । तिरिक्खगदितिगं तित्थ० सव्वत्थो० ज० हाणी । वड्ढी अवट्ठाणं च दो वि तु० अणंतगु० । एवं ओघभंगो मणुस०३—पंचिं०-तस०२—पंचमण-पंचवचि०-कायजोगि०—ओरा०-इत्थि०-पुरिस०,णवुंस०—कोधादि४—मदि०-सुद०-असंज०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा०-सण्णि-आहारए त्ति । णवरि मणुस०३—ओरा०-इत्थि०-पुरिस० तिरिक्खगदितिग० सादभंगो ।

६०९. णिरएसु थीणागिद्धि०३—मिच्छ०—अणंताणु०४—तिरिक्ख०३ ओघं । सेसाणं तिण्णि वि तुल्लाणि । एवं सत्तमाए । एवमेव छसु उवरिमासु । तिरिक्ख०३ सादभंगो । तिरिक्खेसु णिरयभंगो । अपच्चक्खाण०४ ओघं । सव्वदेव०-वेउव्वि०-वेउव्वि०-मि० णिरयभंगो । सव्वअपज्ज०-एइंदि०-विगलिं०-पंचकायाणं च तिण्णि वि तु० । ओरा०

६०८. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क,. उपघात और पाँच अन्तरायकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है । इससे जघन्य वृद्धि अनन्तगुणी है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, चार आयु, तीन गति, पाँच जाति, पाँच शरीर, छह संस्थान, तीन आंगोपांग, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल, निर्माण और उच्चगोत्रकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान तीनों ही तुल्य हैं । तिर्यञ्चगतित्रिक और तीर्थङ्करकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है । जघन्य वृद्धि व अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर उससे अनन्तगुणे हैं । इस प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिक, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग सातावेदनीयके समान है ।

६०९. नारकियोंमें स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंके तीनों ही पद तुल्य हैं । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । इसी प्रकार पहलेकी छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग सातावेदनीयके समान है । तिर्यञ्चोंमें नारकियोंके समान भंग है । अप्रत्याख्यानावरण चारका भंग ओघके समान है । सब देव, वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें नारकियोंके समान भंग है । सब अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंके तीनों ही

१ ता० प्रतौ ज० हा० । वड्ढी इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः तसादिदोण्णियु० उच्चा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मि०-आहार०-आहारमि० तिण्णि वि० तु० । कम्मइ०–अब्भव[1]०-सासण०-असण्णि०–अणाहारए त्ति णिरयभंगो ।

६१०. आभिणि०-सुद०-ओधि० पढमदंडओ ओघं । मणुस० सव्वत्थो० ज० हाणी । वड्ढी अवट्ठाणं दो वि तु० अणंतगु० । एवं सव्वसंकिलिट्ठाणं पगदीणं । एवं मणप०-संज०-सामा०–छेदो०–परिहार०-संजदासंज०-ओधिदं०–सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि० । अवगदवे०-सुहुमसं० सव्वत्थो० ज० हाणी[2] । [ज०] वड्ढी अणंतगु० । परिहार०-तेउ०-पम्म० अप्पसत्थाणं पगदीणं सव्वत्थो० ज० हाणी । वड्ढी अवट्ठाणं अणंतगु० ।

एवं पदणिक्खेवे त्ति समत्तं ।

वड्ढी समुक्कित्तणा

६११. वड्ढिबंधे त्ति तत्थ इमाणि अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति । तं जहा–समुक्कित्तणा याव अप्पाबहुगे त्ति । समुक्कित्तणा दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० सव्वपगदीणं अत्थि छवड्ढि० छहाणि० अवट्ठि० अवत्तव्वबंधगा य । एवं ओघभंगो मणुस०३–पंचिं०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरा०-आभिणि-सुद-ओधि०-मणपज्ज०-संज०-चक्खु०-

पद तुल्य हैं । औदारिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके तीनों ही पद तुल्य हैं । कार्मणकाययोगी, अभव्य, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें नारकियोंके समान भंग है ।

६१०. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है । मनुष्यगतिकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है । इससे वृद्धि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार संक्लेशसे जघन्य अनुभागबन्धको प्राप्त होनेवाली सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जघन्य हानि सबसे स्तोक है । इससे जघन्य वृद्धि अनन्तगुणी है । परिहारविशुद्धिसंयत, पीतलेश्या और पद्मलेश्यामें अप्रशस्त प्रकृतियोंकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है । इससे जघन्य वृद्धि और अवस्थान अनन्तगुणे हैं ।

इस प्रकार पदनिक्षेप समाप्त हुआ ।

वृद्धि समुत्कीर्तना

६११. वृद्धिबन्धका प्रकरण है । उसमें ये अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं । यथा—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक । समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—ओघ और आदेश । ओघसे सब प्रकृतियोंकी छह वृद्धि, छह हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं । इसी प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षु-

१. ता प्रतौ आहारमि० कम्मइ० तिण्णि वि० तु० अब्भव०. आ० प्रतौ आहारमि० कम्मइ० तिण्णि वि० । अब्भव० इति पाठः । २. ता० प्रतौ सुहुमसं० ज० (स) व्वत्थो० हा०. आ० प्रतौ सुहुमसं० सव्वत्थो० हाणी इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचक्खु०-ओधिदं०-सुक्ले०-भवसि०-सम्मा०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारए त्ति ।

६१२. णिरएसु धुविगाणं अत्थि छवड्डि० छहाणि० अवट्ठि० । सेसं ओघभंगो । णवरि पढमाए तित्थ० अवत्त० णत्थि । एवं सव्वणेरइय-पंचिं०तिरि०अपज्ज०-देवा०, तित्थ० धुवभंगो, सव्वएइंदि०-विगलिं०-पंचका०-ओरा०मि०-वेउ०-वेउ०मि०-आहार०[1]-आहारमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-विभंग०-परिहा०-संजदासंज०-असंज०-पंचले०-अब्भव०-सासण०-सम्मामि०-असण्णि-अणाहारि त्ति । ओरालि०मि०-कम्मइ[2]०-अणाहार० देवगदिपंचग० अवत्त० णत्थि १३ । वेउव्वियमि०-किण्ण०[3]-णील० तित्थय० १३ अवत्त० णत्थि ।

६१३. इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधे पंचणा०-चदुदं०-चदुसंज०-पंचंत० अत्थि० छवड्डि० छहाणि० अवट्ठि० । सेसाणं ओघं । माणे तिण्णिसंज० मायाए दोसंज० लोभे पंचणा०- चदुदंस०-पंचंत० अत्थि छवड्डि० छहाणि० अवट्ठि० । सेसं ओघं । अवगदवेदे सव्वाणं[4] अत्थि अणंतगुणवड्डि० हाणि० अवत्तव्वबंधगा य । एवं सुहुमसंप० । णवरि

दर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

६१२. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं । शेष भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि पहली पृथिवीमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्य पद नहीं है । इसी प्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और देवोंमें जानना चाहिये । मात्र देवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके समान है । तथा इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, पाँच लेश्यावाले, अभव्य, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए । मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका अवक्तव्यपद नहीं है, तेरह पद हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कृष्णलेश्या और नीललेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके तेरह पद हैं, अवक्तव्यपद नहीं है ।

६१३. स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और क्रोध कषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं । शेष भङ्ग ओघके समान है । मानकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, तीन संज्वलन और पाँच अन्तरायकी, माया कषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, दो संज्वलन और पाँच अन्तरायकी तथा लोभकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं । शेष भङ्ग ओघके समान है । अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवृद्धि, अनन्तगुणहानि और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता

---

१. ता० प्रतौ ओरा० वेउव्वियका० वेउव्विय० आहार० इति पाठः । २. आ० प्रतौ ओरालि० कम्मइ० इति पाठः । ३. आ० प्रतौ वेउव्विय० किण्ण० इति पाठः । ४. ता० प्रतौ अवगदवेदेवेद (?) सव्वाणं इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अवत्त० णत्थि । सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चदुदंस[1]०-लोभसंज०-उच्चा०-पंचंत० अत्थि छवड्ढि० छहाणि० अवट्ठि० बंधगा य ।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता

सामित्तं

६१४. सामित्ताणुगमेण दुवि०–ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण० ४–अगु–उप०–णिमि०-पंचंत० छवड्ढि० छहाणि० अवट्ठि० क० ? अण्ण० । अवत्त० क० ? अण्ण० उवसा० परिवद० मणुसस्स वा मणुसीए वा पढमसमयदेवस्स वा । एदेण कमेण भुजगारसामित्तभंगो अवसेसाणं सव्वाणं । एवं याव अणाहारए त्ति णादव्वं ।

कालो

६१५. कालाणुगमेण दुवि० । ओघे० सव्वपगदीणं पंचवड्ढि० पंचहाणिबंधगा केवचिरं कालादो होदि ? ज० ए०, उ० आवलि० असंखे०भागो । अणंतगुणवड्ढि-हाणि० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० सत्तट्ठ सम० । अवत्त० ज० [उ०] ए० । एवं याव अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

है कि इनमें अवक्तव्यपद नहीं है । सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभ संज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं । शेष भङ्ग ओघके समान है ।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

स्वामित्व

६१४. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव कौन हैं ? अन्यतर जीव बन्धक है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कौन हैं ? उपशमश्रेणिसे गिरनेवाला अन्यतर मनुष्य, मनुष्यिनी और प्रथम समयवर्ती देव अवक्तव्यपदका बन्धक है । शेष सबका इसी क्रमसे भुजगारानुगमके स्वामित्वके समान भङ्ग है । अनाहारक तक इसी प्रकार जान लेना चाहिए ।

काल

६१५. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सब प्रकृतियोंकी पाँच वृद्धि और पाँच हानिके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात-आठ समय है । अवक्तव्य-पदके बन्धक जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

---

१. आ० प्रतौ पंचणा० पंचदंस० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरं

६१६. अंतराणुगमेण दुवि० । ओघेण पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण० ४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० पंचवड्डि०-हाणिबंधंतरं केवचिरं कालादो ? ज० ए०, उ० असंखेंज्जा[1] लोगा । [अवट्टि० एसेव भंगो ।] अणंतगुणवड्डि- हाणिबंधंतरं ज० ए०, उ० अंतो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० अद्धपोंग्गल० । तित्थय०[2] पंचवड्डि-हाणि-अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि० । एवं अवत्त० । णवरि जह० अंतोमु० । अणंतगुणवड्डि-हाणि० ज० ए०, उ० अंतो० । एदेण कमेण भुजगारभंगो कादव्वो । एवं याव अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

विशेषार्थ—यहाँ जितने पद कहे हैं उन सबका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । तथा प्रारम्भकी पाँच वृद्धि और पाँच हानिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण, शेष दो वृद्धि-हानियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त, अवस्थितपदका उत्कृष्ट काल सात-आठ समय और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट काल एक समय होनेसे उक्तप्रमाण कहा है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक यथायोग्य एक जीवकी अपेक्षा काल घटित कर लेना चाहिए ।

अन्तर

६१६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्ण-चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी पाँच वृद्धि और पाँच हानिबन्धका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अवस्थितपदका यही भङ्ग है । अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानि बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तीर्थङ्कर प्रकृतिकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । इसी प्रकार अवक्तव्य बन्धका भी अन्तरकाल जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । उसी क्रमसे भुजगारप्ररूपणाके समान अन्तर-काल करना चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यह सम्भव है कि पाँच ज्ञानावरणादिकी पाँच वृद्धि और पाँच हानि एक समयके अन्तरसे हों और अनुभागबन्धके परिणामोंके अनुसार असंख्यात लोकप्रमाण कालके अन्तरसे हों, इसलिए इन वृद्धियों और हानियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है । अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका एक समय अन्तर तो स्पष्ट है पर उत्कृष्ट अन्तर जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है, उसका कारण यह है कि ये दोनों यदि नहीं होती हैं तो अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालतक ही नहीं होतीं,

---

१. ता० प्रतौ पंचंतं० । [उक्क० हाणि अवत्त० बंधतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० एग० उक्क०] असंखेज्जा, आ० प्रतौ पंचंत० उक्क० हाणी० बंधतरं केवचिरं कालादो ? ज० ए०, उ० असंखेज्जा इति पाठः ।

२. ता० आ० प्रत्योः अद्धपोग्गल: । एवं पंचवड्डि-हाणि अवट्ठि० एसेव भंगो तित्थ० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणाजीवेहि भंगविचओ

६१७. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुवि० । ओघेण पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालिय०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत०छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठि० णियमा अत्थि । सिया एदे य अवत्तगे य । सिया एदे य अवत्तव्वगा य । तिण्णि आउ० सव्वपदा भयणिज्जा । वेउव्वियछ०-आहारदुगं तित्थय०[1] अणंतगुणवड्ढि-हाणि० णिय० अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वपदा भयणिज्जा । एवं भुजगारभंगो कादव्वो । एवं अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

भागाभागो

६१८. भागाभागाणुगमेण दुवि० । ओघेण पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० पंचवड्ढि-हाणि-अवट्ठि०

अन्तर्मुहूर्तकालके बाद ये नियमसे होती हैं। इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिसे उतरते समय या उतरते समय मर कर देव होनेपर होता है। किन्तु यहाँ जघन्य अन्तर प्राप्त करना है, इसलिए अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे दो बार उपशमश्रेणि पर आरोहण कराके इनका बन्ध करानेसे जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त ले आये। तथा उपशमश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण होनेसे इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन-प्रमाण कहा है। इनके अवस्थितपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर पाँच वृद्धियों और पाँच-हानियोंके ही समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक तेतीस सागर होनेसे यहाँ इसकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय

६१७. नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये होते हैं और एक अवक्तव्यपदका बन्धक जीव होता है। कदाचित् ये होते हैं और अनेक अवक्तव्यपदके बन्धक जीव होते हैं। तीन आयुओंके सब पद भजनीय हैं। वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिकी अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। शेष सब प्रकृतियोंके सब पद भजनीय हैं। इस प्रकार भुजगारके समान भङ्ग करना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

भागाभाग

६१८. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ?

---

१. ता० प्रतौ भयणिज्जा । आहार० २ तित्थ० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वजीवाणं के० ? असंखें० । अणंतगुणवड्ढि० दुभागो सादिरे० । अणंतगुणहा० दुभागो देसू० । अवत्त० अणंतभागो । सेसाणं पगदीणं एसेव भंगो । णवरि अवत्तव्व० असंखें०भा० । आहार०२ पंचवड्ढि[1]-पंचहाणि-अवट्ठि०-अवत्त० संखेंज्ज० । अणंतगुणवड्ढि-हाणी० णाणा०भंगो । एवं भुजगारभंगो कादव्वो । एवं याव अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

परिमाणं

६१९. परिमाणं दुवि० । ओघेण पंचणा०-छदंसणा०-अट्ठक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठि० केंत्तिया ? अणंता । अवत्त० केंत्तिया ? संखेंज्जा । थीणगि०३-मिच्छ०-अट्ठक०-ओरालि० एवं चेव । णवरि अवत्त० असंखें० । तिण्णिआउ०-वेउव्वियछ० छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठि०-अवत्त० केंत्तिया ? असंखें० । आहार०२ सव्वपदा के० ? संखेंज्जा । तित्थय० तेरसपदा के० ? असंखेंज्जा । अवत्त० कें० ? संखें० । सेसाणं सादादीणं चोंद्दसपदा[2] केत्ति० ? अणंता । एवं भुजगारभंगो कादव्वो । एवं याव[3] अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव सब जीवोंके साधिक द्वितीय भाग-प्रमाण हैं । अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव सब जीवोंके कुछ कम द्वितीय भागप्रमाण हैं । अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं । शेष प्रकृतियोंका यही भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । आहारकद्विककी पाँच वृद्धि, पाँच हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सब जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं । अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । इस प्रकार भुजगारभंगके समान करना चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए ।

परिमाण

६१९. परिमाण दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, आठ कषाय और औदारिकशरीरके बन्धक जीवोंका यही भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं । तीन आयु और वैक्रियिक छहकी छह वृद्धि, छह हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तीर्थङ्करप्रकृतिके तेरह पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंके चौदह पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इस प्रकार भुजगारभङ्गके समान करना चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

---

१. आ० प्रतौ आहार० पंचवड्ढि इति पाठः । २. ता० प्रतौ सेसाणं चोद्दसपदा इति पाठः । ३. ता० प्रतौ भुजगारभंगो याव इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेत्तं

६२०. खेत्ताणुगमेण दुवि० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण० ४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । अवत्त० केव० ? लो० असंखे० । तिण्णिआउ०-वेउव्विय-छ०-आहारदुग-तित्थ० छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठि०-अवत्त० केव० ? लो० असंखे० । सेसाणं चोद्दसपदा के० ? सव्वलोगे । एवं भुजगारभंगो याव अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

फोसणं

६२१. फोसणाणुगमेण दुवि० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठि० केवडि खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । अवत्त० के० खेत्तं फोसिदं ? लो० असंखे० । थीणगिद्धि०३-अणंताणु०४-तेरसपदा सव्वलो० । अवत्त० अट्ठचो० । मिच्छत्त० तेरसपदा णाणा०-भंगो । अवत्त० अट्ठ-बारह० । अपच्चक्खाण० ४ तेरसपदा सव्वलो० अवत्त० छचो० । दोआउ०-आहारदुगं चोद्दसपदा लोग० असंखे० । मणुसाउ० चोद्दसपदा

क्षेत्र

६२०. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । तीन आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्करकी छह वृद्धि, छह हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । शेष प्रकृतियोंके चौदह पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोकप्रमाण क्षेत्र है । इस प्रकार भुजगारभङ्गके समान अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

स्पर्शन

६२१. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्यानगृद्धित्रिक और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । मिथ्यात्वके तेरह पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अप्रत्याख्यानावरण चारके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो आयु और आहारकद्विकके चौदह पदोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठचों० सव्वलो० । दोगदि-दोआणु० तेरसपदा छच्चों० । अवत्त० खेत्त० । ओरा० तेरसपदा णाणा०भंगो । अवत्त० बारह० । वेउव्वि०-वेउ०अंगो० तेरसपदा बारह० । अवत्त० खेत्त० । तित्थ० तेरसपदा० अट्ठचों० । अवत्त० खेत्तभंगो । सेसाणं सादादीणं चोद्दसपदा सव्वलो० । एवं भुजगारभंगो याव अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके चौदह पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो गति और दो आनुपूर्वीके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिकशरीरके तेरह पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंके चौदह पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक भुजगार भङ्गके समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिके तेरह पदोंका बन्ध एकेन्द्रियादि सब जीव करते हैं। इसलिए उक्त पदोंकी अपेक्षा सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धिदण्डक, मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण चार और औदारिकशरीरकी अपेक्षा उक्त तेरह पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए। पाँच ज्ञानावरणादिका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें गिरते समय होता है, तथा प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्यपद विरतसे विरताविरत या अविरत होते समय होता है, इसलिए इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। चारों गतियोंमें सम्यग्दृष्टि जीवोंके सासादन गुणस्थानके प्राप्त होनेपर स्त्यानगृद्धि आदिका अवक्तव्यपद होता है। यतः यह स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण है, क्योंकि इसमें देवोंके विहारवत्स्वस्थान स्पर्शनकी प्रधानता है। इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। विरत या विरताविरत जीव मर कर उपपादके समय भी अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्य पद करते हैं और इनका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण है, अतः उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। सासादन जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण है और इनका मारणान्तिक समुद्घातके समय मिथ्यात्वको प्राप्त होकर मिथ्यात्वका अवक्तव्यबन्ध सम्भव है, अतः मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। नरकायु और देवायुका बन्ध स्वस्थानमें असंज्ञी आदि और आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्तसंयत जीव करते हैं, अतः इन प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। मनुष्यायुका बन्ध स्वस्थानमें एकेन्द्रियादि जीव और विहारवत्स्वस्थानमें देव करते हैं, इसलिए इसके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण कहा है। मात्र अग्निकायिक और वायुकायिक जीव मनुष्यायुका बन्ध नहीं करते, इतना विशेष जानना चाहिए। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीव भी बन्ध करते हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालो

६२२. कालाणुगमेण दुवि० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठिदबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । अवत्त० ज० ए०, उ० संखेंज० । थीणगि०३-मिच्छ०-अट्ठक०-ओरा० तेरसपदा सव्वद्धा । अवत्त० ज० ए०, उ० आवलि० असंखें० । सादादिदंडयस्स चोद्दसपदा सव्वद्धा । तिण्णिआउ० पंचवड्ढि-पंचहाणि-अवट्ठि०-अवत्त० ज० ए०, उ० आवलि० असंखें० । अणंतगुणवड्ढि-हाणि० ज० ए०, उ० पलि० असं० । वेउव्वियछ० बारसपदा ज० ए०, उ० आवलि० असं० । अणंतगुणवड्ढि-

---

अतः इन प्रकृतियोंके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है । मात्र ऐसी अवस्थामें इनका अवक्तव्यबन्ध नहीं होता, अतः इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके देवों और नारकियोंमें उत्पन्न होनेपर प्रथम समयमें औदारिकशरीरका अवक्तव्यबन्ध होता है और यह स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण होनेसे इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है । नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके वैक्रियिकद्विकका नियमसे बन्ध होता है, अतः इनके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है । मात्र ऐसे समयमें इनका अवक्तव्यबन्ध नहीं होता, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । स्वस्थानविहारके समय देवोंके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध सम्भव है, अतः इसके तेरह पदोंकी मुख्यतासे स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है । तथा इसका अवक्तव्यपद जो दूसरे और तीसरे नरकमें उत्पन्न होकर इसका बन्ध करने लगते हैं उनके, या उपशमश्रेणिसे गिरते समय या ऐसे मनुष्योंके इसके बन्धके समय मर कर देव होनेपर होता है । यतः ऐसे जीव संख्यात हैं, अतः इसके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंके चौदह पदोंका बन्ध एकेन्द्रिय आदि सब जीव करते हैं, अतः इन प्रकृतियोंके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है । शेष कथन भुजगार अनुयोगद्वारको लक्ष्यमें रखकर घटित कर लेना चाहिए ।

काल

६२२. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, आठ कषाय और औदारिकशरीरके तेरह पदोंके बन्धक जीवका सब काल है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सातावेदनीय आदि दण्डकके चौदह पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । तीन आयुओंकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । वैक्रियिक छहके बारह पदोंके बन्धक जीवोंका जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाणि० सव्वद्धा। एवं तित्थय०। णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० संखेंज्ज०। आहार० २ पंचवड्ढि-पंचहा० ज० ए०, उ० आवलि० असंखें०। अणंतगुणवड्ढि-हाणि० सव्वद्धा। अवट्ठि०-अवत्त० ज० ए०, उ० संखेंज्ज०। एवं भुजगारभंगो याव अणाहारए त्ति णेदव्वं।

काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार तीर्थङ्करकी अपेक्षासे भी काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। आहारकद्विककी पाँच वृद्धि और पाँच हानिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार भुजगारके समान अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका एकेन्द्रियादि सब जीव तेरह पदोंके साथ बन्ध करते हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा सर्वदा काल कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका काल सर्वदा कहा है, वहाँ भी यही समझना चाहिए कि उन प्रकृतियोंके विवक्षित पदोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वदा बन्ध होता रहता है। अतः यहाँ इस कालको छोड़कर शेष कालका खुलासा करते हैं—पाँच ज्ञानावरणादिका अवक्तव्यबन्ध उपशमश्रेणिसे गिरते समय होता है और प्रत्याख्यानावरण चारका अवक्तव्यबन्ध विरतसे विरताविरत या अविरत होते समय होता है। ऐसे जीव कमसे कम एक समय तक या लगातार संख्यात समय तक ही यह क्रिया करते हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। स्त्यानगृद्धि आदि आठ प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद गुणस्थान प्रतिपन्न जीव नीचे उतरते समय यथायोग्य करते हैं और औदारिकशरीरका अवक्तव्यपद असंज्ञी आदि जीव करते हैं। ये असंख्यात होते हैं, इसलिए यह भी सम्भव है कि इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद एक समय तक करें और दूसरे समयमें कोई भी जीव अवक्तव्यपद करनेवाले न हों और यह भी सम्भव है कि असंख्यात समय तक क्रमसे नाना जीव इस पदको प्राप्त होते रहें। यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। किन्तु अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है और क्रमसे व्यवधान रहित होकर अन्तर्मुहूर्तके बाद निरन्तर नाना जीव इन पदोंको असंख्यात बार प्राप्त हो सकते हैं, इसलिए इन दोनों पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वैक्रियिकछहके बारह पदोंका जघन्य काल एक समय तो स्पष्ट ही है, क्योंकि प्रत्येक पद एक समय तक होकर दूसरे समयमें न हो। किन्तु इनका उत्कृष्ट काल जो आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है सो उसका कारण यह है कि अवक्तव्यपदका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल तो एक ही समय है और अवस्थितपदका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल सात-आठ समय है, इसलिए लगातार असंख्यात समय तक भी इन पदोंके होने पर उस सब कालका जोड़ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होगा, परन्तु शेष दस पदोंमें से प्रत्येक पदका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है और यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा भी यह काल उतना ही कहा है सो इसका भाव यही है कि आवलिके असंख्यातवें भागको भी असंख्यातसे गुणा करने पर जो उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है वह भी आवलिके असंख्यातवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरं

६२३. अंतराणुगमेण दुवि० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठिदबंधंतरं णत्थि अंतरं । अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुधत्तं० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ तेरसपदा० णत्थि अंतरं । [अवत्त०] ज० ए०, उ० सत्तरादिंदियाणि । सादादीणं चोद्दसपदा० णत्थि अंतरं । अपचक्खाण०४ तेरसपदा णत्थि अंतरं । अवत्त० ज० ए०, उ० चोद्दसरादिंदियाणि । एवं पच्चक्खाण०४ । णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० पण्णारसरादिंदियाणि । तिण्णि आउ० पंचवड्ढि-पंचहाणि-अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा । अणंतगुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० ज० ए०, उ० चदुवीसं मुहुत्तं० । वेउव्वियछ०-आहार०२ पंचवड्ढि-पंचहाणि-अवट्ठि० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा । अणंतगुण-

भागप्रमाण ही है । इसीसे इन पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका सत्र पदोंका वैक्रियिकषट्कके समान होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । मात्र इसका अवक्तव्यपद करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं, अतः इसके अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । आहारकद्विककी पाँच वृद्धि और पाँच हानि लगातार संख्यात बार ही सम्भव हैं, इसलिए इन पदोंका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्योंकि एक आवलिके असंख्यातवें भागको संख्यातसे गुणित करने पर भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही काल उपलब्ध होता है । इनका जघन्य काल एक समय है यह स्पष्ट ही है । तथा इनका अवक्तव्य और अवस्थित पद अधिकसे अधिक संख्यात बार होगा, इसलिए इन दोनों पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । इसी प्रकार भुजगार अनुयोगद्वारको ध्यानमें रखकर मार्गणाओंमें भी यह काल समझ लेना चाहिए ।

अन्तर

६२३. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है । स्त्यानगृद्धि तीन मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके तेरह पदोंका अन्तरकाल नहीं है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात है । सातावेदनीय आदिके चौदह पदोंका अन्तरकाल नहीं है । 'अप्रत्याख्यानावरण चारके तेरह पदोंका अन्तरकाल नहीं है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन रात है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण चारके सब पदोंका अन्तरकाल जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन रात है । तीन आयुओंकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अनन्तगुणवृद्धि, अनन्तगुणहानि और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त है । वैक्रियिक छह और आहारिकद्विककी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वड्डि-हाणि० णत्थि अंतरं। अवत्त० ज० ए०, उ० अंतो०। एवं तित्थय०। णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुध०। एवं भुजगारभंगो याव अणाहारए त्ति णेदव्वं।

अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंका अन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्वप्रमाण है। इसी प्रकार भुजगारके समान अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका अन्तर काल नहीं कहा है। इसका भाव इतना ही है कि उन प्रकृतियोंके उन पदोंके बन्धक जीव सर्वदा उपलब्ध होते हैं। तथा जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय कहा है उसका भाव यह है कि उन प्रकृतियोंके उन पदोंका एक समयके अन्तरसे भी बन्ध सम्भव है। मात्र विचार उन प्रकृतियोंके उन पदोंके उत्कृष्ट अन्तरका करना है जो अलग-अलग कहा है। उपशमश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा है। उपशमसम्यक्त्वका उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात है, इसलिए स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी चारके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात कहा है। तात्पर्य यह है कि कदाचित् सात दिन-रात तक कोई भी तीसरे आदि गुणस्थानवाला जीव सासादन और मिथ्यात्व गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता, इसलिए यह अन्तर बन जाता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके साथ विरताविरत गुणस्थानको प्राप्त न होनेका अन्तर चौदह दिन-रात और विरत अवस्थाको प्राप्त न होने का उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिनरात है। इसके अनुसार कोई विरताविरत अविरत अवस्थाको चौदह दिनरात तक और कोई विरत विरताविरत अवस्थाको पन्द्रह दिनरात तक नहीं प्राप्त होता, यह सिद्ध होता है; क्योंकि आयके अनुसार ही व्यय होता है—ऐसा नियम है। अतः अप्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिनरात और प्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिनरात कहा है। नरकायु, मनुष्यायु और देवायुकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर परिणामोंको ध्यानमें रख कर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा इन गतियोंमें यदि कोई उत्पन्न न हो तो अधिकसे अधिक चौबीस मुहूर्तका अन्तर पड़ता है। तदनुसार इन आयुओंका बन्ध भी इतने काल तक नहीं होता, इसलिए इनकी अनन्तगुणवृद्धि, अनन्तगुणहानि और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात कहा है। वैक्रियिक छह और आहारकद्विककी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर भी बन्धपरिणामोंके अनुसार असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। परन्तु अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे कोई न कोई जीव इनका अवश्य ही बन्ध प्रारम्भ करता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कुल विचार उक्त प्रकृतियोंके ही समान है। मात्र इसके अवक्तव्यपदके उत्कृष्ट अन्तरमें अन्तर है। बात यह है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यबन्ध इतने प्रकारसे प्राप्त होता है—कोई सम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ करे, उपशमश्रेणि पर आरोहण करनेवाला जीव उतरते समय या मर कर देव होकर पुनः बन्ध प्रारम्भ करे और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला अविरत-सम्यग्दृष्टि मनुष्य मिथ्यादृष्टि होकर व मर कर दूसरे व तीसरे नरकमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तमें सम्यग्दृष्टि हो, पुनः बन्ध प्रारम्भ करे। इन सबका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होनेसे इसके अवक्तव्यपद का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावो

६२४. भावाणुगमेण दुवि० । ओघे० सव्वपगदीणं सव्वपदाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

अप्पाबहुअं

६२५. अप्पाबहुगं दुवि० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४—अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० सव्वत्थो० अवत्त० । अवट्ठि० अणंत० । अणंतभागवड्ढि-हा० दो वि० तु० असं०गु० । असंखेंज्जभागवड्ढि-हा० दो वि तु० असं०गु० । संखेंज्जभागवड्ढि—हाणि० दो वि० तु० असं०गु० । संखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० दो वि तु० असं०गु० । असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० दो वि तु० असंखें०गु० । अणंतगुणहाणि० असं०गु० । अणंतगुणवड्ढी विसे० । एवं तित्थय० । णवरि अवट्ठि० असं०गु० । आहार०२ सव्वत्थो० अवट्ठि० । अणंतभागवड्ढि-हाणि० दो वि तु० संखेंज्जगु० । असंखेंज्जभागवड्ढि-हाणि० दो वि तु० संखें०-गु० । संखेंज्जभागवड्ढि-हाणि० दो वि तु० संखेंज्जगु० । संखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० दो वि तु० संखें०गु० । असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० दो वि तु० संखेंज्जगु० ।

भाव

६२४. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ व आदेश । ओघसे सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका कौनसा भाव है ? ओदयिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

अल्पबहुत्व

६२५. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अवस्थित पदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिकी अपेक्षासे अल्पबहुत्व जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि यहाँ पर अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । आहारकद्विकके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यात-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० संखेज्जगु० । अणंतगुणहा० संखेज्जगु० । अणंतगुणवड्ढी विसे० । सेसाणं सादादीणं सव्वत्थो० अवट्ठि० । अणंतभागवड्ढि-हा० दो वि० तु० असं०गु० । असंखेज्जभागवड्ढि-हा० दो वि तु० असं०गु० । संखेज्जभागवड्ढि-हाणि०दो वि तु० असं०-गु० । संखेज्जगुणवड्ढि-हा० दो वि तु० असं०गु० । असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणि० दो वि तु० असं०गु० । अवत्त० असं०गु० । अणंतगुणहा[1]० असं०गु० । अणंत-गुणवड्ढी० विसे० । णेरइ० धुविगाणं सव्वत्थो० अवट्ठि० । उवरि मूलोघं । [थीण-गिद्धिदंडओ] तित्थ०[2] सव्वत्थो० अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । सेसाणं ओघं । एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि सत्तमाए दोगदि-दोआणु०-दोगो० थीणगिद्धिभंगो एदेण कमेण भुजगारभंगो याव अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

एवं वड्ढिबंधे त्ति समत्तमणियोगद्दाराणि ।

अज्झवसाणसमुदाहारो

६२६. अज्झवसाणसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—पगदि-समुदाहारो ट्ठिदिसमुदाहारो तिव्वमंददा त्ति ।

गुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष सातावेदनीय आदिके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुण-हानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक है। नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थित-पदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। आगे मूलोघके समान भङ्ग है। स्त्यानगृद्धिदण्डक और तीर्थङ्करप्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक है। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे शेष पदों व शेष प्रकृतियोंके सब पदोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें दो गति, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है। इसी क्रमसे अनाहारक मार्गणा तक भुजगार भङ्गके समान जानना चाहिए।

इस प्रकार वृद्धिबन्ध अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

अध्यवसानसमुदाहार

६२६. अध्यवसानसमुदाहारमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—प्रकृतिसमुदाहार, स्थिति-समुदाहार और तीव्रमन्दता।

१. आ०प्रतौ संखेज्जगुणवड्ढि-हा० दो वि तु० असं० गु० । अणंतगुणहा० इति पाठः । २. ता० प्रतौ अवट्ठि० । उवरि मूलोघं ।......तित्थ०, आ० प्रतौ अवट्ठि० । मूलोघं ।......तित्थ० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयडिसमुदाहारो पमाणाणुगमो

६२७. पयदिसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति[1]—पमाणाणुगमो अप्पाबहुगे त्ति। पमाणाणुगमेण पंचणाणावरणीयाणं केवडियाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि? असंखेज्जा लोगा अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि। एवं[2] सव्वपगदीणं। एवं याव अणाहारए त्ति णेदव्वं। णवरि अवगद०-सुहुमसंप०एगेगं परिणामट्ठाणं।

एवं पमाणाणुगमो समत्तो

अप्पाबहुअं

६२८. अप्पाबहुगं दुवि०-सत्थाणअप्पाबहुगं चेव परत्थाणप्पाबहुगं चेव। सत्थाणप्पाबहुगे पगदं। दुवि०। ओघे० सव्वबहूणि केवलणाणावरणीयस्स अणुभाणगबंधज्झवसाणट्ठाणाणि। आभिणि० अणुभागबंध० असंखेज्जगुणहीणाणि। सुदणाणा० अणुभागबंध० असं०गुणही०। ओधिणाणा० अणुभा० असं०गु०ही०। मणपज्ज[3]० अणुभागबंध० असं०गुणही०।

६२९. सव्वबहूणि केवलदंस० अणुभागबंध०। चक्खु० अणुभागबंध० असं०-गुणही०। अचक्खु० अणुभा० असं०गुणही०। ओधिदं० अणुभागबंध० असं०गुणही०। थीणगिद्धि० असं०गुणही०। णिद्दाणिद्दा० अणुभा० असं०गुणही०। पयलापयला०

प्रकृतिसमुदाहार प्रमाणानुगम

६२७. प्रकृतिसमुदाहारमें ये दो अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—प्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व। प्रमाणानुगमसे पाँच ज्ञानावरणीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान कितने हैं? असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान हैं। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें एव एक परिणामस्थान होता है।

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्व

६२८. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्वस्थान अल्पबहुत्व और परस्थान अल्पबहुत्व। स्वस्थान अल्पबहुत्वका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे केवलज्ञानावरणीयके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान सबसे बहुत हैं। इनसे आभिनिबोधिकज्ञानावरणके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे श्रतज्ञानावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं।

६२९. केवलदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे चक्षुदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अचक्षुदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्त्यानगृद्धिके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्रानिद्राके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन

१. ता० प्रतौ इमाणि दव्वाणि भवंति इति पाठः। २. आ० प्रतौ केवडियाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि? एवं इति पाठः। ३. आ. प्रतौ सुदणाणा० अणुभागबंध० असं०गुणही०। मणपज्ज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० असं०गुणही० । णिद्दा० असं०गुणही० । पयला० असं०गु०ही ।

६३०. सव्वबहूणि[1] सादस्स अणुभागबंध० । असादा० अणुभा० असं०गुणही० ।

६३१. सव्वबहूणि मिच्छ० अणुभागबं० । अणंताणुबं०लोभे अणुभा० असं०-गुणही० । माया० विसे० । कोधे विसे० । माणे विसे० । संजलणलोभे असं०गुणही० । माया० विसे० । कोधे विसे० । माणे विसे० । पचक्खाण०लोभे अणु० असं०-गुणही० । माया० विसे० । कोधे विसे० । माणे विसे० । अपचक्खाणलोभे अणु० असं०गुणही० । माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे विसे० । णवुंस० असं०गु० । अरदि० असंखें०गु० । सोग० असं०गु० । भय० असं०गु० । दुगुं० असं०गु० । इत्थि० असं०गु० । पुरिस० असं०गु० । रदि० असं०गु० । हस्स० असं०गु० ।

हैं । इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे निद्राके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं ।

६३०. सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे असातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं ।

६३१. मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान सबसे बहुत हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी मायामें विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी मानमें विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलन लोभमें अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे संज्वलनमायामें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलन क्रोधमें अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलनमानमें अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण लोभमें अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरणमानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे नपुंसकवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अरतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे शोकके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे भयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे जुगुप्साके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे स्त्रीवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे पुरुषवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे रतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है । इनसे हास्यके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है ।

---

१. आ. प्रतौ णिद्दा० असं०गुणही० । सव्वबहूणि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३२. सव्वबहूणि देवाउ० अणुभाग० । णिरयाउ० अणुभा० असं०गुणही० । मणुसाउ० असं०गुणही० । तिरिक्खाउ० असं०गुणही० ।

६३३. सव्वबहूणि देवग० अणुभा० । मणुस० असं०गुणही० । णिरय० असं०-गुणही० । तिरिक्खग० असं०गुणही० । सव्वबहूणि पंचिंदि० अणुभा० । एइंदि० असं०गुणही० । बीइंदि० असं०गुणही० । तीइंदि० असं०गुणही० । चदुरिं० असं०-गुणही० । सव्वबहूणि कम्मइ० अणुभा० । तेजा० असं०गुणही० । आहार० असं० गुणही० । वेउव्वि० असं०गुणही० । ओरा० असं०गुणही० । सव्वबहूणि समचदु० अणुभा० । हुंड० असं०गुणही० । णग्गोद० असं०गुणही० । सादि[1]० असं०गुणही० । खुज्ज० असं०गुणही० । वामण० असं०गुणही० । सव्वबहूणि आहार०अंगो० अणुभा० । वेउव्वि०अंगो० असं०गुणही० । [ओरालिय०अंगो० असं०गु०ही० ।] संघडणाणं संठाणभंगो । सव्वबहूणि पसत्थवण्ण०४ अणुभा० । अप्पसत्थव०४ असं०-

---

६३२. देवायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे नरकायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यञ्चायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं ।

६३३. देवगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे मनुष्यगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे नरकगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यञ्चगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । पंचेन्द्रियजातिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे एकेन्द्रियजातिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे द्वीन्द्रिय जातिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे त्रीन्द्रियजातिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे चतुरिन्द्रियजातिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे तैजसशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे आहारकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे औदारिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । समचतुरस्रसंस्थानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे हुण्डसंस्थानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे स्वातिसंस्थानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे कुब्जक संस्थानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे वामन संस्थानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । आहारक आङ्गोपाङ्गके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे औदारिक आङ्गोपाङ्गके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । संहननोंका भङ्ग संस्थानोंके समान है । प्रशस्त वर्णचतुष्कके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे अप्रशस्त वर्णचतुष्कके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं ।

---

१. ता. प्रतौ सादा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणही० । गदिभंगो आणुपुव्वी । एत्तो सव्वयुगलाणं सव्वबहूणि पसत्थाणं अणुभा० । तप्पडिपक्खाणं अणुभा० असं०गुणही० ।

६३४. सव्वबहूणि विरियंतरा० अणुभा० । हेट्ठा० दाण० असं०गुणही[1]० । एवं ओघभंगो–पंचिं०-तस०२–पंचमण०-पंचवचि०–कायजोगि-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०–कोधादि०४–मदि०-सुद०-विभंग०–असंज०–चक्खु०–अचक्खु०–तिण्णिले०–भवसि०–अब्भवसि०-मिच्छा०-सण्णि-आहारए त्ति ।

६३५. णिरएसु यत्तियाओ पगदीओ अत्थि तासिं मूलोघं । एवं सत्तसु पुढवीसु० । तिरिक्खेसु सव्वबहूणि णिरयाउ० अणुभा० । देवाउ० असं०गुणही० । मणुसाउ० असं०गुणही० । तिरिक्खाउ० असं०गुणही० । सव्वबहूणि देवगदि० अणुभा० । णिरयग० असं०गुणही० । तिरिक्ख० असं०गुणही० । मणुसग० असं०-गुणही० । सेसाणं मूलोघं । एवं सव्वतिरिक्खाणं सव्वअपज्ज०-एइंदि०-विगलिं० पंचकायाणं च । मणुस०३ गदीओ तिरिक्खगदिभंगो । सेसं मूलोघं । देवाणं मूलोघं । ओरालि० मणुसभंगो । ओरा०मि० तिरिक्खगदिभंगो । वेउ०-वेउ०मि० देवगदि-भंगो । आहार०-आहार०मि० सव्वट्ठभंगो । कम्मइ० ओरालि०मिस्सभंगो । एवं

चार आनुपूर्वियोंका भङ्ग चार गतियोंके समान है । सब युगलोंमें सब प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागबन्धाध्यवसान-स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे उनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं ।

६३४. वीर्यान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । पीछे दानान्तराय तक प्रतिलोम क्रमसे प्रत्येकके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन असंख्यातगुणे हीन हैं । इस प्रकार ओघके समान पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

६३५. नारकियोंमें जितनी प्रकृतियाँ हैं उनका भङ्ग मूलोघके समान है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए । तिर्यञ्चोंमें नरकायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । उनसे देवायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । उनसे मनुष्यायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । उनसे तिर्यञ्चायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । देवगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे नरकगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यञ्चगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है । इसी प्रकार सब तिर्यञ्च, सब अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए । मनुष्यत्रिकमें चार गतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है । तथा शेष भङ्ग मूलोघके समान है । देवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है । औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है । वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिके समान भङ्ग है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाय-

---

१. ता. आ. प्रत्योः हेट्ठा हुंड० असं०गुणही० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणाहारए त्ति । अवगद० ओघं । एवं सुहुमसंप० । आभिणि-सुद-ओधि०-मणपज्ज०-संज०-सामा०-छेदो०-ओधिदं०-सुक्क०-सम्मा०-खइग०-उवसम० ओघं । णवरि अप्पप्पणो पगदीओ णादव्वाओ । परिहार०-संजदासंज०-वेदग० सव्वट्ठभंगो ।

६३६. णील-काऊणं सव्वबहूणि देवग० । मणुसग० असं०गुणही० । णिरयग० असं०गुणहीणाणि । [तिरिक्खग० । असं०गु०] । एवं आणु० । तेउले० देवभंगो । एवं पम्माए वि । मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि० सव्वपयडि-अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि तिरिक्खगदिभंगो[1] । सासणे णिरयभंगो । सम्मामि० वेदग०भंगो । एवं सव्वपगदीणं याव अणाहारए त्ति णेदव्वं । चदुवीसमणियोगद्दाराणि अप्पाबहुगेण साधेदूण कादव्वं । णवरि जम्हि अणंतगुणहीणाणि तम्हि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणहीणाणि कादव्वाणि । एदेण बीजेण सत्थाणप्पाबहुगं । एवं अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

एवं सत्थाणप्पाबहुगं समत्तं ।

६३७. परत्थाणप्पाबहुगं पगदं । दुवि० । ओघेण एत्तो चदुसट्ठिपडिगो दंडगो—

योगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है । कार्मणकाययोगी जीवोंमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए । अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए । परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है ।

६३६. नील और कापोतलेश्यामें देवगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे मनुष्यगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे नरकगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यञ्चगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इसी प्रकार आनुपूर्वियोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व जानना चाहिए । पीतलेश्यामें देवोंके समान भङ्ग है । इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए । मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तिर्यञ्चगतिके समान है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान भङ्ग है । इसी प्रकार सब प्रकृतियोंका अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए । चौबीस अनुयोगद्वार अल्पबहुत्वके अनुसार साध कर करने चाहिए । इतनी विशेषता है कि जहाँ पर अनन्तगुणे हीन हैं, वहाँ पर अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन करने चाहिए । इस बीजसे स्वस्थान अल्पबहुत्व है । इस प्रकार अनाहारक तक जानना चाहिए ।

इस प्रकार स्वस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

६३७. परस्थान अल्पबहुत्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—

१. ता. प्रतौ असण्णि०·········णि तिरिक्खगदिभंगो, आ. प्रतौ असण्णि०·········तिरिक्खगदिभंगो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वबहूणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि साद० । जस०-उच्चा० अणुभागबंध० असं०-गुणहीणाणि । देवगदि० अणुभा० असं०गुणही० । कम्म० असं०गुणही० । तेजा० असं०गुणही० । आहार० असं०गुणही० । वेउव्वि० असं०गुणही० । मणुस० असं०-गुणही० । ओरा० असं०गु० । मिच्छ० असं०गु० । केवलणा०-केवलदं०-विरियंत० तिण्णि वि तु० असं०गु० । असादा० विसेसहीणाणि । अणंताणुबं०लोभे असं०गु० । माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । संजलणलोभे० असं०गु० । माया० विसे० । कोधे विसे० । माणे० विसे० । पच्चक्खाण०लोभे० असं०गु० । माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । अपच्चक्खाणलोभे० असं०गु० । माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । आभिणि०-परिभो० दो वि तु० असं०गु० । चक्खु० असं०गु० । सुद०-अचक्खु०-भोगंत० तिण्णि वि तु० असं०गु० । ओधिणा०

ओघ और आदेश । ओघसे यहाँ चौंसठ पदिक दण्डक है । यथा—सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इससे यशकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे देवगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तैजसशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे आहारकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यगतिके अनुभागबन्ध्यावसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे औदारिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही प्रकृतियोंके परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे असातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलन लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे संज्वलन मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलन क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलन मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागबन्धाध्ययसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे चक्षुदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओधिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तु० असं०गु० । मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० असं०-गु० । थीणगि० विसे० । णवुंस० असं०गु० । इत्थि० असं०गु० । पुरिस० असं०-गु० । अरदि० असं०गु० । सोग० असं०गु० । भय० असं०गु० । दुगुं० असं०गु० । णिद्दाणिद्दा० असं०गु० । पयलापयला० असं०गु० । णिद्दा० असं०गु० । पयला० असं०गु० । णीचा० असं०गु० । अजस० विसेसही० । णिरयग० असं०गु० । तिरिक्खग० असं०गु० । रदि० असं०गु० । हस्स० असं०गु० । देवाउ० असं०गु० । णिरयाउ० असं०गु० । मणुसाउ० असं०गु० । तिरिक्खाउ० असं०गु० । एवं ओघभंगो पंचिं०-तस०२—पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४—चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि-आहारए त्ति ।

६३८. आदेसेण णिरयगदीए सव्वबहूणि साद० । जस०- उच्चा० असं०गु० । मणुस० असं०गु० । कम्म० असं०गु० । तेजा० असं०गु० । ओरा० असं०गु० ।

वरण और लाभान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे स्त्यानगृद्धिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे नपुंसकवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे स्त्रीवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे पुरुषवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अरतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे शोकके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे भयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे जुगुप्साके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे निद्रानिद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे निद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे नीचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे नरकगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यञ्चगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे रतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे हास्यके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे देवायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे नरकायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यञ्चायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इसी प्रकार ओघके समान पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

६३८. आदेशसे नरकगतिमें सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तैजसशरीरके अनुभागबन्धा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छ० असं०गु० । केवलणा०-केवलदं०-विरियंत० तिण्णि वि तु० असं०गु० । असादा० विसे० । अणंताणु०लोभे० असं०गु० । माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । संजलणलोभे० असं०गु० । माया० विसे० । कोधे विसे० । माणे० विसे० । पचक्खाणलोभे० असं०गु० । माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । अपच्चक्खाणलोभे० असं०गु० । माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । आभिणि०-परिभो० असं०गु० । चक्खु० असं०गु० । सुद०-अचक्खु०-भोगंत० असं०गु० । ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० असं०गु० । मणपज्ज०-दाणंत० असं०गु० । थीणगि० विसे० । णवुंस० असं०गु० । इत्थि० असं०गु० । पुरिस० असं०गु० । अरदि० असं०गु० । सोग० असं०गु० । भय० असं०गु० । दुगुं० असं०गु० । णिद्दा-

यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे औदारिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे असातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलन लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे संज्वलन मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलन क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलन मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान दोनोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे चक्षुदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे स्त्यानगृद्धिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे नपुंसकवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे स्त्रीवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे पुरुषवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अरतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यात-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिद्दा० असं०गु० । पयलापयला० असं०गु० । णिद्दा० असं०गु० । पयला० असं०गु० । णीचा० असं०गु० । अजस० विसे० । तिरिक्ख० असं०गु० । रदि० असं०गु० । हस्स० असं०गु० । मणुसाउ० असं०गु० । तिरिक्खाउ० असं०गु० । एवं सत्तमाए पुढवीए । णवरि मणुसाउ० णत्थि । सेसासु पुढवीसु णीचा०-अजस० तुल्लाणि णादव्वाणि । यथा पढमपुढवीए तथा देवगदीए सव्वेसु वि कप्पेसु । एवं वेउव्वियमि० । णवरि णीचा०-अजस० णिरयोघं । वेउव्वियमि० आउ० णत्थि ।

६३९. तिरिक्खेसु सव्वबहूणि अणुभा० साद० । जस०-उच्चा० असं०गु० । देवग० असं०गु० । कम्म० असं०गु० । तेजा० असं०गु० । वेउव्वि० असं०गु० । मिच्छ० असं०गु० । केवलणा०-केवलदंस०-विरियंत० असं०गु० । असादा० विसे० । अणंताणु०लोभे० असं०गु० । माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० ।

गुणे हीन हैं । इनसे शोकके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे भयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे जुगुप्साके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे निद्रानिद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे निद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे नीचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यञ्चगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे रतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे हास्यके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यञ्चायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भङ्ग नहीं है । शेष पृथिवियोंमें नीचगोत्र और अयशःकीर्तिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तुल्य जानने चाहिए । जिस प्रकार प्रथम पृथिवीमें है, उसी प्रकार देवगतिमें तथा सब कल्पोंमें भी जानना चाहिए । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि नीचगोत्र और अयशःकीर्तिका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है तथा वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें आयुका भङ्ग नहीं है ।

६३९. तिर्यञ्चोंमें सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे देवगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तैजसशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे असातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजलणलोभे० असं०गु० । माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । पच्चक्खा०लोभे० असं०गु० । माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । एवं अपच्चक्खाण०४ । आभिणि०-परिभो० असं०गु० । चक्खु० असं०गु० । सुद०-अचक्खु०-भोगंत० असं०गु० । ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० असं० । मणपज्ज०-दाणंत० असं० । थीण० विसे० । णवुंस० असं० । इत्थि० असं० । पुरिस० असं० । अरदि० असं । सोग० असं । भय० असं० । दुगुं० असं० । णिद्दाणिद्दा० असं० । पयलापयला० असं० । णिद्दा० असं० । पयला० असं० । णीचा० असं० । अजस० विसे० । णिरय० असं० । तिरिक्ख० असं० । रदि० असं० । हस्स० असं० ।

इनसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलन लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे संज्वलनमायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थानोंका अल्पबहुत्व है। आगे आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे चक्षुदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्त्यानगृद्धिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्त्रीवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुषवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अरतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे जुगुप्साके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्रानिद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नीचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नरकगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यञ्चगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे रतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे हास्यके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नरकायुके अनुभागबन्धाध्यव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिरयाउ० असं० । देवाउ० असं० । मणुस० असं० । ओरा० असं० । मणुसाउ० असं० । तिरिक्खाउ० असं० । एवं सव्वतिरिक्खाणं । णवरि पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु णाणत्तं । अजस०-णीचा० सरिसाणि । एदं णाणत्तं । यथा जोणिणीसु तथा मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु च । णवरि णाणत्तं । देवाउ० अणुभा० बहूणि । णिरयाउ० थोवाणि ।

६४०. पंचिं०तिरि०अपज्ज० सव्वबहूणि अणुभाग० मिच्छ० । सादा० असं० । जस०-उच्चा० असं० । केवलणा०-केवलदं०-विरियंत० असं० । असादा० विसे० । अणंताणु०लोभे० असं० । माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । एवं संजलण०४–पच्चक्खाण०४–अपच्चक्खाण०४ । आभिणि०-परिभो० असं० । चक्खु० असं० । सुद०-अचक्खु०-भोगंत० असं० । ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० असं० । मणप०-दाणंत[1]० असं० । थीण० विसे० । णवुंस० असं० । इत्थि० असं० । पुरिस०

वसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे देवायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे औदारिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यञ्चायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इसी प्रकार सब तिर्यञ्चोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें नानात्व है । अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान समान हैं । यही नानात्व है । जिस प्रकार योनिनी तिर्यञ्चोंमें अल्पबहुत्व है, उसी प्रकार मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतना नानात्व है कि देवायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान बहुत हैं और नरकायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान थोड़े हैं ।

६४०. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनोंके ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे असातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इसी प्रकार संज्वलन चतुष्क, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके विषयमें जानना चाहिए । आगे आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान दोनोंके समान होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे चक्षुदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनोंके परस्पर समान होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान दोनोंके

१. आ० प्रतौ असं० । मणुस० दाणंत० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असं० । अरदि० असं० । सोग० असं० । भय० असं० । दुगुं० असं० । णिद्दाणिद्दा० असं० । पयलापयला० असं० । णिद्दा० असं० । पयला० असं० । अजस०-णीचा० दो वि तु० असं० । तिरिक्ख० असं० । रदि० असं० । हस्स० असं० । मणुसग० असं० । ओरा० असं० । मणुसाउ० असं० । तिरिक्खाउ० असं० । एवं मणुसअपज्जत्त-सव्वएइंदि०-सव्वविगलिं०-पंचिं०-तस०अपज्ज०-पंचकायाणं च । णवरि एइंदिए तेउ०-वाउ० णाणत्तं । णीचा० बहुगाणि । अजस० विसेसही० । एवं णाणत्तं ।

६४१. ओरालियका० मणुसगदिभंगो । ओरा०मि० सव्वबहूणि साद० । जस०-उच्चा० असं० । देवग० असं० । कम्म० असं० । तेजा० असं० । वेउव्वि० असं० । मिच्छ० असं० । सेसासु० णवरि पंचिंदियतिरिक्खभंगो । एत्तियाओ अत्थि ।

परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे स्त्यानागृद्धिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे नपुंसकवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे स्त्रीवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे पुरुषवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अरतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे शोकके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे भयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे जुगुप्साके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे निद्रानिद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे निद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान दोनों ही परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यञ्चगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे रतिके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे हास्यके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे औदारिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे मनुष्यायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यञ्चायुके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें नानात्व है । अर्थात् इनमें नीचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान बहुत हैं । इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इस प्रकार नानात्व है ।

६४१. औदारिककायोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं । इनसे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे देवगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे कार्मणशरीरके अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तैजसशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यात-गुणे हीन हैं । इनसे मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । आगे शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । इस प्रकार अल्पबहुत्व है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६४२. वेउव्वियका० णिरयभंगो। आहार[1]०-आहार०मि० सव्वबहूणि साद०। जस०-उच्चा० असं०। देवग० असं०। कम्म० असं०। तेज० असं०। वेउ० असं०। केवलणा०-केवलदं०-विरियंत० असं०। असादा० विसे०। संजलण-लोभे[2]० असं०। माया० विसे०। कोधे० विसे०। माणे० विसे०। आभिणि०-परिभोग० असं०। चक्खु० असं०। सुद०-अचक्खु०-भोगंत० असं०। ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० असं०। मणपज्ज०-दाणंत० असं०। पुरिस० असं०। अरदि० असं०। सोग० असं०। भय० असं०। दुगुं० असं०। णिद्दा० असं०। पयला० असं०। अजस० असं। रदि० असं०। हस्स० असं०। देवाउ० असं०। एवं मणपज्ज०-संज०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०। एदेसु आहारसरीरं अत्थि। संजदासंज० परिहार०भंगो। णवरि

६४२. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तैजसशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे असातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे संज्वलन लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे संज्वलन मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे चक्षुदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुषवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अरतिके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे जुगुप्साके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे रतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे हास्यके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है

१. ता० आ० प्रत्योः णिरयभंगो। एवं वेउव्वियमि०। आहार० इति पाठः। २. ता० प्रतौ संजलणं लोभे इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चक्खाण०४ अत्थि।

६४३. कम्म० ओघं। णवरि चदुआउ०-आहार०-णिरयगदिं वज्ज सेसं कादव्वं। एवं अणाहार०। अवगद० ओघं। एवं सुहुमसं०। मदि०-सुद०-असंज०-अब्भव०-मिच्छा० ओघं। एवं विभंग०। आभिणि०-सुद०-ओधि०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० ओघं। णवरि अप्पप्पणो पगदिविसेसो णादव्वो।

६४४. किण्ण-णील-काऊणं ओघं। तेउ० ओघं। णिरयाउ०-णिरयगदिं वज्ज। एवं पम्माए वि। सुक्काए[1] ओघो। दोआउ०-णिरय०-तिरिक्खगदि वज्ज। असण्णीसु सव्वबहूणि मिच्छ०। सादा० असं०। जस०-उच्चा[2]० असं०गुणही०। देवग० असं०-गुणही०। कम्म० असं०गुणही०। तेजा० असं०गुणही०। वेउव्वि० असं०गुणही०। उवरि तिरिक्खोघं। एवं परत्थाणप्पाबहुगं समत्तं।

एवं पगदिसमुदाहारो समत्तो।

कि इनमें आहारकशरीर है। संयतासंयत जीवोंका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयतोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके प्रत्याख्यानावरणचतुष्क हैं।

६४३. कार्मणकाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि चार आयु, आहारकशरीर और नरकगतिको छोड़ कर शेषका अल्पबहुत्व कहना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतिविशेष जाननी चाहिए।

६४४. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें ओघके समान भङ्ग है। पीतलेश्यामें ओघके समान भङ्ग है। मात्र नरकायु और नरकगतिको छोड़कर यह अल्पबहुत्व कहना चाहिए। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार शुक्ललेश्यामें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि दो आयु, नरकगति और तिर्यञ्चगतिको छोड़कर यह अल्पबहुत्व कहना चाहिए। असंज्ञियोंमें मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तैजसशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इससे आगे सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इस प्रकार परस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार प्रकृतिसमुदाहार समाप्त हुआ।

---

१. आ० प्रतौ वि। णवरि सुक्काए इति पाठः। २. ता० प्रतौ साद० अ [ज] स० उच्चा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदिसमुदाहारो पमाणाणुगमो

६४५. ट्ठिदिसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि–पमाणाणुगमो सेढिपरूवणाणुगमो त्ति। पमाणाणुगमो दुवि०। ओघे० मदियावरणस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए असंखेज्जा लोगा अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि। विदियाए ट्ठिदीए असंखेज्जा लोगा अणुभाग०। तदियाए ट्ठिदीए असंखेज्जा लोगा अणुभा०। एवं असंखेज्जा लोगा असंखेज्जा लोगा एवं याव उक्कस्सियाए ट्ठिदि त्ति। एवं अप्पसत्थाणं। पसत्थाणं पगदीणं विवरीदं णेदव्वं। एवं याव अणाहारए त्ति णेदव्वं।

एवं पमाणाणुगमं समत्तं

सेढिपरूवणा

६४६. सेढिपरूवणाणुगमो दुविहो–अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा च। अणंतरोवणिधाए दुवि०। ओघे० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णिरय०-तिरिक्ख०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०–अप्पसत्थ०४–दोआणु०-उप०[1]–अप्पसत्थ०-थावर०-सुहुम०-अपज्ज०-साधार०[2]-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० एदेसिं सव्वत्थोवा जहण्णियाए ट्ठिदीए अणुभा०। विदियाए ट्ठिदीए अणुभा० विसे०। तदीए ट्ठिदीए अणुभा० विसे०। एवं विसेसाधियाणि विसेसाधियाणि याव उक्कस्सियाए

स्थितिसमुदाहार

६४५. स्थितिसमुदाहारका प्रकरण है। उसके विषयमें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं—प्रमाणानुगम और श्रेणिप्ररूपणानुगम। प्रमाणानुगम दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मतिज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। द्वितीय स्थितिके असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तृतीय स्थितिके असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त प्रत्येक स्थितिके असंख्यात लोकप्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार अप्रशस्त प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिये। तथा प्रशस्त प्रकृतियोंके विषयमें विपरीत क्रमसे ले जाना चाहिए। इस प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

श्रेणिप्ररूपणा

६४६. श्रेणिप्ररूपणानुगम दो प्रकारका है—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, नरकगति, तिर्यञ्चगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इनकी जघन्य स्थितिमें अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे दूसरी स्थितिमें अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इनसे तीसरी स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक विशेष अधिक

१. आ० प्रतौ अप्पसत्थ०४ आदाउज्जो० उप० इति पाठः। २. ता० प्रतौ सादा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदि त्ति। सादा०-मणुसग०-देवग०-पंचिं०-पंचसरीर-समचदु०-तिण्णिअंगो०-वजरि०-पसत्थ०४-दोआणु०-अगु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ[1]-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० सव्वत्थोवा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए अणुभागबंधज्झवसाण०। समऊणाए ट्ठिदीए अणुभा० विसे०। विसमऊणाए ट्ठिदीए अणुभा० विसे०। तिसमऊणाए ट्ठिदीए अणुभा० विसे०। एवं विसेसाधियाणि विसेसाधियाणि याव जहण्णियाए ट्ठिदि त्ति। चदुण्णं आउगाणं सव्वत्थोवा जहण्णियाए ट्ठिदीए अणुभा०। विदियाए ट्ठिदीए अणुभा० असंखेज्जगुणाणि। तदियाए ट्ठिदीए अणुभा० असंखेज्ज-गुणाणि। एवं असं०गु० असं०गु० याव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति। एवं एदेण बीजेण याव अणाहारए त्ति णेदव्वं।

एवं अणंतरोवणिधा समत्ता।

६४७. परंपरोवणिधाए मदियावरणस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए अणुभागबंधज्झवसाण-ट्ठाणेहिंतो तदो पलिदोव० असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा। ए [वं दुगुणवड्ढिदा] दुगुण-वड्ढिदा याव उक्कस्सियाए ट्ठिदि त्ति। एगट्ठिदिअणुभाग[2]बंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणं-तराणि असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि। णाणाट्ठिदिअणुभागबंधज्झवसाणदुगुण-वड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि अंगुलवग्गमूलच्छेदणयस्स असंखेज्जदिभागो। णाणाट्ठिदिअणुभा०-

विशेष अधिक अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। सातावेदनीय, मनुष्यगति, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस-चतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट स्थितिके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे एक समय कम स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इनसे दो समय कम स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इनसे तीन समय कम स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इस प्रकार जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक विशेष अधिक विशेष अधिक अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान हैं। चार आयुओंकी जघन्य स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे दूसरी स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे तीसरी स्थितिके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक असंख्यातगुणे असंख्यात-गुणे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान हैं। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

इस प्रकार अनन्तरोपनिधा समाप्त हुई।

६४७. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा मतिज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थानोंसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकल्प जाने पर वे दूने होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक दूने दूने अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान जानने चाहिए। एकस्थितिअनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके असं-ख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण हैं। नानास्थितिअनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानि स्थानान्तर अङ्गुलके प्रथम वर्गमूलके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानास्थिति-

१. ता० आ० प्रत्योः पसत्थ०४ तस०४ थिरादिछ० इति पाठः। २. आ० प्रतौ एगट्ठिदि त्ति अणुभाग- इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुगुणवड्डि-हाणि० थोवाणि । एगट्ठिदिअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्डि-हाणिट्ठाणंतराणि असंखेॅज्जगुणाणि । एवं आउगवज्जाणं सव्वअप्पसत्थपगदीणं सो चेव भंगो ।

६४८. सादस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए अणुभागबंधज्झवसाणेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेॅज्जदिभागो ओसक्किदूण दुगुणवड्डिदा । एवं दुगुणवड्डिदा दुगुण० याव जहण्णिया ट्ठिदि त्ति । एगट्ठिदिअणुभाग०दुगुणवड्डि-हाणिट्ठाणंतराणि असंखेॅज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि[1] । णाणाट्ठिदिअणुभा०दुगुणवड्डि-हाणिट्ठाणंतराणि अंगुलवग्गमूलच्छेदणयस्स असंखेॅज्जदिभागो । णाणाट्ठिदिअणुभागबंध०दुगुणवड्डि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि । एयट्ठिदिअणुभा०दुगुणवड्डि-हाणिट्ठाणंतरं असंखेॅज्जगुणं । एवं आउगवज्जाणं सव्वपसत्थपगदीणं सो चेव भंगो । एदेण बीजेण एवं अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

एवं परंपरोवणिधा समत्ता ।

अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि

६४९. याणि चेव अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि ताणि चेव अणुभागबंधट्ठाणाणि । अण्णाणि पुणो परिणामट्ठाणाणि ताणि चेव कसाउदयट्ठाणाणि त्ति भणंति । मदियावरणस्स जहण्णिगे कसाउदयट्ठाणे असंखेॅज्जा लोगा अणुभागबंधज्झव-

अनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं । इनसे एकस्थितिअनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं । इस प्रकार आयुके सिवा सब अप्रशस्त प्रकृतियोंका वही भङ्ग है ।

६४८. सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानोंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकल्प पीछे जाने पर वे दूने होते हैं । इस प्रकार जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक वे दूने-दूने होते जाते हैं । एकस्थितिअनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण हैं । नानास्थितिअनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर अङ्गुलके प्रथम वर्गमूलके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । नानास्थितिअनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं । इनसे एकस्थितिअनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं । इस प्रकार आयुओंके सिवा सब प्रशस्त प्रकृतियोंका वही भङ्ग है । इस बीज पदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ सब प्रकृतियोंकी जघन्यादि या उत्कृष्टादि किस स्थितिमें रहनेवाले अनुभागबन्धके कितने अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान हैं और वे किस स्थान पर जाकर दूने या आधे होते हैं, इस बातका प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंकी अपेक्षा विचार किया गया है । इसे परम्परोपनिधा कहते हैं; क्योंकि इसमें एकके बाद दूसरी स्थितिके अनुभागअध्यवसानस्थानोंका विचार न कर परम्परया इस बातका विचार किया गया है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार परम्परोपनिधा समाप्त हुई ।

अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान

६४९. जो अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान हैं वे ही अनुभागबन्धस्थान हैं । तथा अन्य जो परिणामस्थान हैं वे ही कषायउदयस्थान कहे जाते हैं । मतिज्ञानावरणके जघन्य कषायउदयस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं । दूसरे कषाय उदय-

१. ता० प्रतौ ट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलाणि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साणट्ठाणाणि। विदियाए कसाउदयट्ठाणे असंखेॅज्जा[1] लोगा अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि। तदिए कसाउदयट्ठाणे असंखेॅज्जा लोगा अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि। एवं असंखेॅज्जा लोगा असंखेॅज्जा लोगा याव उक्कस्सिया कसाउदयट्ठाणं ति। एवं अप्पसत्थाणं सव्वपगदीणं। सादस्स उक्कस्सए कसाउदयट्ठाणे असंखेॅज्जा[2] लोगा अणुभाग०। समऊणाए कसाउदयट्ठाणे असंखेॅज्जा लोगा अणुभा०। विसमऊणाए कसाउदयट्ठाणे असंखेॅज्जा लोगा अणुभा०। तिसमऊणाए कसाउदयट्ठाणे असंखेॅज्जा लोगा अणुभा०। एवं असंखेॅज्जा लोगा असंखेॅज्जा लोगा याव जहण्णियं कसाउदयट्ठाणं ति। एवं सव्वासिं पसत्थाणं पगदीणं। एवं एदेण बीजेण कसाउदयट्ठाणाणि याव अणाहारए त्ति णेदव्वं।

६५०. तेसिं दुविधा परूवणा–अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा च। अणंतरोवणिधाए सव्वासिं [अ] पसत्थपगदीणं णिरयाउगवज्जाणं सव्वत्थोवा जहण्णियाए ट्ठिदीए जहण्णए कसाउदयट्ठाणे अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि। जह० ट्ठिदीए विदियकसाउदय०[3] विसेसाधियाणि। जह० ट्ठिदीए तदिए कसाउदय० विसेसाधियाणि। एवं विसे० विसे० याव जहण्णिया० ट्ठिदीए उक्कस्सयं कसाउदयट्ठाणं ति। एवं याव उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उक्कस्सियं कसाउदयट्ठाणं ति। सव्वपसत्थाणं पगदीणं तिण्णि-

स्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। तीसरे कषाय उदयस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। इस प्रकार सब अप्रशस्त प्रकृतियोंके जानना चाहिए। सातावेदनीयके उत्कृष्ट कषायउदयस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। एक समय कम कषाय उदयस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। दो समय कम कषाय उदयस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। तीन समय कम कषाय उदयस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। इस प्रकार जघन्य कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार सब प्रशस्त प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार अनाहारकमार्गणा तक कषायउदयस्थान जानने चाहिए।

६५०. इनकी प्ररूपणा दो प्रकारकी है—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा नरकायुको छोड़कर सब अप्रशस्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य कषाय उदयस्थानमें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान सबसे थोड़े होते हैं। इनसे जघन्य स्थितिके दूसरे कषाय उदयस्थानमें वे विशेष अधिक होते हैं। इनसे जघन्य स्थितिके तीसरे कषाय उदयस्थानमें वे विशेष अधिक होते हैं। इस प्रकार जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक वे विशेष अधिक विशेष अधिक होते हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। तीन आयुओंको छोड़ कर सब प्रशस्त

१. ता० प्रतौ विदियाए उक्कस्सट्ठाणे असंखेज्जा इति पाठः। २. ता० प्रतौ कसाउदयट्ठाणाणि असंखेज्जा इति पाठः। ३. आ० प्रतौ जह० विदियकसाउदय० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आउगवज्जाणं सव्वत्थोवा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उक्कस्सिए कसाउदयट्ठाणे अणुभागबंधज्झवसाण०। उक्क० ट्ठिदीए समऊणे कसाउद० विसे०। उक्क० ट्ठिदी० विसमऊणे कसाउ० विसे०। उक्क० ट्ठिदी० तिसमऊ० विसे०। एवं विसे० विसे० याव जहण्णयं कसाउदयट्ठाणं ति। एवं याव जहण्णियाए ट्ठिदीए जहण्णयं कसाउदयट्ठाणं ति।

६५१. णिरयाउ० कसाउदयट्ठाणे अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि थोवाणि। विदिए कसाउद० अणुभाग०ज्झवसा० असं०गु०। तदिए कसाउदयट्ठाणे अणुभा० असं०गु०। एवं असंखेँज्जगुणाणि असंखेँ०गु० याव उक्क०ट्ठिदि त्ति। तिण्णं आउगाणं उक्कस्सियाए कसाउदयट्ठाणे अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि थोवाणि। समऊणे कसाउद० अणुभा० [अ] संखेँज्जगुणाणि। विसमऊ० कसाउद० अणुभा० असं०गु०। तिसमऊ० कसाउ० अणुभा० असं०गु०। एवमसंखेँज्जगुणाणि असं०गु० याव जहण्णयं कसाउदयट्ठाणं ति। एवं एदेण बीजेण याव अणाहारए त्ति णेदव्वं।

६५२. परंपरोवणिधाए दुवि०। ओघे मदियावरणादीणं णिरयाउगवज्जाणं सव्वअप्पसत्थपगदीणं जहण्णियाए ट्ठिदीए जहण्णए कसाउदयट्ठाणे जहण्णगं अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणेहिंतो तदो असंखेँज्जा लोगं गंतूण दुगुणवड्डिदा। एवं दुगुणवड्डिदा दुगुणवड्डिदा याव उक्कस्सिया ट्ठिदीए उक्कस्सिए कसाउदयट्ठाणे त्ति। सादादीणं

प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान सबसे थोड़े होते हैं। उनसे उत्कृष्ट स्थितिके एक समय कम कषाय उदयस्थानमें वे विशेष हीन होते हैं। उनसे उत्कृष्ट स्थितिके दो समय कम कषाय उदयस्थानमें वे विशेष हीन होते हैं। उनसे उत्कृष्ट स्थितिके तीन समय कम कषाय उदयस्थानमें वे विशेष हीन होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक वे विशेष हीन विशेष हीन होते हैं। इसी प्रकार जघन्य स्थितिके जघन्य कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए।

६५१. नरकायुके जघन्य कषाय उदयस्थानमें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान स्तोक हैं। इनसे दूसरे कषाय उदयस्थानमें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे तीसरे कषाय उदयस्थानमें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक वे असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे हैं। तीन आयुओंके उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान थोड़े हैं। उनसे एक समय कम कषाय उदयस्थानमें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे दो समय कम कषाय उदयस्थानमें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे तीन समय कम कषाय उदयस्थानमें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार जघन्य कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान हैं। इस प्रकार इस बीज पदके अनुसार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

६५२. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे नरकायुके सिवा मतिज्ञानावरण आदि सब अप्रशस्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य कषाय उदयस्थानमें जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थानोंसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर द्विगुणी वृद्धि होती है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक द्विगुणी द्विगुणी वृद्धि होती है। तीन आयुओंके सिवा सातावेदनीय आदि सब प्रशस्त प्रकृ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णं[1] आउगवज्जाणं सव्वपसत्थपगदीणं उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उक्कस्सए कसाउदयट्ठाणे अणुभा०हिंतो तदो असंखेँज्जा लोगं गंतूण दुगुणवड्ढि०। एवं दुगुणवड्ढिदा याव जहण्णियाए ट्ठिदीए जह० कसाउदयट्ठाणे त्ति। एगअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरं असंखेँज्जा लोगा। णाणाअणुभा०दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि आवलि० असंखेँज्जदिभागो। णाणा०अणुभा०दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि। एगअणुभा० दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरं असंखेँज्जगुणं। एवं आउगवज्जाणं पगदीणं एदेण बीजेण याव अणाहारए त्ति णेदव्वं। एवं परंपरोवणिधा समत्ता।

एवं ट्ठिदिसमुदाहारो समत्तो।

तिव्वमंददाए अणुकड्डी

६५३. एत्तो तिव्वमंददाए पुव्वं गमणिज्जं अणुकड्ढिं वत्तइस्सामो। तं जहा—सण्णीहि पगदं। अब्भवसिद्धियपाओग्गं जहण्णगे बंधगे मदियावरणस्स जहण्णट्ठिदि-बंधमाणस्स याणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि विदियाए ट्ठिदीए तदेगदेसो वा अण्णाणि च। तदियाए ट्ठिदीए तदेगदेसो वा अण्णाणि च। एवं पलिदोवमस्स असंखेँज्जदिभागो तदेगदेसो वा अण्णाणि च। एवं जहण्णियाए ट्ठिदीए अणुकड्डी। जम्हि जहण्णियाए ट्ठिदीए अणुकड्डी णिट्ठिदा तदो से काले विदियाए ट्ठिदीए अणुकड्डी णिट्ठियदि। जह्मि विदियाए ट्ठिदीए अणुकड्डी णिट्ठिदा तदो से काले तदियाए ट्ठिदीए

तियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट उदयस्थानमें अनुभाग अध्यवसान स्थानोंसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर द्विगुणी वृद्धि होती है। इस प्रकार जघन्य स्थितिके जघन्य कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक द्विगुणी द्विगुणी वृद्धि होती है। एक अनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यात लोकप्रमाण हैं। नानाअनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। नाना अनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एकअनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है। इस प्रकार आयुके सिवा सब प्रकृतियोंका इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार परम्परोपनिधा समाप्त हुई।

इस प्रकार स्थितिसमुदाहार समाप्त हुआ।

६५३. आगे तीव्रमन्दका पहले विचार करना है। उसमें अनुकृष्टिको बतलाते हैं। यथा—संज्ञी जीव प्रकृत हैं। अभव्योंके योग्य जघन्य बन्धकमें मतिज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, द्वितीय स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीसरी स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थिति विकल्पोंके प्राप्त होने तक उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार जघन्य स्थितिमें अनुकृष्टि जाननी चाहिए। जघन्य स्थितिमें जहाँ अनुकृष्टि समाप्त होती है, उससे अनन्तर समयमें द्वितीय स्थितिमें अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ दूसरी स्थितिमें अनुकृष्टि समाप्त होती है, उससे अनन्तरसमयमें तीसरी स्थितिमें

१. ता० प्रतौ त्ति स्सादीणं (?) तिण्णं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुकड्डी णिट्ठियदि। एवं याव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति। यथा मदियावरणस्स तथा-इमासिं। तं जहा—पंचणा० णवदंस० मोहणीयस्स छव्वीसं अप्पसत्थव०४ उप० पंचंत०। एस अणुकड्डिं बंध०।

६५४. एत्तो सादस्स अणुकड्डिं वत्तइस्सामो। तं जहा—सादस्स उक्कस्सयं ट्ठिदिं बंधमाणस्स याणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि तदो समऊणाए ट्ठिदीए ताणि च अण्णाणि च। विसमऊणाए[1] ट्ठिदीए ताणि च अण्णाणि च। तिसमऊणाए ट्ठिदीए ताणि च अण्णाणि च। एवं जाव जहण्णयं असादबंधपाओग्गसमाणं ति ताव ताणि च अण्णाणि च। तदो जहण्णयादो असादबंधट्ठाणादो याव समऊणा ट्ठिदी तिस्से जाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि ताणि उवरिल्लाणि ट्ठिदीणं अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणेहिंतो तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो समऊणाए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो दुसमऊणाए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तिसमऊणाए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। एवं पलिदोवमस्स असंखेंज्जदिभागो तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो जहण्णियादो असादबंधसमऊणादो जा समऊणा ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए अणुकड्डी झीणा। तदो से काले समऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीयदि। जम्हि समऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीणा तदो से काले दुसमऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीयदि। यम्हि विसमऊणाए ट्ठिदीए

अनुकृष्टि समाप्त होती है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। यहाँ जिस प्रकार मतिज्ञानावरणकी अनुकृष्टि कही है, उसी प्रकार इन प्रकृतियोंकी जाननी चाहिए। यथा—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मोहनीयकी छब्बीस प्रकृतियाँ, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तराय। यह अनुकृष्टिका बन्ध करनेवालेके कहना चाहिए।

६५४. आगे सातावेदनीयकी अनुकृष्टिको बतलाते हैं। यथा—सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, उससे एक समय कम स्थितिके वे और दूसरे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय कम स्थितिके वे और दूसरे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीन समय कम स्थितिके वे और दूसरे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार जघन्य असातावेदनीयके बन्धके योग्य स्थानोंके समान स्थानोंके प्राप्त होने तक वे और दूसरे स्थान होते हैं। आगे जघन्य असातावेदनीयबन्धस्थानके समान स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिके प्राप्त होने तक उसके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान हैं वे ऊपरकी स्थितियोंके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानोंसे एकदेश रूप होते हैं और अन्य होते हैं। आगे एक समय कम स्थितिमें उनका एकदेश और दूसरे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसके आगे दो समय कम स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीन समय कम स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थिति विकल्पों तक प्रत्येक स्थितिविकल्पमें पूर्व पूर्वका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। अनन्तर एक समय कम जघन्य असातावेदनीयके समान बन्धसे जो एक समय कम स्थिति है उस स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हो जाती है। आगे अनन्तर समयमें एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हो जाती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है, उससे अनन्तर समयमें दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ दो समय

१. ता० प्रतौ ताणि च विसमऊणाए इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुकड्डी झीणा तदो से काले तिसमऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीयदि। एवं याव सादस्स जहण्णियाए ट्ठिदि त्ति। एवं यथा सादस्स[1] तथा मणुस०-देवग०-समचदु०-वज्जरि०-मणुस०-देवग०तप्पाओग्गाणु०-पसत्थवि०-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-उच्चा० एस भंगो १५।

६५५. एत्तो असादस्स अणुकड्डिं वत्तइस्सामो। तं जहा—असादस्स जहण्णिया ट्ठिदी बंधमाणो[2] जाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि विदियाए ट्ठिदीए ताणि च अण्णाणि च। एवं याव सागरोवमसदपुधत्तं ताणि च अण्णाणि च। एसा परूवणा कदमासिं[3] ? असादबंधट्ठिदीणं इमासिं एसा परूवणा। तं जहा[4]—याओ ट्ठिदीओ बंधमाणो असादस्स जहण्णयं अणुभागं बंधदि तासिं ट्ठिदीणं एसा परूवणा। एदेसिं ट्ठिदीणं या उक्कस्सिया ट्ठिदी तिस्से याणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि तदो सम-उत्तराए ट्ठिदीए[5] तदेगदेसो च अण्णाणि च। एवं विसमउत्तराए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। एवं पलिदोवमस्स असंखेंज्जदिभागो तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो असादस्स जह० अणुभागबंधपाओग्गाणं ट्ठिदीणं याव उक्कस्सिया ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए अणुकड्डी झीयदि। यम्हि असादस्स जहण्णयं अणुभागबंधपाओग्गाणं ट्ठिदीणं उक्कस्सियाए ट्ठिदीए[6] अणुकड्डी झीणा तदो से काले समउत्तराए ट्ठिदीए

कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है, उससे अनन्तर समयमें तीन समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। इस प्रकार सातावेदनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होने तक कथन करना चाहिए। यहाँ जिस प्रकार सातावेदनीयकी अनुकृष्टि कही है, उसी प्रकार मनुष्यगति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका यही भङ्ग जानना चाहिए।

६५५. आगे असातावेदनीयकी अनुकृष्टिको बतलाते हैं। यथा—असातावेदनीयकी जघन्य स्थितिको बाँधनेवाले जीवके जो जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, दूसरी स्थितिको बाँधनेवाले जीवके वे और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार सौ सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक वे और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। यह प्ररूपणा किन स्थितियोंकी है ? इन असातावेदनीय बन्ध स्थितियों की यह प्ररूपणा है। यथा—जिन स्थितियोंको बाँधते हुए असातावेदनीयका जघन्य अनुभाग बाँधता है उन स्थितियोंकी यह प्ररूपणा है। तथा इन स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है उसके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, उससे एक समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार दो समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकल्पोंके प्राप्त होने तक प्रत्येकके पूर्व-पूर्व अनुभागबन्धाध्यवसान स्थानोंका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। अनन्तर असातावेदनीयकी जो जघन्य अनुभागबन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें उत्कृष्ट स्थिति होती है, उस स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हो जाती है। जहाँ असातावेदनीयकी जघन्य अनुभागबन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है, उससे अगले समयमें एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय

१. ता० प्रतौ यथा सुदस्स तथा इति पाठः। २. ता० प्रतौ जहण्णियाए ट्ठिदिबंधमाणो इति पाठः। ३. ता० प्रतौ एसपरूवणा कदमासि इति पाठः। ३. ता० प्रतौ एसपरूवणा कदमासि इति पाठः। ४. ता० प्रतौ तं जहा इति स्थाने प्रायः सर्वत्र तं यथा इति पाठः। ५. ता० प्रतौ ट्ठिदीए इति पाठो नास्ति। ६. ता० प्रतौ -पाओग्गाणं ट्ठिदीए इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुकड्डी झीयदि। यम्हि समउत्तराए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीणा तदो से काले विसम-उत्तराए अणुकड्डी झीयदि। यम्हि विसमउत्तराए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीणा तदो से काले तिसमउत्तराए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीयदि। एवं याव असादस्स उक्कसिया ट्ठिदि त्ति। णिरय०-एइंदि०-बीइं०-तीइं०-चदुरिं०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-णिरयाणु०-अप्पसत्थ०-थावर०-सुहुम-अपज्ज०-साधार०-अथिर-असुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-अजस० एवं असादभंगो।

६५६. एत्तो तिरिक्खगदिणामाए अणुकड्डिं वत्तइस्सामो। तं जहा—सत्तमाए पुढवीए णेरइगस्स सव्वजहण्णियं ट्ठिदिं बंधमाणयस्स याणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि तदो विदियाए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो तदियाए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। एवं पलिदोवमस्स असंखेंज्जदिभागो[1] तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो जहण्णियाए ट्ठिदीए अणुकड्डी छिज्जदि। जम्हि जहण्णियाए ट्ठिदीए अणुकड्डी च्छिण्णा तदो से काले समउत्तराए ट्ठिदीए अणुकड्डी छिज्जदि। जम्हि समउत्तराए ट्ठिदीए अणुकड्डी छिण्णा तदो से काले विसमउत्तराए ट्ठिदीए अणुकड्डी छिज्जदि। एवं याव अब्भवसिद्धिपाओग्गजहण्णट्ठिदिचरिमसमयं अपत्ता त्ति। तदो अब्भवसिद्धियपाओग्गजहण्णयं ट्ठिदिं बंधमाणस्स याणि अणुभागबंधज्झवसाणाणि विदियाए ट्ठिदीए ताणि च अण्णाणि च। तदियाए ट्ठिदीए ताणि च अण्णाणि

अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है, उससे अनन्तर समयमें दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है, उससे अगले समयमें तीन समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। इसी प्रकार असातावेदनीय की उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। नरकगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्तिका भङ्ग इसी प्रकार असातावेदनीयके समान है।

६५६. आगे तिर्यञ्चगतिनामकर्मकी अनुकृष्टि बतलाते हैं। यथा—सातवीं पृथिवीमें सबसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकीके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, उनसे द्वितीय स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इनसे तीसरी स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिविकल्पोंके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें पूर्व-पूर्व अनुभागबन्धाध्यवसान स्थानोंका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान प्राप्त होते हैं। तब जाकर जघन्य स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ जघन्य स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है, उससे अगले समयमें एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है, उससे अगले समयमें दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। इस प्रकार अभव्य प्रायोग्य जघन्य स्थितिका अन्तिम समय जब तक न प्राप्त हो, तब तक जानना चाहिए। अनन्तर अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, उनसे द्वितीय स्थितिमें वे और अन्य अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीसरी स्थितिमें वे और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण स्थिति विकल्पोंके प्राप्त होने तक प्रत्येकमें वे और अन्य

१. ता० प्रतौ असंखेज्जदिभागो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च। एवं याव सागरोवमसदपुधत्तं ताव ताणि च अण्णाणि च। एसा परूवणा कदमासिं ? तिरिक्खगदिणामाए यासिं बंधट्ठिदीणं[1] इमासिं एसा परूवणा। तं जहा—याओ ट्ठिदीओ बंधमाणो तिरिक्खगदिणामाए जहण्णयं अणुभागं बंधदि तासिं ट्ठिदीणं एसा परूवणा। एदासिं ट्ठिदीणं या उकस्सिया ट्ठिदी तिस्से याणि अणुभागबंधज्झवसाणाणि तदो समउत्तराए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। विसमउत्तराए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। एवं पलिदो० असंखेंज्जदिभागो तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो अब्भवसिद्धिपाओग्गजह० अणुभाग० जह० बंधुकस्सियाए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीयदि। जम्हि अब्भवसि० जह० अणुकड्डी झीणा तदो जा समउत्तरा ट्ठिदी तिस्से अणुकड्डी झीयदि। यम्हि समउत्तराए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीणा तदो से काले विसमउत्तराए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीयदि। यम्हि विसमउत्तराए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीणा तदो से काले तिसमउत्तराए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीयदि। एवं याव तिरिक्खगदिणामाए उकस्सियाए ट्ठिदीए त्ति। तिरिक्खाणु०-णीचागो० तिरिक्खगदिभंगो।

६५७. एत्तो ओरालियसरीरणामाए अणुकड्डिं वत्तइस्सामो। तं जहा—ओरालियसरीरणामाए उकस्सियं ट्ठिदिं बंधमाणस्स याणि अणुभागबं० तदो सयऊणाए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। विसमऊणाए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तिसमऊणाए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। एवं पलिदो० असंखेंज्जदिभागो

अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। यह प्ररूपणा किन स्थितियोंकी है ? तिर्यञ्चगतिनामकर्मकी इन बन्धस्थितियोंकी यह प्ररूपणा है। यथा—जिन स्थितियोंको बाँधते हुए तिर्यञ्चगति नामकर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करता है,उन स्थितियोंकी यह प्ररूपणा है। इन स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है उसके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान हैं,उससे एक समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंमेंसे प्रत्येक स्थितिके पूर्व-पूर्वका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। अनन्तर अभव्यप्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसान युक्त जघन्य बन्धोत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जिस स्थानमें अभव्यसिद्धप्रायोग्य जघन्य स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है, उसके बाद जो एक समय अधिक स्थिति है उसकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है,उससे अगले समयमें दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है,उससे अगले समयमें तीन समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। इस प्रकार तिर्यञ्चगति नामकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है।

६५७. आगे औदारिकशरीर नामकर्मकी अनुकृष्टिको बतलाते हैं। यथा—औदारिक शरीरकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं,उससे एक समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीन समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार

---

१. ता० आ० प्रत्योः यादि बंधट्ठिदीणं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो उक्कस्सियाए ट्ठिदीए अणुकड्डी वोच्छिज्जदि[1]। जम्हि उक्कस्सिए ट्ठिदीए अणुकड्डी वोच्छिण्णा तदो से काले समऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी वोच्छिज्जदि। यम्हि समऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी वोच्छिण्णा तदो से काले विसमऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी वोच्छिज्जदि। जम्हि विसमऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी वोच्छिण्णा तदो से काले तिसमऊ० अणुकड्डी वोच्छिज्जदि। एवं याव ओरालियसरीरस्स जहण्णियाए ट्ठिदि त्ति। पंचण्णं सरीराणं तिण्णमंगोवंगाणं पसत्थ०४ अगु० पर० उस्सा० आदाउज्जो० णिमि० तित्थयरस्स च ओरालियस०भंगो।

६५८. एत्तो पंचिंदियणामाए अणुकड्ढिं वत्तइस्सामो। तं जहा—पंचिंदियणामाए उक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधमाणस्स याणि अणुभागबंधज्झवसाणाणि तदो समऊणाए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो विसमऊणाए ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो तिसमऊणाए[2] ट्ठिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। एवं पलि० असंखेंज्जदिभागो तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो उक्कस्सियाए ट्ठिदीए अणुकड्डी णिट्ठायदि। यम्हि उक्कस्सियाए ट्ठिदीए अणुकड्डी णिट्ठिदा तदो से काले समऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी णिट्ठायदि। यम्हि[3] समऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी णिट्ठिदा तदो से काले विसमऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी णिट्ठायदि। यम्हि विसमऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी णिट्ठिदा

पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंमेंसे प्रत्येक स्थितिके पूर्व-पूर्व अनुभागबन्धाध्यवसान स्थानोंका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तब जाकर उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। जहाँ उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न हुई है, उससे अगले समयमें एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न हुई है, उससे अगले समयमें दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न हुई है, उससे अगले समयमें तीन समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। इस प्रकार औदारिकशरीरकी जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। पाँच शरीर, तीन आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग औदारिकशरीरके समान है।

६५८. आगे पञ्चेन्द्रियजातिकी अनुकृष्टिको बतलाते हैं। यथा—पञ्चेन्द्रियजातिकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवालेके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, उनसे एक समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। उनसे दो समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। उनसे तीन समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कम स्थितिके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिके पूर्व-पूर्वका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तब जाकर उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त हुई है, उससे अगले समयमें एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त हुई है, उससे अगले समयमें दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त हुई है, उससे अगले समयमें तीन समय कम स्थितिकी

१. ता० प्रतौ अणुकड्डी वा छिज्जदि इति पाठः। २. ता० प्रतौ तदो समऊणाए इति पाठः। ३. ता० प्रतौ याम्ही इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदो से काले तिसमऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी णिट्ठायदि । एवं याव अट्ठारससागरोवमकोडाकोडीओ समउत्तराओ त्ति । तदो अट्ठारससागरोवमकोडाकोडीओ पडिपुण्णं बंधमाणयस्स याणि अणुभागबंधज्झवसाणाणि तदो समऊणाए ट्ठिदीए ताणि य अण्णाणि य । विसमऊणाए ट्ठिदीए ताणि य अणाणि य । तदो तिसमऊणाए ट्ठिदीए ताणि य अण्णाणि य । एवं याव पडिपक्खणामपाओग्गजहण्णगो ट्ठिदिबंधो ताव ताणि य अण्णाणि य । तदो पडिपक्खणामाए जहण्णगादो ट्ठिदिबंधादो समऊणाए ट्ठिदीए याणि अणुभाग० उवरिल्लाणं अणुभागबंध० तदेगदेसो य अण्णाणि य । तदो विसमऊणा० ट्ठिदी० तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो तिसमऊणा० ट्ठिदी० तदेगदेसो च अण्णाणि च । एवं पलि० असं०भागो तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो अब्भवसिद्धियपाओग्गजह० ट्ठिदी० अणुकड्डी झीयदि । जम्हि पडिपक्खणामपाओग्गजह० ट्ठिदी० अणुकड्डी झीणा तदो से काले समऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीयदि । जम्हि समऊणाए ट्ठिदीए अणुकड्डी झीणा तदो से काले विसमऊणा० ट्ठिदी० अणुकड्डी झीयदि । जम्हि विसमऊ० ट्ठिदी० अणुक० झीणा तदो से काले तिसमऊणा० ट्ठिदी० अणुक० झीयदि । एवं याव पंचिंदियणामाए जहण्णिया ट्ठिदि त्ति । एवं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय० ।

एवं अणुकड्डी समत्ता ।

अनुकृष्टि समाप्त होती है। इस प्रकार एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिबन्ध होने तक जानना चाहिए। अनन्तर पूरे अठारह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बाँधनेवालेके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान प्राप्त होते हैं, उनसे एक समय कम स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके वे और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय कम स्थितिका बन्ध करनेवालेके वे और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। आगे तीन समय कम स्थितिका बन्ध करनेवालेके वे और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार प्रतिपक्ष नामप्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक वे और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। आगे प्रतिपक्ष नामके जघन्य स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिके जो ऊपरकी स्थितियोंके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान हैं, उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। आगे दो समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। आगे तीन समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितियोंके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिके पूर्व-पूर्वके अनुभाग अध्यवसान स्थानोंका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तब जाकर अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ प्रतिपक्ष नामप्रायोग्य जघन्य स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है, उससे अगले समयमें एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है, उससे अगले समयमें दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है, उससे अगले समयमें तीन समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। इस प्रकार पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मकी जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। इस प्रकार त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक प्रकृतिके विषयमें जानना चाहिए।

इस प्रकार अनुकृष्टि समाप्त हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिव्वमंदो

६५९. एत्तो तिव्वमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा—मदियावरणस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जहण्णपदे जहण्णाणुभागो थोवो । विदियाए ट्ठिदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । तदियाए ट्ठिदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । एवं पलि० असं० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । तदो जह० ट्ठिदी० उक्कस्सपदे उक्क० अणुभा० अणंतगु० । तदो यम्हि ट्ठिदा जहण्णा तदो समउत्तराए ट्ठिदीए जह० अणंतगुणो । विदि० उक्क० अणु० अणंतगुणो । इतरत्थ जहण्णाणु० अणंतगु० । तदियाए ट्ठिदी० उक्क० अणु० अणंतगु० । इतरत्थ जह० अणु० अणंतगु० । एवं णेदव्वं याव उक्कस्सियाए ट्ठिदीए जहण्णपदे जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । तदो उक्कस्सियाए ट्ठिदीए पलिदोवमस्स असंखें०भागं ओसक्किदूण जम्हि ट्ठिदो उक्कस्सो[1] तदो समउत्तराए ट्ठिदीए उक्क० अणुभागो अणंतगुणो । विसमउ० ट्ठिदी० उक्क० अणु० अणंतगु० । तदो तिसमउ० ट्ठिदी० उक्क० अणु० अणंतगु० । एवं अणु०बंध० उक्क० अणंतगु० । एवं याव मदियावरणस्स उक्क० ट्ठिदी० उक्कस्सपदे उक्क० अणु० अणंतगु० । पंचणा०-णवदंस०-मोहणीयछब्वीस-अप्प०सत्थ०४-उप०-पंचंत० एदेसिं मदियावरणभंगो ।

तीव्र-मन्द

६५९. आगे तीव्रमन्दको बतलाते हैं । यथा—मतिज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है । इससे दूसरी स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे तीसरी स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे पहले अन्तकी जिस स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा कह आये हैं, उससे एक समय अधिक स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे प्रारम्भकी द्वितीय स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे आगेकी दूसरी स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे प्रारम्भकी तीसरी स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे आगेकी तीसरी स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है—इस स्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । आगे उत्कृष्ट स्थितिसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण पीछे जाकर जिस स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है, उससे एक समय अधिक स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे दो समय अधिक स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे तीन समय अधिक स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार मतिज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है—इस स्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए । पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, छब्बीस मोहनीय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तराय इनका भङ्ग मतिज्ञानावरणके समान है ।

विशेषार्थ—यहाँ मतिज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिबन्धसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें जघन्य और उत्कृष्ट अनुभाग कितना होता है, इसका विचार किया गया है । विचार करते हुए यहाँ जो कुछ बतलाया गया है उसका भाव यह है कि प्रथमसे दूसरीमें और दूसरीसे तीसरीमें, इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण

१. ता० प्रतौ जम्हि ट्ठिदी उक्कस्सो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६०. एत्तो सादस्स तिव्वमंदं वत्तइस्सामो। तं जहा—सादस्स उकस्स० ट्ठिदीए जहण्णपदे जहण्णाणुभागो थोवो। समऊणाए ट्ठिदीए जह० अणु० तत्तियो चेव। बिसमऊ० ट्ठिदीए जह० अणु० तत्तियो चेव। तिसमऊ० ट्ठिदी० जहण्णाणु० तत्तियो चेव। एवं याव जहण्णगो असादबंधसमाणो त्ति ताव तत्तियो चेव। तदो जहण्णगादो असादबंधादो या समऊणा ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए जहण्णाणुभागो अणंतगु०। बिसमऊ० ट्ठिदी० जह० अणु० अणंतगु०। तिसमऊ० ट्ठिदी० जह० अणु० अणंतगु०। एदेण कमेण जहण्णगा असादबंधसमाणसादबंधगाणं आदिं कादूण असंखेंज्जाओ ट्ठिदीओ णिव्वग्गणकंडयस्स असंखेज्जदिभागो एत्तियमेत्तीओ ट्ठिदीओ तासिं जहण्णाणुभागो अणंतगुणाए सेढीए णेदव्वा। तदो णियत्तिदव्वं सादस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उकस्स-पदे उक्क० अणुभा० अणंतगुणो। समऊ० ट्ठिदी० उक्क० अणु० अणंतगु०। बिसमऊ० ट्ठिदी० उक्क० अणु० अणंतगु०। तिसमऊ० ट्ठिदी० उक्क० अणु० अणंतगु०। एवं णिरंतरं उक्कस्सयं आदिं कादूण असंखेंज्जाओ ट्ठिदीओ एत्तियमेंत्तं णिव्वग्गणकंडयं तत्तिय-

स्थितियोंमें जघन्य अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। फिर पल्यके असंख्यातवें भागके अन्तमें जो स्थिति विकल्प है, उसके जघन्य अनुभागसे जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंके आगेकी स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे जघन्य स्थितिसे आगेकी द्वितीय स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंके आगेकी दूसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे जघन्य स्थितिसे आगेकी तीसरी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंसे आगेकी तीसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार इसी क्रमसे उत्कृष्ट स्थिति तक अनुभागका क्रम जानना चाहिए। मात्र जहाँ उत्कृष्ट स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा प्राप्त होता है, वहाँ इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पूर्वकी स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा होता है और आगे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंमें पूर्व-पूर्व स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे आगे-आगेकी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा होता है।

६६०. आगे सातावेदनीयके तीव्र-मन्दको बतलाते हैं। यथा—सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग स्तोक है। एक समय कम स्थितिका जघन्य अनु-भाग उतना ही है। दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार जघन्य असातावेदनीयके बन्धके समान स्थितिके प्राप्त होने तक उतना ही अनुभाग है। अनन्तर जघन्य असातावेदनीयके बन्धसे जो एक समय कम स्थिति है, उस स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस क्रमसे असातावेदनीयके बन्धके समान साता-वेदनीयके बन्धकोंसे लेकर असंख्यात स्थितियाँ, जो कि निर्वर्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण हैं, इतनीमात्र उन स्थितियोंका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। इसके बाद लौटकर सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे तीन समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर निर्वर्गणा काण्डक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेत्तीणं ट्ठिदीणं या उक्कस्सअणु० अणंतगुणो अणंतगुणाए सेढीए णेदव्वं। तदो जाहिंतो ट्ठिदीहिंतो एयंतसादपाओग्गजहण्णगं अणुभागं भाणिदूण णियत्तिदा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उक्कस्सियमणुभागस्स तदो एँत्तो ट्ठिदीदो णियत्तो तदो ट्ठिदीदो या समऊ[1]० ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए जह० अणु० अणंतगु०। तदो पुण उक्कस्सियादो ट्ठिदीदो णिव्वग्गण-कंडयमेँत्तीओ ट्ठिदीओ ओसक्किदूण जा ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए उक्क० अणु० अणंत-गु०। तदो पुण णिव्वग्गणकंडयमेँत्तीणं उक्क० अणु० अणंतगु० अणंतगुणाए सेढीए[2] णिरंतरं णेदव्वं। तदो पुण हेट्ठादो एँक्किस्से ट्ठिदीए जह० अणु० अणंतगु०। तदो पुण उक्कस्सगादो दुगुणणिव्वग्गणकंडयमेँत्तीओ ट्ठिदीओ ओसक्किदूण या ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए उक्क० अणु० अणंतगु०। तदो णिव्वग्गणकंडयमेँत्तीणं उक्क० अणु० अणंत-गुणाए सेढीए णिरंतरं णेदव्वं। तदो पुण एक्किस्से ट्ठिदीए जह० अणु० अणंतगु०। तदो पुण उक्क० ट्ठिदीदो तिगुणणिव्वग्गणकंडयमेँत्तीओ ट्ठिदीओ ओसक्किदूण जा ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए उक्क० अणु० अणंतगु०। तदो णिव्वग्गणकंडयमेँत्तीणं ट्ठिदीणं उ० अणु० अणंतगु० अणंतगुणाए सेडीए णिरंतरं णेदव्वं। एवं हेट्ठादो[3] एँक्किस्से ट्ठिदीए जहण्णाणुभागस्स उवरिमाणं ट्ठिदीणं असंखेँज्जाणं उक्कस्सगा अणुभागा। एवं ओघसिज्ज-माणा हेट्ठिमट्ठिदीणं जहण्णाणुभागेहि उवरिमाणं ट्ठिदीणं उक्कस्साणुभागेहि ताव आगदं याव असादस्स समाणं जहण्णयं ट्ठिदिबंधं णिव्वग्गणकंडगेण[4] अपत्ता त्ति। तदो हेट्ठिमाए ट्ठिदी० जह० अणु० अणंतगु०। तदो उवरिमाणं ट्ठिदीणं जम्हि ट्ठिदीदो

प्रमाण असंख्यात स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है जो उत्तरोत्तर अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। अनन्तर जिस स्थितिसे एकान्त सातावेदनीयप्रायोग्य जघन्य अनुभागको कहकर और लौटकर उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग कहा था, उस स्थितिसे एक समय कम जो स्थिति है, उसका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर उत्कृष्ट स्थितिसे निर्वर्गणा-काण्डकमात्र स्थितियाँ हटकर जो स्थिति है, उस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग पूर्वोक्त जघन्य अनुभाग-वाली स्थितिसे अनन्तगुणा है। फिर आगे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियों का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे उत्तरोत्तर अनन्तगुणा-अनन्तगुणा है। तदनन्तर अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। अनन्तर उत्कृष्ट स्थितिसे द्विगुणे निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियाँ हटकर जो स्थिति है, उस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे आगे निर्वर्गणा-काण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। तदनन्तर अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। अनन्तर उत्कृष्ट स्थितिसे तिगुणे निर्वर्गणा-काण्डकमात्र स्थितियाँ हटकर जो स्थिति है, उस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग निरन्तर अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरिम असंख्यात स्थितियोंके उत्कृष्ट अनुभाग हैं। इस प्रकार क्रम-क्रम से घटाते हुए अधस्तन स्थितियोंके जघन्य अनुभागों और उपरिम स्थितियोंके उत्कृष्ट अनुभागोंसे तब तक आये हैं, जब तक असाताके समान जघन्य स्थितिबन्धको एक निर्वर्गणाकाण्डकके द्वारा नहीं प्राप्त हुए हैं। उससे अधस्तन स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उपरिम स्थितियोंके जिस स्थानमें उत्कृष्ट अनु-

१. ता० आ० प्रत्यो० य समऊ० इति पाठः। २. अणंतगुणो सेढीए इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः भट्ठादो इति पाठः। ४. ता० आ० प्रत्योः ट्ठिदिबंधणिव्वग्गणकंडगेण इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कस्सो तदो समऊणाए ट्ठिदी० उक्क० अणु० अणंतगु० । तदो विसमऊ० ट्ठिदी० उ० अणु० अणंतगु० । ताव अणंतगुणाए सेडीए णिरंतरं आगदं याव असादस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो । तदो जहण्णगादो असाद०ट्ठिदिबंधादो उक्क०[1]अणुभागेहिंतो जहण्णगादो असाद० णिव्वग्गणकंडयमेंत्तीओ ट्ठिदीओ ओसक्किदूण या ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए ज० अणु० अणंतगु० । तदो जह०दो असाद० ट्ठिदीदो सयऊ० ट्ठिदी० उ० अणु० अणंतगु० । तेण परं हेट्ठिमाए ट्ठिदीए जहण्णगो अणुभागो उवरिमाए ट्ठिदीए उक्कस्सओ अणुभागो एगेगा ओगसिदा[2] जहण्णादो असाद०दो समाणं आढत्ता ताव णीदं याव[3] सादस्स जह०ट्ठिदी० जह० पदे ज० अणु० अणंतगु० । तदो सादस्स जह० ट्ठिदो णिव्वग्गणकंडयमेंत्तीओ ट्ठिदीओ अब्भुस्सरिदूण जम्हि ट्ठिदो उक्क० तदो समऊ० ट्ठिदी० उ० अणु० अणंतगु० । दुसमऊ० ट्ठिदी० उ० अणु० अणंतगु० । तिसमऊ० ट्ठिदी० उ० अणु० अणंतगु० । एवं उक्क० अणु० अणंतगुणाए सेडीए णिरंतरं णेदव्वं याव सादस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो त्ति । एवं यथा सादस्स तथा मणुसग०-देवग०-समचदु०-वज्जरि०-दोआणु०-पसत्थ०-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेंज्ज०-जस०-उच्चा० ।

भाग स्थित है, उससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समयकम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार असातावेदनीयके जघन्य स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे निरन्तर आया है। अनन्तर जघन्य असातावेदनीयके समान स्थितिबन्धके उत्कृष्ट अनुभागसे जघन्य असातावेदनीयके समान स्थितिबन्धसे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ हटकर जो स्थिति है, उस स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जघन्य असातावेदनीयके समान स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरिम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग इस प्रकार एक-एक कम होता हुआ जघन्य असाताके समान स्थितिबन्धसे लेकर सातावेदनीयके जघन्य स्थितिबन्ध तक जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है- इस स्थानके प्राप्त होने तक कहना चाहिए। अनन्तर सातावेदनीयका जघन्य अनुभाग जहाँ स्थित है, उससे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ ऊपर जाकर जहाँ उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है, उससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे तीन समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार सातावेदनीयके जघन्य स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे निरन्तर ले जाना चाहिए। यहाँ जिस प्रकार सातावेदनीयका तीव्रमन्द कहा है, उसी प्रकार मनुष्यगति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सातावेदनीय प्रशस्त प्रकृति है, इसलिए इसकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर जघन्य स्थितिबन्ध तक अनुभाग उत्तरोत्तर यथाविधि अधिक प्राप्त होता है। खुलासा इस प्रकार है—सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है । एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें जघन्य अनुभाग उतना ही है । दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें जघन्य अनुभाग उतना ही है । तीन

---

१. आ० प्रतौ ट्ठिदिबंधो उक्क० इति पाठः । २. आ० प्रतौ एगेगा ओघसिद्धा । ३. ता० प्रतौ असाद० दो समाणं अदत्ता तावणिदं याव, आ० प्रतौ असाद०दो समाणा आदत्ता ताव णिद्द याव इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६१. एत्तो असादस्स तिव्वमंदं वत्तइस्सामो। तं जहा—असादस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जह० पदे जह० अणु० थोवो। विदियाए ट्ठि० जह० अणुभा० तत्तियो चेव। तदियाए ट्ठि० जह० अणु० तत्तियो चेव। एवं याव सागरोवमसदपुधत्तं ताव जह० अणु० तत्तियो चेव। तदो याओ ट्ठिदीओ बंधमाणो असादस्स जह० अणु० बंधदि तासिं ट्ठिदी० या उक्कस्सिया ट्ठिदी तिस्से समउत्तराए ट्ठिदीए जह० अणु० अणंत-

---

समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार असातावेदनीयके जघन्य स्थितिबन्धके समान सातावेदनीयका स्थितिबन्ध प्राप्त होने तक जितने स्थितिविकल्प हैं, उन सबका जघन्य अनुभागबन्ध समान है। फिर इससे आगे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। फिर यहाँ अन्तकी स्थितिमें जो जघन्य अनुभाग प्राप्त हुआ है, उससे उत्कृष्ट स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंमें उत्तरोत्तर उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा-अनन्तगुणा है। फिर जहाँ जघन्य अनुभाग छोड़ा था, उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे उत्कृष्ट स्थितिसे एक निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंके बाद दूसरे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरितन निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा-अनन्तगुणा तब तक कहना चाहिए, जब तक असातावेदनीयके जघन्य बन्धके समान सातावेदनीयके बन्धमें एक निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थिति शेष रह जाय। अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है और उससे उपरितन निर्वर्गणा काण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा होकर यहाँ अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागसे असातावेदनीयके जघन्य बन्धके समान सातावेदनीयका स्थितिबन्ध प्राप्त हो जाता है। फिर यहाँ असातावेदनीयके जघन्य बन्धके समान सातावेदीयका जो स्थितिबन्ध प्राप्त हुआ है, उसकी अन्तिम स्थितिसे निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थिति हटकर जो अधस्तन स्थिति है, उसका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है और इससे असातावेदनीयके जघन्य स्थितिबन्धके समान सातावेदनीयके स्थितिबन्धमें एक समय कम करके प्राप्त हुए स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर अधस्तन एक-एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरिम एक-एक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा-अनन्तगुणा कहते हुए वहाँ तक जाना चाहिए, जब जाकर सातावेदनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा प्राप्त हो जावे। पुनः इससे एक निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियाँ ऊपर जाकर वहाँ स्थित स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहना चाहिए। पुनः एक-एक स्थिति कम करते हुए जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थिति का उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा कहना चाहिए। यह सातावेदनीयका तीव्रमन्द है। इसी प्रकार यहाँ मूलमें गिनाई गई अन्य प्रकृतियोंका जानना चाहिए।

६६१. इससे आगे असातावेदनीयका तीव्रमन्द बतलाते हैं। यथा—असातावेदनीयकी जघन्य स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है। द्वितीय स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। तीसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण स्थितियोंके प्राप्त होने तक जघन्य अनुभाग उतना ही है। इससे आगे जिन स्थितियोंको बाँधता हुआ असातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करता है उन स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है, उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गु० । तदो विदियट्ठिदी० [जह०] अणु० अणंतगु० । तदो तदियट्ठि० जह० अणु० अणंतगु० । एवं पलिदो० असंखें०भागमेत्तीओ ट्ठिदीओ णिव्वग्गणकंडयस्स असंखेंज-भागमेत्तीणं जह० अणु० भाणिदूण तदो णियत्तिदव्वं । असादस्स जह० ट्ठि० उ० पदे उ० अणु० अणंतगु० । एवं णिव्वग्गणकंडयमेत्तीणं ट्ठिदीणं उ० अणु० अणंत-गुणाए सेडीए णिरंतरं णेदव्वं । तदो उवरिमाए ट्ठिदीए जिस्से जह० अणुभागे भाणिदूण णियत्तेदूण हेट्ठिमाणं उक्क० अणुभा० भाणिदा तिस्से ट्ठिदीए या सम-उत्तरा ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए जहण्णाणुभा० अणंतगु० । तदो पुण हेट्ठिमादो णिव्वग्गण-कंडयमेत्तीणं ट्ठिदीणं जासिं उक्क० अणु० अणंतगुणाए सेडीए णेदव्वं । तदो पुण उक्कस्से ट्ठिदी० ज० अणु० अणंतगु० । तदो हेट्ठिमाणं णिव्वग्गणकंडयमेत्तीणं ट्ठिदीणं उक्क० अणु० अणंतगु० सेडीए णेदव्वं । एदेण कमेण उवरिमाए ट्ठिदीए एँक्किस्से० जह० अणु० हेट्ठिमाणं असंखेंज्जाणं ट्ठिदीणं उक्क० अणुभा० णेदव्वा ताव याव ओघ-जहण्णाणुभागियाणं उक्क० ट्ठिदी० उक्क०[1] अणुभागं पत्तो त्ति । ओघजहण्णाणुभागिया णाम कस्स सण्णा ? याओ ट्ठिदीओ बंधमाणो असादस्स जहण्णअणुभागे बंधदि तदो एसा ट्ठिदी ओघजहण्णाणुभागिया णाम सण्णा । तीए ट्ठिदीए ओघजहण्णाणु-भागियसण्णाए याधे ओघजहण्णाणुभागियाणं चरिमाए ट्ठिदीए उ० अणु० अणंतगु० ताधे ओघं जह० अणु०याणं उवरि णिव्वग्गणकंडयमेत्तीणं ट्ठिदीणं जह० अणुभागा भणिदा होंति । एँत्तो पाए उवरिमाणं अभणिदाणं ट्ठिदीणं जह० ट्ठिदी० जह० अणु०

है । उससे दूसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे तीसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियाँ जो कि निर्व-र्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, उनका जघन्य अनुभाग कह कर वहाँ अन्तमें जो स्थिति प्राप्त हो, उसके जघन्य अनुभागसे लौटकर असातावेदनीयकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डक मात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे निरन्तर ले जाना चाहिए । अनन्तर आगेकी जिस स्थितिका जघन्य अनुभाग कहकर और लौटकर अधस्तन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहा है, उस स्थितिसे जो एक समय अधिकवाली स्थिति है, उस स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे अधस्तन निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए । इससे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे अधस्तन निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियों का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए । इस क्रमसे उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और अधस्तन असंख्यात स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग ओघ जघन्य अनुभागवाली स्थितियोंमेंसे उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । ओघ जघन्य अनुभागवाली स्थिति यह किसकी संज्ञा है ? जिन स्थितियोंका बन्ध करनेवाला जीव असातावेदनीय के जघन्य अनुभागका बन्ध करता है, अतः उस स्थितिकी ओघ जघन्य अनुभागवाली यह संज्ञा है । ओघ जघन्य अनुभाग संज्ञावाली उस स्थितिके जिस स्थानमें ओघ जघन्य अनुभागवाली स्थितियोंमें से अन्तिम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है, वहाँ ओघ जघन्य अनुभागवाली उपरिम निर्वर्गणाकाण्डमात्र स्थितियोंका जघन्य अनुभाग कहा गया है । इससे आगे नहीं कही गई उपरिम स्थितियोंमें से

१. ता० प्रतौ ओघजहण्णाणुभागियाणं उक्क० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंतगु० । हेट्ठिमाणं ऍक्किस्से ट्ठिदीए उक्क० अणुभा० अणंतगु० । एदेण कमेण ऍक्केक्का ट्ठिदी ओगसिदा आगदं[1] याव असादस्स उक्क० ट्ठिदीए जहण्णपदे जह० अणु० अणंतगु० ताधे असादबंध० ट्ठिदी० णिट्ठावणियाणि णिव्वग्गणकंडयमेंत्तीणं ट्ठिदीणं उक्क० अणु० ण भाणिदव्वा । सेसाणं सव्वासिं ट्ठिदीणं उक्क० अणु० भणिदा । तदो यासिं ट्ठिदीणं उक्कस्सअणुभा० ण भणिदा तासिं ट्ठिदीणं जहण्णिया ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए उक्क० अणु० अणंतगु० । तदो समउत्तराए ट्ठिदीए उक्क० अणु० अणंतगु० । विसमउत्तराए ट्ठिदीए उक्क० अणु० अणंतगु० । तिसमउ० ट्ठि० उ० अणु० अणंतगु० । एवं अणु०बंध० उक्क० अणु० अणंतगु० ताव याव उक्क० ट्ठि० उ० पदे उ० अणु० अणंतगु० । णिरयगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-णिरयाणु०-अप्पसत्थ०-थावर-सुहुम-अपज्ज०-साधार०—अथिर-असुभ-दूभग—दुस्सर-अणादें०—अजस० एवं [अ] सादभंगो २८ ।

जघन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे अधस्तन स्थितियोंमें से एक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस क्रमसे एक-एक स्थिति कम होती हुई जब असातावेदनीय की उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, यह स्थान प्राप्त होता है तब जाकर असातावेदनीयकी बन्धस्थितियों द्वारा निष्ठापित निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है; शेष सब स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहा गया है। इसलिए जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, उन स्थितियोंमें जो जघन्य स्थिति है उस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिकवाली स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय अधिकवाली स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय अधिकवाली स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है, इस स्थानके प्राप्त होने तक अनुभागबन्धकी अपेक्षा उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा जानना चाहिए। इस प्रकार असातावेदनीयके समान नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्तिका तीव्रमन्द जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ पहले असातावेदनीयकी जघन्य स्थितिसे लेकर सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग समान कहा है। इससे आगे निर्वर्गणाकाण्डककी असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग प्रत्येक स्थितिकी अपेक्षा अनन्तगुणा कहा है। फिर यहाँ अन्तमें प्राप्त हुई स्थितिके जघन्य अनुभागसे जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहा है। फिर इस जघन्य स्थितिके आगे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंमें प्रत्येक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा-अनन्तगुणा कहा है। इस प्रकार जघन्य स्थितिसे लेकर निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहकर यहाँ अन्तकी स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे जिस स्थितिके जघन्य अनुभागसे लौटकर जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहा था, उस स्थितिसे अगली स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। पुनःइससे अधस्तन दूसरे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। पुनः इससे उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और अधस्तन निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा होता हुआ ओघ जघन्य अनु-

१. आ० प्रतौ ओघसिद्धा आगदं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६२. एत्तो तिरिक्खगदिणामाए तिव्वमंदं वत्तइस्सामो। तं जहा—सत्तमाए पुढवीए णेरइगस्स तिरिक्खगदिणामाए सव्वजहण्णयं ट्ठिदिं बंधमाणस्स जह० ट्ठि० ज० पदे[1] जह० अणु० थोवा। विदिया० ट्ठिदी० जह० अणु० अणंतगु०। एवं जह० अणु० अणंतगुणाए सेडीए गदा याव ताव णिव्वग्गणकंडयमेत्तीओ ट्ठिदीओ। तदो ज० ट्ठि० उ० पदे० उक्क० अणु० अणंतगु०। तदो यदो णियत्तो तदो समउत्तराए ट्ठिदी० जह० अणु० अणंतगु०। विदिया० ट्ठिदी० उक्क० अणु० अणंतगु०। एवं णिव्वग्गणकंडयमेंत्तेण अणंतरेण उवरिमाए ट्ठिदीए जह० अणुभा० हेट्ठिमाए ट्ठिदीए उक्क० अणु०। एवं णीदं याव ताव अब्भव०पाओग्गजहण्णयस्स ट्ठिदिबंधस्स हेट्ठादो समऊणाए ट्ठिदि त्ति। तदो अब्भव०पाओग्गजहण्णट्ठिदिबंधस्स हेट्ठा णिव्वग्गण-कंडयमेंत्तीणं ट्ठि० उक्क० अणु० ण भणिदा। सेसं सव्वं भणिदं। हेट्ठिमाणं ट्ठिदीणं एदाओ च हेट्ठिमा० ट्ठिदीओ ण सव्वाओ णिरंतराओ संपत्तीदो। णवरि परूवणाए दु णिरंतराणि भणिदं संपत्तीदो। अब्भव०पाओग्ग० हेट्ठा याणि ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि ताणि

भागवाली स्थितियोंमें से उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागके प्राप्त होने तक गया है। पुनः आगे जिस स्थिति तक जघन्य अनुभाग कहा गया है, उससे अगली स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। तथा इससे अधस्तन जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहा गया है, उससे अगली स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार असातावेदनीय की उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य अनुभागके अनन्तगुणे प्राप्त होने तक जानना चाहिए। यहाँ सब स्थितियोंका जघन्य अनुभाग तो कहा जा चुका है, पर अन्तकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, इसलिए उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य अनुभागसे जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, उन स्थितियोंमें से जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहना चाहिए। पुनः इससे आगेकी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहना चाहिए। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागके प्राप्त होने तक यही क्रम जानना चाहिए। इस प्रकार असातावेदनीयकी अपेक्षा तीव्रमन्दका विचार किया। इसी प्रकार मूलमें गिनाई नरकगति आदि अन्य प्रकृतियोंकी अपेक्षा तीव्रमन्दका विचार होनेसे उनका कथन असातावेदनीयके समान जाननेकी सूचना की है।

६६२. आगे तिर्यञ्चगति नाम कर्मके तीव्रमन्दको बतलाते हैं। यथा—सातवीं पृथिवीमें तिर्यञ्चगति नामकर्मकी सबसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकीके जघन्य स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है। उससे दूसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंके प्राप्त होने तक जघन्य अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणि-रूपसे गया है। उससे जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जहाँसे लौटे हैं, उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दूसरी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अभव्य प्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धके पूर्व एक समय कम स्थितिके प्राप्त होने तक निर्वर्गणाकाण्डकमात्रके अन्तरालसे उपरिम स्थितिका जघन्य अनुभाग और अधस्तन स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग इसी क्रमसे ले जाना चाहिए। यहाँ अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धके पूर्वकी निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, शेष सब कहा गया है। अधस्तन स्थितियोंमेंसे ये सब अधस्तन स्थितियाँ निरन्तर नहीं प्राप्त होती हैं। इतनी विशेषता है कि प्ररूपणामें इनकी निरन्तर प्राप्ति कही गई

१. आ० प्रतौ जह० ट्ठि० पदे इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पलि० असं०भा० सेवियं पुण परूवणं कादूण[1] णिरंतरं याव अब्भव०पाओग्गज० ट्ठि० बं० समऊणे त्ति। तदो अब्भव०पाओ०जहण्णादो ट्ठिदिबं०णिव्वग्गण[2]-कंडयमेत्तीओ ट्ठिदीओ ओसक्किदूण या ट्ठिदी तिस्से ट्ठि० उक्क० अणुभागेहिंतो अब्भव०पाओग्गजह० ट्ठि० जह० अणु० अणंतगु०। तदो समउत्तराए ट्ठिदीए जह० अणु० तत्तिया चेव। विसमउ० ट्ठि०[3] ज० अणु० तत्तिया चेव। तिसमउत्तराए ट्ठिदीए तत्तिया चेव। एवं सागरोवमसदपुधत्तमेत्तीणं तुल्लो[4] जह० अणु० बं०। तदो यासिं ट्ठिदीणं तुल्लो जह० तासिं णाम सण्णा परियत्तमाणजहण्णाणुभाग-बंधपाओग्गं णाम। तदो परियत्तमाणजह० बं० पाओग्गा० उक्क० ट्ठिदीदो जह० अणुभागेहिंतो समउ० ट्ठि० ज० अणु० अणंतगु०। विसमउ० ज० अणु० अणंतगु०। तिसम० ट्ठि० जह० अणंतगु०। एवं असंखेंज्जट्ठिदि० णिव्वग्गणकंडयस्स असंखेंज्जदि-भागो एत्तियमेंत्तीणं ट्ठिदीणं यासिं जह० अणंतगु० सेडीए णेदव्वा। तदो णियत्ति-दव्वं अब्भव०पाओग्गजहण्णं ट्ठिदिबंधस्स हेट्ठादो णिव्वग्गणकंडय० तासिं जा ज० ट्ठिदी तिस्से उ० अणुभा० अणंतगु०। तदो समउ० ट्ठि० उ० अणंतगु०। दुसमउ० ट्ठि० उ० अणुभा० अणंतगु०। तिसमउ० ट्ठि० उ० अणु० अणंतगु०। एवं णीदं याव ताव अब्भव०पाओ० ज० ट्ठि० समऊणा त्ति। तदो अब्भव०पाओ० ज० बंध-

हैं। अभव्यप्रायोग्य स्थितिबन्धसे अधस्तन जो स्थितिबन्धस्थान हैं, वे पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं; परन्तु अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिके प्राप्त होने तक निरन्तर रूपसे प्ररूपणा की है। फिर अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धसे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ पीछे जाकर जो स्थिति है, उस स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। दो समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। तीन समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभागबन्ध तुल्य है। यहाँ जिन स्थितियोंका जघन्य अनुभाग तुल्य है, उनकी परिवर्तमान जघन्यानुभागबन्धप्रायोग्य संज्ञा है। फिर परिवर्तमान जघन्य अनुभागबन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें से उत्कृष्ट स्थितिके अनुभागसे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। दो समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। तीन समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार असंख्यात स्थितियों तक जानना चाहिए। ये असंख्यात स्थितियाँ निर्वर्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इतनी मात्र स्थितियोंका जघन्य अनु-भाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। फिर लौटकर अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थिति-बन्धसे अधस्तन जो निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ हैं उनमेंसे जो जघन्य स्थिति है, उसका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिसे एक समय कम स्थितिके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। फिर अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धसे एक

१. ता० प्रतौ पुणं पमाणं कादूण इति पाठः। २. ता० प्रतौ ट्ठिबं[धा]दो णिव्वग्गण– इति पाठः। ३. ता० प्रतौ विसमऊ० ट्ठि० इति पाठः। ४. आ० प्रतौ तुल्ला इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समऊणादो उक्कस्सए हि अणुभागेहिंतो यदो ट्ठि० ज० भणिदूण णियत्तो तत्तो समउ० जह० अणंतगु०। तदो पुण जहण्णाणुभागबंधपाओग्गाणं ज० उ० अणु० अणंतगु०। समउ०[1] उ० अणु० अणंत०। बिसमउ० उ० अणु० अणंतगु०। तिसमउ० उ० अणु० अणंतगु०। एवं णिव्वग्गणकंडयमेत्तीणं ट्ठिदीणं उ० अणु० अणंतगु० सेडीए णेदव्वं। तदो पुणो जिस्से ट्ठि० ज० अणु० भणिदूण णियत्ता तदो समउ० ज० अणंतगु०। तदो परियत्तमाण [जहण्णाणुभाग] बंधपाओग्गाणं[2] ट्ठिदीणं णिव्वग्गण-कंडयमेत्तं अब्भुस्सरिदूण या ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए उ० अणु० अणंतगु०। तदो णिव्वग्गणकंडयमेत्तीणं उ० अणु० अणंतगु० सेडीए णेदव्वा। एदेण कमेण उवरिमाणं ट्ठिदीणं एँक्किस्से वि० ज० बं०पाओग्गाणं च ट्ठिदीणं णिव्वग्गण०मेत्तीणं ट्ठिदीणं उक्क० अणु० अणंतगु० सेडीए णेदव्वा याव ज० अणु० बंधपाओग्गाणं उक्कस्सियं ट्ठिदिं पत्तो त्ति। एदेण कमेण ज० अणु० बं०पाओं० ट्ठि० उवरि याओ ट्ठिदीओ तासिं ट्ठिदीणं णिवग्गण०मेत्तीणं ज० भणिदाणं पुण ······भणदि। तदो ज० अणु० बं०पाओग्गाणं उक्कस्सगे यत्तो ट्ठिदीदो उक्कस्सगेहि अणुभागेहिंतो उवरि यासिं ट्ठिदीणं जह० ण भणिदा तासिं ट्ठिदीणं या सव्वज० ट्ठिदी तिस्से ट्ठि० ज० अणु० अणंतगु०। हेट्ठदो एँक्किस्से ट्ठि० उ० अणु० अणंतगु०। तदो जम्हि ट्ठिदो जह० तदो समउ० ज० अणंतगु०। हेट्ठादो

समय कम स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे, जिस स्थितिका जघन्य अनुभाग कहकर लौटे थे, उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जघन्य अनुभागबन्ध-प्रायोग्य स्थितियोंमें जो जघन्य स्थिति है, उसका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्त-गुणा है। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। फिर जिस स्थितिका जघन्य अनुभाग कहकर लौटे थे, उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर परिवर्तमान जघन्य अनुभागबन्ध-प्रायोग्य स्थितियोंमेंसे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ आगे जाकर जिस स्थितिका उत्कृष्ट अनु भाग अनन्तगुणा कहा था, उससे आगेकी निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। इस क्रमसे जघन्य बन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक उपरिम स्थितियोंमेंसे एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और जघन्य बन्ध-प्रायोग्य स्थितियोंमेंसे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूप-से ले जाना चाहिए। इस क्रमसे जघन्य बन्धप्रायोग्य स्थितियोंसे जो उपरिम स्थितियाँ हैं, उन स्थितियोंमें से निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका जघन्य अनुभाग कहा है, परन्तु उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा है; इसलिए जघन्य अनुभागबन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है उस स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे, आगे जिन स्थितियोंका जघन्य अनुभाग नहीं कहा है, उन स्थितियोंमें जो सबसे जघन्य स्थिति है उस स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थिति-का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जिस स्थितिमें जघन्य अनुभाग स्थित है, उससे एक

१. ता० आ० प्रत्योः समउ० इति स्थाने समऊ० इति पाठः। अग्रेऽपि 'उ' स्थाने 'ऊ' दृश्यते।
२. ता० प्रतौ परियत्तमाणबंधपाओग्गाणं, आ० प्रतौ परियत्तमाण······बंधपाओग्गाणं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऍक्किस्से ट्ठि० उ० अणु० अणंतगु० । इतरत्थ[1] ज० अणंत० । हेट्ठादो ऍक्किस्से ट्ठि० उ० अणंतगु० । एवं णीदं याव तिरिक्खगदिणामाए उक्क० ट्ठिदीए ज० अणु० अणंतगु० । तदो पलि० असं०भागमेंत्तं ओसक्किदूण जम्हि ट्ठिदा उक्कस्सा तदो समउत्तराए ट्ठि० उ० अणु० अणंतगु० । विसम० उ० अणु० अणंतगु० । एवं अणुभागबंध० अणंत० याव तिरिक्खगदिणामाए उक्कस्सियाए ट्ठि० उक्क०पदे उक्क० अणु० अणंतगु० । एवं तिरिक्खाणु०-णीचा० ।

६६३. एत्तो[2] ओरालिय० तिव्वमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा—ओरालियसरीरणामाए उक्कस्सियाए ट्ठि० ज० ट्ठिदी० ज० अणु० थोवा । समऊ० ज० अणु० अणंतगु० । विसमऊ० ज० अणु० अणंतगु० । एवं पलि० असं० ज० अणंतगु० । तदो उक्कस्सियाए ट्ठिदी० उ० अणु० अणंत० । तदो जम्हि ट्ठिदा ज० ट्ठि० ज० अणु० तदो समऊ० अणंत० । उक्कस्सियादो ट्ठि० समऊ० ट्ठि० उक्क० अणु० अणंतगु० । तदो हेट्ठादो ऍक्किस्से ट्ठि० ज० अणंत० । तदो उक्कस्सियादो विसम० उ० ट्ठि० उक्क० अणु० अणंत० । एवं हेट्ठदो ऍक्किस्से जह० उवरिमाए ऍक्किस्से ट्ठि० उ० अणु०

समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार तिर्यञ्चगतिकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है,इस स्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। पुनः यहाँसे पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण पीछे हटकर जिस स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है,उससे एक समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार तिर्यञ्चगतिकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है- इस स्थानके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी अपेक्षासे जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ मूलमें किस स्थितिका जघन्य और किस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग कितना है, इसका खुलासा किया ही है। तथा पहले हम मतिज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके समय ही खुलासा कर आये हैं, अतः यहाँ विशेष नहीं लिख रहे हैं। इसी प्रकार आगे भी जान लेना चाहिए।

६६३. आगे औदारिकशरीरका तीव्रमन्द बतलाते हैं। यथा—औदारिकशरीरकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है। उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियों तक उत्तरोत्तर एक-एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार यहाँ अन्तमें जो स्थिति प्राप्त हो, उसके जघन्य अनुभागसे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जिस स्थितिमें जघन्य अनुभाग स्थित है,उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिसे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिसे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरिम एक स्थितिका उत्कृष्ट

---

१. ता० प्रतौ इतरथा इति पाठः। २. आ० प्रतौ तिरिक्खाणु० एत्तो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगेगे वा सिज्झमाणा गदा ताव याव ओरालि० जहण्णियाए ट्ठि० जहण्ण० अणु० अणंत० । तदो जहण्णादो ट्ठिदीदो पलि० असं०मेत्तीओ ट्ठिदी० अब्भुस्सरिदूण यम्हि ट्ठिदा उक्कस्सं तदो समऊ० ट्ठि० उ० अणु० अणंत० । बिसमऊ० ट्ठि० उक्क० अणु० अणंत० । तिसमऊ० ट्ठि० उ० अणंत० । एवं ताव णीदं याव ओरालि० जहण्णियाए ट्ठि० उ० पदे उ० अणु० अणंत० । एवं पंचसरीर-तिण्णंअंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-आदाउज्जो०-णिमि०-तित्थ० ओरा०भंगो०[1] ।

६६४. एत्तो पंचिं० तिव्वमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा–यथा वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ बंधमाणस्स उक्क० ट्ठिदी० जहण्णपदे जह० अणु० थोवा । समऊ० ट्ठि० ज० अणंत० । बिसम० ज० अणंत० । तिसम० ज० अणंत० । एवं णिव्वग्गणकंडयमेत्तीणं ट्ठि० ज० अणु० अणंत० सेडीए णेदव्वा । तदो उक्कस्सियाए ट्ठि० उ० पदे उक्क० अणु० [अणंत०] । तदो णिव्वग्गणकंडयमेत्तीओ ट्ठिदीओ ओसक्किदूण जम्हि ट्ठिदा जह० तदो समऊ० जह० अणु० अणंत० । तदो उक्कस्सियादो ट्ठि० समऊ० ट्ठि० उक्क० अणु० अणंत० । तदो हेट्ठादो एक्किस्से ट्ठि० ज० अणंत० । तदो उक्कस्सियाए ट्ठिदी०

अनुभाग एक-एक स्थितिमें प्राप्त होता हुआ औदारिकशरीरकी जघन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है–इस स्थानके प्राप्त होने तक गया है । फिर जघन्य स्थितिसे पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितियाँ ऊपर जाकर जिस स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है,उससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे तीन समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार औदारिकशरीरकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है–इस स्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । इस प्रकार पाँच शरीर, तीन आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिका तीव्रमन्द औदारिकशरीरके समान जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ औदारिकशरीरका तीव्र-मन्द बतलाया है । यह प्रशस्त प्रकृति है, इसलिए उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य पदकी अपेक्षा जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक बतलाया है । आगे जिस क्रमसे जिस स्थितिमें जघन्य और उत्कृष्ट अनुभाग प्राप्त होता है, उसका स्पष्टीकरण मूलमें किया ही है ।

६६४. आगे पञ्चेन्द्रियजातिके तीव्रमन्दको बतलाते हैं । यथा—बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिका बन्ध करनेवालेके उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है । उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए । इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियोंमेंसे अन्तिम स्थितिका जो जघन्य अनुभाग प्राप्त हुआ है,उससे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियाँ नीचे जाकर जिस स्थितिमें जघन्य अनुभाग स्थित है, उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे उत्कृष्ट स्थितिसे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे नीचेकी एक स्थितिका

---

१. ता० प्रतौ तित्थ० ओरा० । एत्तो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुसमऊ० उ० अणु० अणंत०। तदो हेट्ठदो एक्किस्से ट्ठि० ज० अणु० अणंत०। तदो उक्कस्सियादो तिसमऊ० ट्ठि० उक्क० अणु० अणंत०। एवं हेट्ठदो ऍक्किस्से ट्ठि० ज० अणंत०। उवरि ऍक्किस्से ट्ठि० उ० अणंत०। एवं ओघसिज्झमाणं ताव गदा याव अट्ठारससागरोवमकोडाकोडीओ समउत्तरा त्ति। अट्ठारसण्णं सागरोवमकोडाकोडीणं उवरि समउत्तरा ट्ठिदिं आदिं कादूण णिव्वग्गण०मेंत्तीणं ट्ठिदीणं उक्कस्सा अणुभागा ण भणिदा। उवरि सेसं सव्वं भणिदं। तदो अट्ठारसण्णं साग० पडिपुण्णं ज० ज० अणु० अणंत०। तदो समऊ० ज० अणु० तत्तिया चेव। विसम० ज० तत्तिया चेव। तिसम० ज० तत्तिया चेव। एवं याव जहण्णियाए एइंदियणामाए ट्ठिदिबंधो ताव तत्तिया चेव। तदो परियत्तमाणजहण्णाणुभागबंधपाओग्गाणं जहण्णियाए ट्ठिदी० जह० अणुभागेहिंतो तदो समऊ० ट्ठिदीए ज० अणु० अणं०। विसम० ज० अणंत०। तिसम० ज० अणंत०। एवं असंखेंज्जाओ ट्ठि० णिव्विसेदूण णिव्वग्गणकंडयस्स असंखेंज्जदिभागो तत्तियमेंत्तीणं ट्ठिदीणं ज० अणंत० सेडीए णेदव्वा। तदो अट्ठारसण्णं सागरो० उवरि यासिं ट्ठिदीणं उक्कस्सिया अणुभागा ण भणिदा तासिं सव्वुक्कस्सियाए ट्ठिदीए उ० अणु० अणंत०। समऊ० उक्क० अणु० अणंत०। विसमऊ० उक्क० अणु० अणंत०। तिसमऊ० उक्क० अणु० अणंत०। एवं याव अट्ठारसकोडाकोडीणं समउत्तरादो त्ति ताव उक्क० अणु० अणंत० सेडीए णेदव्वं। तदो अट्ठारस-

---

जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिसे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे नीचेकी एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिसे तीन समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार नीचेकी एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है और ऊपरकी एक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार ओघके अनुसार सिद्ध होता हुआ एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक अनुभाग गया है। यहाँ एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितियोंसे लेकर ऊपरकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा है; ऊपरका शेष सब अनुभाग कहा है। आगे पूरे अठारह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण अन्तिम स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। उससे दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। उससे तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार एकेन्द्रियजाति नामकर्मके जघन्य स्थितिबन्धके समान स्थितिबंधके प्राप्त होने तक जघन्य अनुभाग उतना ही है। आगे परिवर्तमान जघन्य अनुभागबन्ध योग्य प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके जघन्य अनुभागसे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात स्थितियोंका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। उससे अठारह कोड़ाकोड़ी सागरके ऊपर जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, उनमेंसे सर्वोत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय कम उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोडाकोडीणं समउत्तराए ट्ठि० उक्कस्सएहि अणुभागेहिंतो परियत्तमाणजहण्णाणुभाग-बंधपाओग्गाणं ट्ठिदीणं हेट्ठादो याओ ट्ठिदीओ जहण्णाणुभागो भणिदल्लोगाओ तासिं या जहण्णिया ट्ठिदी तिस्से हेट्ठिमाणंतराए ज० अणु० अणंत०। तदो अट्ठारस-साग०कोडाकोडी० उ० अणु० अणंत०। तदो पुण णिव्वग्गण०मेँत्तीणं उ० अणु० अणंतगु० सेडीए णिरंतरं णेदव्वं। तदो पुण हेट्ठदो एँक्किस्से ट्ठि० ज० अणंत०। उवरि णिव्वग्ग०मेँत्तीणं ट्ठि० उ० अणु० अणंत०। एदेण कमेण हेट्ठादो एँक्किस्से ट्ठि० ज० अणुभा० उवरिमाणं णिव्वग्गण०मेँत्तीणं उक्क० अणुभा० अणंतगु०। एवं ताव याव परियत्तमाणजहण्णाणुभागपाओग्गा० जहण्णियाए ट्ठि० उक्क० पदे उ० अणु० अणंत०। ताधे तिस्से ट्ठिदीए हेट्ठादो याओ ट्ठिदीओ तासिं णिव्वग्ग०मेँत्तीणं जहण्णाणुभागा भणिदा होंति। उक्कस्सगे[1] अणुभागेहिंतो एइंदियणामाए जहण्णादो ट्ठिदिबंधादो णिव्व-ग्गणकंडयमेँत्तीओ ओसक्किदूण या ट्ठिदी तिस्से ट्ठिदीए ज० पदे ज० अणु० अणंत०। तदो एइंदियणामाए जहण्णगादो ट्ठिदिबंधादो समऊणाए ट्ठिदीए उ० अणु० अणंत०। तेण परं हेट्ठिमाए ट्ठि० जहण्णाणुभा० उवरिमा० ट्ठि० उ० अणु० एगेगं ओघसिज्झमाणएइंदियणामाए जहण्णगादो ट्ठिदीदो आढत्ता ताव णीदं याव पंचिंदिय-णामा० जहण्णियाए ट्ठि० पदे जह० अणु० अणंत०। तदो णिव्वग्ग०कंडयमेँत्तीओ ट्ठि०

स्थितियोंमें अन्तिम स्थितिके प्राप्त होने तक उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना जाहिए। फिर एक समय अधिक अठारह कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितियोंमेंसे अन्तिम स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे परिवर्तमान जघन्य अनुभागबन्धके प्रायोग्य स्थितियोंके नीचे जिन स्थितियोंका जघन्य अनुभाग कहा है, उनमें जो जघन्य स्थिति है, उससे नीचेकी अनन्तर स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अठारह कोडाकोडी सागरप्रमाण अन्तिम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर उससे निर्वर्गणा काण्डक-प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। उससे पुनः नीचेकी एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे ऊपरकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस क्रमसे नीचेकी एक स्थितिका और ऊपरकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार परिवर्तमान जघन्य अनुभागबंधप्रायोग्य जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है-इस स्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। फिर इस स्थितिसे नीचे जो स्थितियाँ हैं, उनमेंसे निर्वर्गणा-काण्डकप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग कहा गया है। पुनः जिसका अन्तमें उत्कृष्ट अनु-भाग कहा है, उससे एकेन्द्रियजाति नामकर्मके जघन्य स्थितिबन्धसे निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियाँ हटकर जो स्थिति है, उस स्थितिका जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एकेन्द्रिय जातिनामकर्मके जघन्य स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे आगे नीचेकी स्थितिका जघन्य अनुभाग और ऊपरकी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग इस प्रकार एक-एक स्थितिका ओघके अनुसार सिद्ध होता हुआ एकेन्द्रियजाति नामकर्मकी जघन्य स्थितिबंधसे लेकर पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मकी जघन्य स्थितिका जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है-इस स्थान के प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। फिर निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण

१. ता० प्रतौ होंति ट्ठिदीए तदा एइंदियणामाए जहण्णगादो ट्ठिदिबंधादो उक्कस्सगे, आ० प्रतौ होंति ट्ठिदीए एइंदियणामाए जहण्णगादो ट्ठिदिबंधादो उक्कस्सगे इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब्भुस्सरिदूण जम्हि ट्ठिदा उ० तदो समऊणाए ट्ठि० उ० अणु० अणंत० । विसम० उ० अणु० अणंत० । तिसम० उ० अणु० अणंत० । एवं याव पंचिंदियणामाए जहण्णियाए ट्ठिदीए उ० अणु० अणंतगुणो त्ति । यथा पंचिं० णामाए तथा बादर-पज्जत्त-पत्ते०-तस० तिव्वमंददा कादव्वा । एवं तिव्वमंददा त्ति समत्तमणियोगद्दारं ।

एवं अज्झवसाणसमुदाहारो समत्तो

जीवसमुदाहारो

६६५. जीवसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि—एगट्ठाणजीवपमाणाणुगमो णिरंतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमो सांतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमो णाणाजीव-कालपमाणाणुगमो वड्ढिपरूवणा यवमज्झपरूवणा फोसणपरूवणा अप्पाबहुगे त्ति ।

६६६. एयट्ठाणजीवपमाणाणुगमेण ऍक्कॅक्कम्हि ट्ठाणम्हि जीवा कॅत्तिया ? अणंता । णिरंतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमेण जीवेहि अविरहिदाणि ट्ठाणाणि । सांतरट्ठाणजीवपमाणाणु-गमेण जीवेहि णिरंतरट्ठाणाणि । णाणाजीवकालपमाणाणुगमेण ऍक्कॅक्कम्हि ट्ठाणम्हि णाणा जीवा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा ।

६६७. वड्ढिपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अणुयोगद्दाराणि—अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा चेदि । अणंतरोवणिधाए जहण्णए अज्झवसाणट्ठाणे जीवा थोवा । विदिए अज्झव-साणट्ठाणे जीवा विसेसाधिया । तदिए अज्झवसाणट्ठाणे जीवा विसेसाधिया । एवं

स्थितियाँ ऊपर जाकर जिस स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है, उससे एक समय कम स्थिति का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे तीन समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्मकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है- इस स्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए । यहाँ जिस प्रकार पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मका कथन किया है,उसी प्रकार बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और त्रस नामकर्मकी तीव्र-मन्दताका कथन करना चाहिए ।

इस प्रकार तीव्रमन्दता नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

इस प्रकार अध्यवसानसमुदाहार नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

जीवसमुदाहार

६६५. जीवसमुदाहारका प्रकरण है । उसमें ये आठ अनुयोगद्वार होते हैं—एकस्थान-जीवप्रमाणानुगम, निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, नानाजीवकाल-प्रमाणानुगम, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा और अल्पबहुत्व ।

६६६. एकस्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा एक-एक स्थानमें जीव कितने हैं? अनन्त हैं । निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा जीवोंके विरहसे रहित सब स्थान हैं । सान्तर-स्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा जीवोंके अन्तरसे रहित सब स्थान हैं । नानाजीवकालप्रमाणा-नुगमकी अपेक्षा एक-एक स्थानमें नाना जीवोंका कितना काल है ? सर्वदा है ।

६६७. वृद्धिप्ररूपणाकी अपेक्षा उसमें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा । अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा जघन्य अध्यवसानस्थानमें जीव सबसे स्तोक हैं । द्वितीय अध्यवसानस्थानमें जीव विशेष अधिक हैं । तृतीय अध्यवसानस्थानमें जीव विशेष अधिक हैं । इस प्रकार यवमध्यके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थानमें जीव विशेष अधिक, विशेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसेसाधिया विसेसाधिया याव यवमज्झ त्ति । तेण परं विसेसहीणा विसेसहीणा याव उक्कस्सिए अज्झवसाणट्ठाणे त्ति ।

६६८. परंपरोवणिधाए जहण्णए अज्झवसाणट्ठाणे जीवेहिंतो तदो असंखेँज्जा लोगा गंतूण दुगुणवड्डिदा । एवं दुगुणवड्डिदा दुगुणवड्डिदा याव यवमज्झं । तेण परं असंखेँज्जा लोगं गंतूण दुगुणहीणा । एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा याव उक्कस्सअज्झवसाणट्ठाणं ति ।

६६९. एयजीवअज्झवसाणदुगुणवड्डि–हाणिट्ठाणंतरं असंखेँज्जा लोगा । णाणाजीव-अज्झवसाणदुगुणवड्डि-हाणिट्ठाणंतराणि आवलि० असंखें० । णाणाजीवेहि दुगुणवड्डि-हाणि० थोवाणि । एयजीवअज्झवसाणदुगुणवड्डि-हाणिट्ठाणंतराणि असंखेँज्जगुणाणि ।

६७०. यवमज्झपरूवणदाए ट्ठाणाणं असंखेँज्जदिभागे यवमज्झं । यवमज्झस्स हेट्ठादो ट्ठाणाणि थोवाणि । उवरिं ट्ठाणाणि असंखेँज्जगुणाणि ।

६७१. फोसणपरूवणदाए तीदे काले एयजीवेण उक्कस्सए अज्झवसाणट्ठाणे फोसण-कालो थोवो । जहण्णए अज्झवसाणट्ठाणे फोसणकालो असंखेँज्जगुणं । कंडयस्स फोसण-कालो तत्तियो चेव । यवमज्झे फोसणकालो असंखेँज्जगुणं । कंडयस्स उवरिं फोसण-कालो असंखेँज्जगुणं । यवमज्झस्स उवरिं कंडयस्स हेट्ठदो फोसणकालो असंखेँज्जगुणं । कंडयस्स उवरिं यवमज्झस्स हेट्ठदो फोसणकालो तत्तियो चेव । यवमज्झस्सुवरिं फोसण-कालो विसेसाधिओ । कंडयस्स हेट्ठदो फोसणकालो विसेसाधियो । कंडयस्सुवरिं फोसणकालो विसेसाधियो । सव्वेसु वि ट्ठाणेसु फोसणकालो विसेसाधिओ ।

अधिक हैं । इससे आगे उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानके प्राप्त होने तक जीव विशेष हीन, विशेष हीन हैं ।

६६८. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा जघन्य अध्यवसानस्थानमें जो जीव हैं, उससे असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाने पर वे दूने होते हैं । इस प्रकार यवमध्यके प्राप्त होने तक दूने-दूने जीव होते हैं । उससे असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर वे द्विगुणहीन होते हैं । इस प्रकार उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानके प्राप्त होने तक वे द्विगुणहीन द्विगुणहीन होते हैं ।

६६९. एकजीवअध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यात लोकप्रमाण हैं । नाना-जीवअध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । नानाजीव-अध्यवसानस्थानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं । इनसे एकजीवअध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर प्रत्येक असंख्यातगुणे हैं ।

६७०. यवमध्यप्ररूपणाकी अपेक्षा स्थानोंके असंख्यातवें भाग जाकर यवमध्य होता है । यवमध्यके अधस्तन स्थान स्तोक हैं और उपरिम स्थान असंख्यातगुणे हैं ।

६७१. स्पर्शनप्ररूपणाकी अपेक्षा अतीत कालमें एक जीवका उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानमें स्पर्शनकाल स्तोक है । इससे जघन्य अध्यवसानस्थानमें स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है । काण्डक का स्पर्शनकाल उतना ही है । इससे यवमध्यमें स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है । इससे काण्डकके ऊपर स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है । इससे यवमध्यके ऊपर और काण्डकसे नीचे स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है । इससे काण्डकके ऊपर और यवमध्यसे नीचे स्पर्शनकाल उतना ही है । इससे यवमध्यके ऊपर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है । इससे काण्डकके नीचे स्पर्शनकाल विशेष अधिक है । इससे काण्डकके ऊपर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है । इससे सब स्थानोंमें स्पर्शन काल विशेष अधिक है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६७२. अप्पाबहुगे त्ति उक्कस्सए अज्झवसाणट्ठाणे जीवा थोवा। जहण्णए अज्झवसाणट्ठाणे जीवा असंखेँज्जगुणा। कंडयजीवा तत्तिया चेव। यवमज्झे जीवा असंखेँज्जगुणा। कंडयस्सुवरि जीवा असंखेँज्जगुणा। यवमज्झस्सुवरिं कंडयस्स हेट्ठदो जीवा असंखेँज्जगुणा। कंडयस्सुवरिं यवमज्झस्स हेट्ठदो जीवा तत्तिया चेव। यवमज्झस्सुवरिं जीवा विसेसा०। कंडयस्स हेट्ठदो जीवा विसे०। कंडयस्सुवरि जीवा विसे०। सव्वेसु ट्ठाणेसु जीवा विसेसाधिया। एवं जीवसमुदाहारे त्ति समत्तमणियोगद्दाराणि।

एवं उत्तरपगदिअणुभागबंधो समत्तो

एवं अणुभागबंधो समत्तो

६७२. अल्पबहुत्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानमें जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य अध्यवसानस्थानमें जीव असंख्यातगुणे हैं। काण्डकके जीव उतने ही हैं। इनसे यवमध्यमें जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे काण्डकके ऊपर जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे यवमध्यके ऊपर और काण्डकसे नीचे जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे काण्डकके ऊपर और यवमध्यके नीचे जीव उतने ही हैं। इनसे यवमध्यके ऊपर जीव विशेष अधिक हैं। इनसे काण्डकसे नीचे जीव विशेष अधिक हैं। इनसे काण्डकके ऊपर जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सब स्थानोंमें जीव विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार जीवसमुदाहार नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

इस प्रकार उत्तरप्रकृतिअनुभागबन्ध समाप्त हुआ।

इस प्रकार अनुभागबन्ध समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन

स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्रीमती इन्दु जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org